

वक्तव्य ।

कथानुयोग के द्वारा लोकमें ज्ञान, उपदेश और शिक्षा का प्रचार करने की बहुत पुरानी परिपाटी है। इसी लिये अपने जैनाचार्यों ने कथानुयोगकी बहुतैरी पुस्तकें रच डाली हैं, जिनसे मनुष्य-समाजको सदा आशातीत लाभ पहुँचता रहा है। इस तरह के ग्रन्थोंमें सबसे बढ़कर खूबी यही है, कि इनसे विद्वान्से लेकर मूर्ख तक सभी समान भावसे लाभ उठा सकते हैं। वास्तवमें प्राचीन पुरुषोंके अद्भुत, अनुकरणीय और आदर्श चरित्रोंका पाठ करनेसे मनुष्य को विशेष लाभ होता ही है। दूसरे, कथा-कहानी सुननेमें सबका मनभी—खूब लगता है।

कोई कठिन विषयका ग्रन्थ देखतेही साधारण मनुष्योंका जी ऊँच उठता है और वे कुछ ही अंश पढ़ या सुनकर भागनेकी राह देखने लगते हैं; परन्तु कथा-कहानी सुनने या पढ़नेमें इतना जी लगता है, कि आदमी खाना-पीना भूलकर उसे पढ़ता-सुनता है। मनुष्य-स्वभावकी इसी विशेषताको ध्यानमें रखकर अपने आचार्यों ने इस तरहके अनेक उप-देश प्रद ग्रन्थोंकी रचना की है।

वर्तमान ग्रन्थभी उसी ढंगका है। इस ग्रन्थमें छ प्रस्ताव दीये गये हैं। पहले प्रस्तावमें श्रीशान्तिनाथ स्वामीके पहले, दूसरे, और तीसरे भवका वर्ण आता है। दूसरे प्रस्तावमें चौथे और पाँचवें भवका वर्णन आता है। तीसरे प्रस्तावमें छठे और सातवें भवका वर्णन आता है। चौथे प्रस्तावमें आठवें और नवें भवका वर्णन आता है।

पाँचवें प्रस्तावमें 'दशवें' और 'व्यासहृदयें' मयका वर्णन आता है। और छठे प्रस्तावमें 'वारहृदयें' मयका वर्णन आता है। इस तरह भगवान् के बारह मयोंका सुविम्बून वर्णन यहीही उत्तम रीतिमें दिया गया है।

इस शक्तिके आदिके, पान प्रस्तावोंमें, मंगल-कलशकी कथा, प्रत्योदशकी, मित्रानन्द भगवद्भक्तकी, पुण्यमारकी, और बन्सरारकी ये पाँचों कथायें बड़ीही मनोरञ्जक एवं शिक्षा प्रद है। और इनका विस्तार भी लंबा आता है। इनके अनित्य और भी छोटी-मोटी रोचक कथायें आती हैं। छठे प्रस्तावमें तीनों कथाओंका सृजना मर दिया गया है। छोटी मोटी बहुरूपी कथायें आती हैं। प्रत्येक कथा कन्दोरायें मरी हुई हैं, पाठकोंमें हम अनुमोच करते हैं, कि उन्हें ध्यान देकर मरग्य पढ़ें।

आचार्य कृष्ण-वसिष्ठा—मयके लिये इस पुस्तकमें अमूल्य उपदेश मरे हुए हैं। इसका पाठ करने, इसके उपदेशोंको हृदयङ्गम करने और इसके मायों शक्तियोंका अनुसरण करनेसे अनुपम जीवन उन्नत, विविध और अनुकरणीय हो जा सकता है। छोटे-बड़े, लरी पुरुष सभी के लिये यह प्रथम अनिवार्य उपदेशग्रन्थ है। इसी लिये विपुल श्रम कर इनका सुन्दरताके साथ हमने इसे प्रकाशित किया है।

इस ग्रन्थके पढ़ते इनकी छ पुस्तकें साथ सज्जनोके समक्ष में हो सकती हैं। मात्र यह सत्यही पुस्तक भी आपके घर-कमलोंमें समर्पण की जाती है। आशा है, पढ़तेकी पुस्तकोंके अनुसार इसे भी मयेम सज्जन कर हमारे उम्मीदोंको परिपूर्ति करेंगे। इस ग्रन्थके किसी किसी विषय के मायने होय या गया है, एवं शीघ्रताके कारण छाने में जो अनेक व्यक्त पर अनुश्रुति रह गई है, उसके लिये पाठकों में हमारा क्षमा याचना है।

मार्च २३-६ १९२५

१९१६ ईस्वी, रीह

कलकत्ता ।

भगवत्

राजीवराय देव



संस्थाने निवासो धर्मोदयान्तर
वादु मन्त्रालयकी हाकिम कोठारी
हाल कलकत्ता ।

शान्तिनाथ चरित्र



बाकानेर निवासी धार्मान् माननीय
वाटू भट्टदानजी हाकिम कोटारी
हाल कलकत्ता ।

पैसेही विरले सज्जनोंमें कलकत्तेके सुप्रसिद्ध, व्यापारी भोसवाल कुल-भूषण श्रीमान् बाबू भैरोदानजी कोठारी भी हैं। यद्यपि आप बीकानेरके रहने वाले हैं, तथापि—आपका जन्म संवत् १६३८ वैशाख कृष्ण २ शनिवार को गुजरातके समीप दाहोद नामक स्थानमें हुआ था। आपके पिता वहीं पर कपड़े आदिका कार-बार करते थे, उनका शुभ नाम श्रीमान् रावतमलजी था।

आपकी अवस्था जिस समय केवल छ वर्षकी थी, उसी समय आपकी माताजीका परलोकयास हो गया था। इसलिये आपके पालन-पोषणका सारा भार आपके पिताश्री पर ही आ पड़ा। आपके एक सुशीला बहिन भी हैं, जिनका शुभ नाम जुहार कुँवर है।

दाहोदमें ही आपकी शिक्षा हुई। उसके बाद आप व्यापारकी ओर झुके। संवत् १६५५ की सालमें आप कलकत्ता पधारे। यहाँपर आपने पहले-पहल १० रुपये की नौकरी पर काम करना आरंभ किया। इसके बाद आपने विलायती कपड़ेका व्यापार करना शुरू किया; पर इस काममें आप पूरी तरह सफल न हुए। फिर इसके बाद आपने सन् १६६४ की सालसे स्वदेशी कपड़ेकी दुलालीका काम करना आरंभ किया। इस कार्यमें आपने उत्तरोत्तर उन्नति की और एक बड़े नामी-गरामी व्यापारीमें आपकी गणना हो गई।

इस बीचमें संवत् १६५६ के वर्षमें आपका शुभ विवाह हुआ आपकी धर्मपत्नी बड़ीही सुशीला, सुशिक्षिता, धर्मपरायणा, पतिव्रता और शान्तस्वभावा है। धार्मिक शिक्षाका ज्ञानभी यद्येष्ट प्राप्त किया है और अपना प्रायः अधिक समय ज्ञान-ध्यान एवं धार्मिक क्रियामें ही व्यतीत करती हैं। उनके धर्म-कार्यमें आप सर्वेय साथ दिया करते हैं। अभी कुछ वर्षोंके पहलेकी बात है, आपकी धर्मपत्नीने नक्षत्र ओलीका बड़ा तप किया था। उसकी समाप्तीके उपरान्तमें आपने एक बड़ा भारी उद्यापन (उरुमणा) किया, जिसमें अतुल्य धन-श्रम कर आप अपूर्व पुण्यके भागी बने।

$\frac{1}{x^2} = x^{-2}, \quad \frac{d}{dx} x^{-2} = -2x^{-3} = -\frac{2}{x^3}$

किन्ति हिन्दुसुतः कुरुः मरुः कि-

परिचयार्थं नमः, कृपया कोण व जायते :

॥ अथ श्रीमद्भगवत्पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

इस लेखकों, विचारों से जोर लगाते रहते हैं, जिससे बहुधा
 मानव प्राणों के हृत् हृत्के होते लगते हैं। पैदा होने और मर जाना
 जिसका खेल है। इनमें बर्तोंका जन्म प्रलय करना होक है,
 जिसके द्वारा मरने जातिके कुछ भगवत हो, मरने बंधका और हो,
 मरने कुछका बन्ध होकर हो, बर्तों से इस लेखकों से होते हुआ
 लोको पैदा होते और मरते रहते हैं। इनको और और प्रलय होकर
 है। और इस प्राणोंके प्रकाश करने बर्तोंका बन्ध मर जाने से
 इस लेखकों से होते रह, जिसका रहता है। इनके प्राण-मरने शरीर
 नती दुष्टका काता है, बन्धु जन्म करती है। वे मरने को
 इस मरने से होते हैं। ऐसे मरने को लोकोका नाम लगे
 है, बर्तों के लोको लोको करते हैं।



परम श्रद्धेय श्रीमान् नागर्नाथ

बाबू भैरूदानजी

हाकिम कोठारी

का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

किसी विद्वान्ने ठीकहीं कहा है, कि—

परिवर्तिनि संसारे, नृतः क्वा न जायते ?

स जातो येन जातेन, याति जातिः समुन्मतिन् ॥

इस संसारमें, जिसके रंग नित्य पलटते रहते हैं, जिसमें मनुष्यका जीवन पानीके बुल बुलकेझी समान है। पैदा होना और मर जाना नित्यका खेलता है। उसमें उल्टीका जन्म प्रदण करना ठीक है, जिसके द्वारा अपनी जातिकी कुछ भलाई हो, अपने वंशका गौरव हो, अपने कुलका नाम लूंचा हो, नहीं तो इस संसारमें रोझही हड़ारों लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनकी ओर कौन ध्यान देता है। और इन जातोंके उपकार करने वालोंका नाम मर जानेपर भी इस संसारके परदेपर सदा विराजमान रहता है। उनके दश-रूपी शरीर को नवो युद्धाया जाता है, न मृत्यु प्राप्त करती है। वे अपनी कीर्ति के द्वारा बनर हो जाते हैं। ऐसे बनर कीर्ति सत्पुरुषोंका जन्म सभी लोग यही धद्दाके साथ लिया करते हैं।

पेसोही विरले सज्जनोंमें कलकत्तेके सुप्रसिद्ध, व्यापारी मोसवाल-बुल्ल-भुवण श्रीमान् बायू मैरोंदानजी कोठारी भी हैं। यद्यपि आप बीकानेरके रहने वाले हैं, तथापि—आपका जन्म संवत् १९३८ वैशाख कृष्ण २ शनिवार को गुजरातके समीप दाहोद नामक स्थानमें हुआ था। आपके पिता वही पर कपड़े आदिका कार-बार करते थे, उनका शुभ नाम श्रीमान् रायतमलजी था।

आपकी मयस्था जिस समय केवल छ वर्षकी थी, उसी समय आपकी माताजीका परलोकवास हो गया था। इसलिये आपके पालन-पोषणका सारा भार आपके पिताश्री पर ही आ पड़ा। आपके एक सुसीमा बहिन भी हैं, जिनका शुभ नाम सुहार कुँवर है।

दाहोदमें ही आपकी शिक्षा हुई। उसके बाद आप व्यापारकी ओर झुके। संवत् १९५५ की सालमें आप कलकत्ता पधारे। यहाँपर आपने पहले-पहल १० रुपये की नौकरी पर काम करना आरंभ किया। इसके बाद आपने दिवायती कपड़ेका व्यापार करना शुरू किया। पर इस काममें आप पूरी तरह सफल न हुए। फिर इसके बाद आपने सन् १९६४ की सालसे स्वयंसी कपड़ेकी दुआलीका काम करना आरंभ किया। इस कार्यमें आपने उत्तरोत्तर उन्नति की और एक बड़े नम्मी-गरामी व्यापारीमें आपकी गणना हो गई।

इस बीचमें संवत् १९५६ के वर्षमें आपका शुभ विवाह हुआ आपकी धर्मगत्री बड़ीही सुसीमा, सुशिक्षिता, धर्मपरायणा, पत्रिप्रता और शक्तस्वभावा है। धार्मिक शिक्षाका ज्ञानभी यथेष्ट प्राप्त किया है और अपना प्रायः अधिक समय ज्ञान-ध्यान एवं धार्मिक विद्यामें ही व्यतीत करती है। उनके धर्म-कार्यमें आप सर्वेय साथ दिया करते हैं। अभी कुछ वर्षोंके पहलेकी बात है, आपकी धर्मगत्रीने मन्त्र मोड़ीका बड़ा ना किया था। उसकी समाप्तीके उपरान्त आपने ब्रह्म बड़ा मारी उद्धारन (उद्धारणा) किया, जिसमें अनुल धन-व्यय कर मंगल अर्घ्य पुण्यदे मानी बने।

उद्घाटनका मण्डप बीकानेरके बड़े उपाश्रयमें सजाया गया था। मण्डपकी संज्ञाघट अत्यन्त रमणीय एवं दर्शनीय थी। जो सज्जन सजाघटकी ओर निहारता वही आश्चर्य-चकित हो जाता था। उसकी मनोभाषना अत्यन्त निर्मल बन जाती थी, उसके विचार में विकास हो जाता था। जो सज्जन एक बार दर्शन कर लेता, वह प्रति-दिन आये बिना नहीं रहता था। इस तरहको मण्डप-रचना बीकानेरमें शायद ही किसी समय हुई होगी। हम ऊपर लिख आये हैं कि, श्रीमान्ने अपने न्यायोपाजित धनको खर्चकर माना प्रकारकी सोने-चाँदीकी उत्तमोत्तम चीज़ें बनवायीं, वे सब चीज़ें इस परम रमणीय शोभावमान मण्डपमें स्थापित की गईं।

महार्ग महोत्सव आरंभ होनेके पहले आपने कलकत्ता एवं अनेक शहरोंके सज्जनोंको आमन्त्रण भेजा था। अतएव सब जगहके बड़े-बड़े धनी लोग इस सुअवसर पर पधारने लगे। उनके आतिथ्य-सत्कारके लिये आपने बड़ाही सुप्रयत्न किया था। जितने सज्जन आये हुए थे उन सबकी सुध्रुपाकेलिये आप हरसमय उपस्थित रहा करते थे। “सेवा करना परम धर्म है” इस मन्त्रको आपने बालावस्थासेही सोच लिया था। आपने इस बातका भी ज्ञान कर लिया था कि, फिर ऐसा सु-अवसर स्वामी भाइयोंकी सेवा का कब मिलेगा ? इसलिये आप अत्यन्त हर्षान्वित होकर तन मन और धनसे स्वामी भाइयोंकी सेवा करते थे। आपके इस असाधारण आतिथ्य-सत्कार को देखकर आये हुए सर्व सज्जनोंको अपार आनन्द होता था।

प्रिय पाठको ! आन्वित्य-सत्कार महज़ मामूली काम नहीं। इस कामके करनेवाले दिरलेही सज्जन होते हैं। लाखों करोड़ों रुपये पासमें होने पर भी इस कामको करनेमें असमर्थ रहते हैं। शास्त्रकारोंने भी सर्व गुणोंमें इसी गुणको प्रधान बतलाया है। कहा भी है, कि “सर्वस्वाम्यागतो गुरु” अर्थात् अतिथी-महिमान सब किसीको पूजनीय होता है। अतएव सौ काम छोड़कर भी अतिथीका

होते थे । जिस सवारोके सजावटमें हजारों रुपये खर्च किया गया हो वह सवारी मला कैसे दर्शनीय न होगी ?

इसके अतिरिक्त इस सुअवसर पर तीनों समुदायके सज्जनोंने सम्मिलित हो कर बड़ेही आनन्द मंगल पूर्वक जल यात्रा एवं स्वामीवत्सल का उत्सव मनाया ।

आपने संसारमें अच्छा धन, मान और धैर्य प्राप्त किया । बचपनसे ही आपके हृदयमें धार्मिक भावना, लोकोपकारी प्रवृत्ति और जाति हितकी लालसा बनी रहती थी । व्यवस्थाके साथ-ही-साथ आपके ये गुणभी बढ़ते गये । धार्मिकता, सच्चरित्रता, उदारता, और जाति हितैषिता ही आपके जीवनके प्रधान गुण हैं । इन्हीं गुणोंने आपके जीवनको अनुकरणीय बना दिया है ।

आपके इन अलौकिक गुणोंकी ओर आकर्षित होकर व्यापारी समाज एवं जातीय सज्जन आपका बड़ाही आदर-सम्मान करते हैं । आप न्यायमार्गके पूर्ण पक्षपाती हैं । आपकी व्यवहार दक्षता एवं न्याय प्रियता अतीव प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है । आप स्पष्टवक्ता एवं मिष्टभाषी हैं । अतएव जनतामें आपका बड़ाभारी प्रभाव पड़ता है ।

आपका धर्म-प्रेम, जाति-प्रेम, समाज-प्रेम, और देश प्रेम परम प्रशंसनीय है । आपका सारा धैर्य आपके अपने धातुबलका उपार्जन किया हुआ है, इसलिये आप स्वनाम धन्य पुरुष हैं । आपके अध्य-यसाय, साहस, धैर्य आदि गुण सबके अदर्श होने योग्य हैं । आपकी दान शीलताकी अर्हातक प्रशंसा की जाये कम है, आप योंतो सदैव गुप्तदान करते रहते हैं, और अनेक अनाथों, निराधार और निःसहा-योंको सहायता पहुँचाते ही रहते हैं । तथापि आपके दान और भोदार्यके बहुतसे ऐसे उज्ज्वल उदाहरण भी हैं, जो आपकी कीर्ति-को चिरस्मर्य बनाये रहेंगे ।

आपने निम्न लिखित संस्थानोंको आर्थिक सहायता प्रदान की है, और नियमित मासिक सहायता भी दिया करते हैं । बीकानेर जैन

पाठशालाको ५१०० रुपये, कलकत्ता जैन श्वेताम्बर-मित्र-मण्डल-विद्या-लयको ३१०० रुपये। पूना भण्डारकर पुस्तकालयको १००० रुपये और ओसियां जैन बोर्डिंग-विद्यालयको भी आप यथासमय सहायता दिया करते हैं। इस तरह आप अपने परिश्रमोपार्जित धनका सदा सदुपयोग भी खूब किया करते हैं।

आपने अभी कलकत्तामें दादाजीके मन्दिरमें मार्बल पत्थरकी रमणीय फरश भी बनवाई है जिसमें अन्धाजन छेढ़ हजार रुपये लगाया है। इसके सिवा ज्ञान-प्रचार के काममें भी आप यथा समय धन व्यय कर पुस्तकें छपवाकर वित्तिर्ण किया करते हैं।

प्रायः देखा जाता है, कि लोग धन और धैर्य पा कर अभिमानमें मग्न हो जाते हैं, अपने सामने दुसरेको तुच्छ समझते हैं, परन्तु आपमें अभिमान तो नाम मात्रको भी नहीं है। आप बड़े ही विनयी हैं, और धर्मका भाव आपके हृदयमें सोलह माने भरा रहता है। आजतक आपने अनेक धार्मिक कार्योंमें बड़े उत्साहसे दान दिया है, और शिक्षा-प्रचारके लियेभी मुक्त हस्तसे दान करते रहते हैं। आपकी इस दान शीलतासे बहुतसे दीन-दुःस्त्रियोंका उपकार हुआ है। और कितनोंको नीचेसे ऊपर चढ़ाया है, शासन देव आपकी दीर्घ जीवो करें और आपके चित्तमें सदैव धर्मकी प्रभावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, यही हमारी आन्तरीक अभिलाषा है।

श्रीमान्का सम्पूर्ण जीवन-चरित्र बड़ा ही शिक्षाप्रद एवं आदर्श है। हमारी इच्छा थी कि इस पुस्तक में आपका सारा जीवन-चरित्र प्रकाशित कर दिया जाय; पर हमें आपके सम्पूर्ण जीवन-चरित्र की यथेष्ट सामग्री न मिली। इसके लिये श्रीमान् से हमने अनेक बार निवेदन किया; पर श्रीमान्ने जीवन चरित्र देना ही नापसन्द कर दिया अतएव हम निराश हो गये; किन्तु बारम्बार से ही हमने निश्चय कर लिया था कि इस पुस्तक में आपका ही जीवन-चरित्र एवं चित्र देना चाहिये। अतएव हमने पुनः साहस कर श्रीमान् से सामग्रि निवेदन

किया, इसपर आपने केवल चित्र देना ही स्वीकार किया और जीवन चरित्रके विषय में सत्यता निषेध कर दिया ।

चित्रके साथ-साथ आपके आदर्श जीवन-परिचयको भी दे देना अधिक उचित प्रतीत हुआ । अतएव हमने आपके जीवन घटनाओंका विवरण जाननेके लिये अपने दो चार मित्रोंसे कहा सुनी करी । एक दो मित्रोंने आपके जीवनको परिचय भी दिया, पर उससे हमें पूर्ण सन्तोष लाभ न हुआ । हमने बाद हमने अपने परम प्रिय मित्र बाबू अमरचंद्रजी वरु-तरीसे इसके लिये निवेदन किया । उन्होंने कतिपय उल्लेखनीय बातें मालूम कीं । इस तरह हमने इधर उधरसे आपके जीवन घटनाओंका विवरण जानकर इस जीवन परिचयकी लिखा है, इस लिये संभव है, कि हमके लिखने में त्रुटि रह गई हो । अतएव हमारी क्षमा माचना है ।

शेरा में हम अपने प्रिय मित्र साहित्य प्रेमी बाबू अमरचंद्रजी वरु-तरीको महर्ष घन्यवाद देते हैं । मित्रोंने आपके जीवन-परिचयके सम्बन्धमें कुछ बातें मालूम कर हमें पूर्ण अनुमति दी ।

२०१ हरिमन रोड,
बम्बई ।

{

आपका
काशीनाथ जैन

जिनेश्वरों को भी समकित प्राप्तिके समय से ही भवकी संख्या मानी जाती है । इस प्रकार श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर के बारह भव हुए हैं । उनमें से पहले भव को क्या इस प्रकार है:—

इस जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र में अनन्त रत्नों की खान के समूह श्रीरत्नपुर नामका एक नगर था । उसमें श्रीपेण नामके एक राजा रहते थे । वे व्याप धर्म में निपुण, परोपकार करने में तत्पर, प्रजा का पालन करने में शूर, शत्रु-रूपी वृक्षों को उखाड़ फेंकनेमें इस्ती के समान और औदार्य, धैर्य, सामर्थ्य आदि गुणोंके आधार थे । उनके बाँये हाँग की अधिकारिणी और दाँय रूपी अर्धधार में भूमि दो खियों थीं । पहली का नाम अमिनन्दिता और दूसरी का नाम सिंहनन्दिता था । एक समय की बात है, कि पहली रानी अमिन-खान कर, राज के समय अपनी छत्र शय्या पर सो रही थी । इसी समय उसने स्वप्न देखा कि, किरणों में शोभित मृग और चन्द्रमा, अर्धधार को दूर करने हुए, उसकी गोद में बैठे हुए हैं । यह देखते ही रानी की माँर दृढ़ गर्वी उठने अपने मनमें बड़ा हर्ष माना । इसके बाद वह आप ही आप विचार करने लगी,—“शास्त्रकारों ने कहा है, कि शुभ स्वप्न देखकर किसी ने कहना नहीं चाहिये और फिर सोना भी नहीं चाहिये ।” इत्यादि । इस प्रकार सोच-विचार कर वह रात भर जागी ही रही । सबेरा होते ही उसने अपने इस स्वप्नकी बात अपने स्वामी से कही । वह छत्र, राजा ने अपनी बुद्धि और भाग्य की कृति विचार कर इस स्वप्न का कल अपनी पत्नी पत्नी को इस प्रकार प्रत्यक्षता भर बचनों में कह सुनाया । “हे देवी ! इस स्वप्न के प्रभाव से मुझारे दो पुत्र होंगे जो पृथ्वी भरमें प्रसिद्ध और कृष्ण का नाम ऊँचा करने वाले होंगे ।” यह छत्र रानी बड़ी हर्षित हुई । इसके बाद ही वह गर्भवती हुई और अपने मुन्हे पर सोमा बसने लगी । गर्भका समय पूरा होने पर छत्ररत्न-नक्षत्र में उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए । पिता ने दस दिनों तक बड़ी धूमधाम से महोत्सव मनाया । इसके बाद उन्होंने एक का नाम इन्दुपेण और दूसरे का दिनदुपेण रक्खा । वर्षाप्रति साप्ति-साप्ति होते हुए वे दोनों राजकुमार बढ़ते गये । अष्टम, वे आठ वर्ष के हुए । यह गजाने उन्हें कलापाय के पास शिक्षा निमित्त भेज दिया । वहाँ उन्होंने सब कलाओं को शिक्षा पायी । धीरे-धीरे वे बुरा हो गये ।

उन दिनों भरत क्षेत्र में महाय नामक पहिल भव्य नामका एक ग्राम था, जिसमें वेद और वेदांगोंमें निपुण ‘धरनिजट’ नामक एक प्राज्ञ रहता था । उनकी बचन, का नाम यशोवन्ता था, जिसका गर्भमें उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए

एक दिन रातको देवकुलमें नाटक देखने गया । वहाँ नाटक और संगीतका आनन्द लेते हुए बड़ी रात बीत गयी । नाटक समाप्त होने पर सब लोग अपने-अपने घर चले गये । कपिल भी अपने घर की तरफ चला । रात्रिका समय था, निम्नपर बाइबेलीक मॉर और भी गाड़ी अधियारी डायी हुई थी और पानी बरस रहा था । इसी लिये रास्तेमें कोई आता-जाता नहीं नजर आता था । कपिलने सोचा— मैं व्यर्थ ही अपने वस्त्रको क्यों भिगाऊँ ! रास्तेमें तो कोई आदमी चलता-फिरता नहीं दिखाई देता ! यहाँ सोचकर उसने अपने सारे कपड़े उतार कर उनकी पोडनी बांध ली और उसे कौनसे तरे दबाये नंगा ही अपने घर पहुँचा । द्वार पर आते ही उसने अपने कपड़े पहन लिये और तब घरके अन्दर घुसा । उसकी स्त्रि मूठ पट घरके अन्दरसे अन्य मूले वस्त्र लाकर बोली “प्राणेश” ! अपने भींगे कपड़े उतार डालो और इन मूले वस्त्रोंको पहन लो ।” यह सुन, कपिलने कहा,—“प्रिये ! मन्त्रके प्रभावसे इस वरमातमें भी मेरे कपड़े नहीं भीगने पाये । यदि तुम्हें मन्देह हो तो देखकर परीक्षा कर लो ।” यह सुन, वह बड़े आश्चर्यमें पड़ी और हाथ बढ़ाकर कपड़ोंकी परीक्षा कर, उन्हें सूखा देख, मनही मन आश्चर्यमें हो ही रही थी, इसी समय बिजली चमक उठी । उसके उजियामे मैं यह देख कर कि, उसकी देह तो पानीसे तर है, वह सूक्ष्म-बुद्धिवाली सत्यभामा मनमें विचार करने लगी,— “अब समझी । वह क्योंकि भयसे वस्त्रोंको दिखाये हुए रास्ते भर नंगा ही आया है और अब मुझसे व्यर्थ की ईर्ष्या होक रहा है । भला यह हरकत कहीं भयमानियोंकी हो सकती है ? यह कदापि कुर्सीन नहीं है । इसके साथ गृह-धर्मका पालन करना विद्वम्बना मात्र है । ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही कपिल पर उसका अनुराग कम हो गया । ईं, सोच-विचार के लिये वह गृहस्थीके काम-धन्धोंको सदाकी तरह करती रही ।

इसी समय कपिलका पिता, जो ब्राह्मण और बड़ा भारी पंडित था, कमरेके शोपने, समय के फेरसे, निधन हो गया । उसने जब सुना, कि उसका कपिल नामक पुत्र रत्नपुरमें जाकर बड़ा वैभवशाली और लोक समाजमें माननीय हो रहा है, तब वह धनकी इच्छामे रत्नपुर आ पहुँचा और कपिलके घरपर आतिथिकी भाँति ठहरा । भोजनके समय कपिल किसी बहानेसे पितासे अलग जा बैठा । यह देख सत्यभामाके मनकी शंका और भी प्रबल हो गयी । उसने ब्राह्मणको एकान्तमें ले जाकर शपथ देते हुए पूछा,— “पिताजी ! सब कहिये, यह आपका पुत्र आपकी धर्म-वर्त्तनीसे उत्पन्न है वा नहीं ? इसपर उपाध्यायने उससे सारा कच्चा बिड्वा कह सुनाया, यह सुनकर उसे यह निश्चय हो गया, कि

यह किसी नीच जातिकी मल्लान है । इसके बाद कविने अपने पिताको कुल धन देकर बिदा कर दिया और वह अपने घर चला गया । इधर मन्थभामा ने कविमणि कोतेने अपना मन फेर लिया और उसके अनजाने में घरने बाहर ही, श्रीरंक राजाके पास जा, दोनों हाथ जोड़कर बोली,—आन पृथ्वीनाथ ई- पांचवें लोक-नाम है—हीन और अनाथ मनुष्योंको शरण देने वाले है, आपही सबकी गति है, हमलिने में ऊपर दया कीजिये ।”

उसका बचन सुन, राजाने कहा,—“पुत्री ! तुम्हारे पिता मन्थकि में पत्य है । तुम उनकी पुत्री और कविनकी पत्नी हो, हमलिने में ही हर तरहसे माननीय हो । तुम शीघ्र बनवाओ, तुमको कौनसा दुःख है ?”

वह बोली,—“हे राजन ! मेरा कविन नामका जो स्वामी है, वह अपने हममें उत्पन्न नहीं होनेके कारण निन्दनीय है ।”

राजाने पूछा,—“तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ ?”

यह सुन, उसने कविनके पिताकी कहोहुई बुन बाते राजाको कह सुनायी । अन्तमें बोली,—“महाराज ! आप ऐसा करें, जिनमें मैं हमके घर में अनाथ हो जाऊँ और पृथक् रहती हुई भी निमग्न शीनका पालन कर सकूँ । मैं आपकी शरणमें आऊँ हूँ ।”

उसने ऐसा कहने पर राजाने कविन को बुनबा भेजा और जाने पर उसने कहा,—“कविन ! मेरा स्या मन्थभामा में ऊपर प्रीति नहीं राखी, हम लिने हूँ हम स्पेह हीन स्या को सोड़ दे । आज से यह अपने लि गृहकी भूमि में ही जाने से और शीन—सो अनेकार को धारक कर, कुमोचित धनैका पालन करती रहे, हम बातको हमें आज्ञा दे दाम ।”

राजाकी यह बात सुन, कविने कहा,—“स्वामी ! तुमसे तो हमके बिदा रही भर भी बंद नहीं जानेका, मैं हमें होड़कर रह नहीं सकता; किं अपा आप हो बनवाइये, मैं हमें कैसे होड़ दे सकता हूँ ?”

कविनकी बातें सुन, राजाने मन्थभामासे पूछा,—“अरे ! यदि कविन तुम्हें होड़नेको तैयार नहीं हो, तो हूँ क्या बोली ?”

वह बोली,—“यदि हम नीच कुलोत्पन्न पुत्रने मेरा पितृ नहीं उठा, तो मैं अनाथ प्राण दे दूँगी ।”

यह सुन, राजाने फिर एक बार कविनसे कहा,—“कविन ! यदि हूँ हम सब को ब होड़ना, तो तुम्हें अनाथ ही की हत्याका एव सोचता । क्या तुम्हें हम सब का धर नहीं है ? हमलिने यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो उसे कुछ दिनेमें लि बिना मरनेके स्या जाऊँ है, कैसे ही हमें भी कुछ लि में पावेगी सबके एव सुने ।”

कपिलने यह बात स्वीकार कर ली । तब विनय तथा शीलमें उत्तम मन्य-
भामा राजाकी प्रियाके पास धरती आयी और सुनने रहने लगी ।

एक दिन उन्नी नगरके उद्यानमें श्री विमलबोध नामके मूरि पृथ्वी पर विहार
करते हुए आ पहुँचे और एक पवित्र स्थानमें रहे । मूरिके आगमन का
हाल लोगों के मुँहमें सुनकर श्रीपंथ राजा अपने परिवारके साथ उनकी वन्दना
करने को आये । वहाँ पहुँच कर, मूरिको प्रणाम कर, राजा एक उचित स्थान में
जा बैठे । तदनन्तर मूरिने राजाको सुनाने के लिये धर्म-देशना आरम्भ की । “हे
राजन् ! जो मनुष्य-जन्म आदि सामग्रियों को पाकर भी प्रमादके कारण धर्म
नहीं करता, उसका जन्म निरर्थक ही जानना और त्रिन प्राणियोंने त्रिन-धर्मका
आराधन और सेवन कर, वैभव तथा मोक्ष-सुख पा लिया है, उनका जन्म सा-
र्थक समझना । वे मंगल-कलशकी भाँति सदा प्रणम्यके योग्य हैं ।”

यह सुन, श्रीपंथने पुत्रा,—स्वामिन् ! मंगल-कलश कौन था ? कृपाकर
मुझे उसकी कथा सुनाइये ।

मूरि महाराजने कहा,—“राजन् ! खूब मन लगा कर उसकी कथा सुनो;
मैं तुम्हें उसकी कथा सुनाता हूँ ।

मङ्गल कलशकी कथा ।



अयिनी नामक विगत्य नगरी में धीरसिंह नामक एक राजा राज्य
करते थे । उनकी सोमचन्द्रा नामक स्त्री उन्हीं प्राणोंमें भी बद्ध
प्यारी थी । उन्नी नगरी में धनदत्त नामका एक बड़ा भारी मंड
रहता था । वह बड़ा ही विनयी, मन्य-वारी, दयावान्, गुरु तथा देवताकी
पूजामें तत्पर और परोपकारी मनुष्य था । उसके सत्यभामा नामकी एक
स्त्री थी । वह बड़ी ही शीलवती तथा पति पर प्रेम रखनेवाली थी ; पर
बेचाराकी गोंद सूती थी । एक दिन पुत्रकी चिन्तामें उताव
बने हुए मेठको देखकर उसकी स्त्री ने पुत्रा,—“जाय ! आप आज इनने दुर्नी क्यो
दिखाई देते हैं ?” मंडने मच बाज बनवा दी, वह सुन कर स्त्रीने कहा,—

“ माहताप ! चिन्ता न कीजिए । इस लोक और परलोक में केवल धर्म ही मुन्नोंकी वांछित पदार्थ देनेवाला है । इसलिये आपको सुखी मनसे उसी धर्मका विशेष रूपसे पालन करना चाहिये । “इसपर सेठने कहा,— प्रिये ! मैं किन तरह धर्मका आचरण करूँ, वह तुम्हीं बतावाओ । “वह बोली— “स्वामी ! देवाधिदेव श्रीशिवेश्वरजीकी पूजा करो, मङ्गलरूपकी भक्ति करो, सप्रायोंको दान दो और मिद्वान्तके दण्डोंका अध्ययन करो । इसप्रकार धर्म-ध्यान करते हुए यदि पुत्र प्राप्त हो जाय, तो अच्छी ही है, नहीं तो परलोकमें निम्न और अख-सिद्धि सब नो अवाप्त ही होगा ।”

यह सुन, सेठने परम प्रसन्न होकर कहा,—“प्रिये ! तुमने बहुत ठीक कहा । भर्त्ता भीति पालन किया हुआ धर्म चिन्तानशि और कल्पवृक्ष के ही समान होता है ।”

इस प्रकार मनमें निश्चय कर, उस अच्छे विचारवाने सेठने मालीको बुला-कर देव पूजाके निमित्त पूज मंगवाने और उसे बहुत सा धन दान किया । इसके बाद वह प्रतिदिन सवेरे उठकर अपने शरीरमें जाता और सूर्यके खिने हुए पूज मोड़ लाकर उनसे अपने घरमें रखी हुई प्रतिमाका पूजन करता । इसके बाद नगरके मध्यमें बने हुए जिन-चैत्य (जैन मन्दिर) में चला जाता । उसके द्वारके भीतर प्रवेष्ट करते समय नैवेदिकी आदि कहे जानेवाले दसों प्रकारके उचित रीति में ध्यान रखते हुए बड़ी भक्तिके साथ चैत्यवन्दन करता था । इसके बाद माधुओंको वन्दना तथा विधिपूर्वक प्रत्यारुपान कर, वह उत्तम मुनियोंको दान देता था । इसी प्रकार सारा दिन और सारी रात, सब सुखको देनेवाले धर्म-कायों का ही अनुष्ठान करते रहनेके कारण, यामनकी अधिष्ठात्री देवी उस सेठ पर प्रसन्न हो गयी और उन्होंने उसे प्रत्यक्ष दर्शित देकर पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया । इस वरदानसे सेठ बड़ा ही प्रसन्न हुआ । इसके बाद पुरन्दरके प्रभाव तथा देवीके आशीर्वादसे उसी रातको नैग्रनीको गर्भ रहा और उसने स्वप्नमें मंगल सहित सुख-पूर्व कृत्य देखा । वह देखने ही वह जग पड़ी और इसे पुत्र प्राप्ति का मंगल समझ कर हर्षित हुई । बनने समय पूरा होने पर भर्त्ता मापनसे उसके पुत्र पैदा हुआ । उस समय उसके पिताने बड़ी पूजमानसे उत्सव किया और शीत-हीन जनोंको स्वर्ण और रत्नोंका दान देकर, अपने सब स्वजनको इकट्ठा किए और सबके सामने ही स्वप्नके अनुसार उसका नाम मंगल-कन्या रक्खा धीरे-धीरे बड़ता और विद्याभ्यास करता हुआ वह लड़का बमशः बड़ा बढ़ता हुआ ।

एक दिन मंगल कन्याने अपने पितासे पूछा,—“पिता ! तुम सबके ही उद्धार प्रतिदिन कहाँ चले जाते हो ? “उसके पिताने कहा,— मैं देव पूजनके लिए

कूल लाने जाता हूँ । यह छन पुत्रने कहा;—“अच्छा, तो आज मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा ।” यह छन, पिताने लाम्ब मना किया, तो भी यह पिताके पीछे-पीछे चला ही गया । मालीने उसे अपने मालिकका पुत्र समझ कर उसे प्रमत्त करनेके लिये नीबू और नारंगी आदि सुन्दर स्वादवान् फल लाकर दिये । इसके बाद मेंट कूल से, पुत्रके साथ ही घर लौट आया । उस दिन मेंटने पुत्रके साथ ही स्नान, पुजन और भोजन आदि सभी कार्य किये । इसके अनन्तर बालक पाठ्याभ्यास चला गया । दूसरे दिन मंगलकलन बड़ी हठकरके अकेला ही कूल लानेके लिये बगीचेमें चला गया और मालीमें सुन्दर-सुन्दर फूल लेकर घर लौट आया । घर आकर उसने पिताने कहा,—“अब आजमें मैं ही प्रतिदिन बाग में जाकर कूल से आया कहूँगा, तुम घर ही रहकर धर्म-ध्यान किया करो ।” मेंटने उसकी यह बात स्वीकार कर ली । इसके बाद वह प्रतिदिन बगीचे आकर कूल से आने लगा और मेंट कुछ पूर्वक देव-पूजा करने लगा । इसी अवसर में क्या क्या घटनाएँ हो गयीं अब उन्हींकी कथा सुनाता हूँ । सुनो,—

भरत क्षेत्रमें चम्पा नामकी एक विगाल नगरी है । उसमें छरसुन्दर नामके एक राजा रहते थे । उनकी रानीका नाम गुहावर्मा था । एक दिन उसने स्वप्नमें अपनी गोत्रमें काम्पलता देखी । देखते ही वह झट पट उठ बैठी और अपने स्वामी से वह बात कह घायी । राजाने अपनी बुद्धिमें विचार कर कहा,—“इस स्वप्नके प्रभावमें तुम्हें एक सर्व-सुलज्ज्व पुत्री होगी ।” यह छन रानी बड़ी प्रसन्न हुई । इसके बाद समय पाकर रानीको एक लड़की हुई । राजाने उसका नाम त्रैलोक्य-सुन्दरी रक्खा । धीरे धीरे बढ़ती हुई वह बालिका क्रममें सुजती हो गयी, सुवा-वस्थाको पाकर वह मानो अतिशय मावगय और मौभाग्यका आकार बन गयी । एक दिन अपनी उम्र मनोहर अंगोंवामी पुत्री को देखकर राजा अपने हृदय में इसके लिये बरकी चिन्ता करने लगे । इसी समय रानीने भी उनमें कहा,—“स्वामी ! यह बालिका मेरे जीवनका आधार है । मुझमें ऐसी धारि नहीं, कि इसका विरह सहन कर सकूँ, इसलिये आप इसका विवाह किसी और स्थानमें न कर इसी नगरमें सुषुद्धि नामक मंत्री-पुत्रके साथ कर दीजिये । वह इसके सर्वथा योग्य है ।” श्री की यह बात छन, राजा मन-ही-मन विचार करते लगे जब पुत्री तो विवाहादिक मामलोंमें छियोंकी ही प्रधानता रहती है ।” यही सोचकर उन्होंने सुषुद्धि नामक मंत्रीको बुलवा कर उसमें बड़े आदरके साथ कहा “मन्त्रीजी ! मैं अपनी कन्या तुम्हारे पुत्रके साथ क्या देना चाहता हूँ, इस लिये तुम शीघ्र इनके विवाहकी तैयारी करो ।”

यह छन मन्त्रीने कहा,—“स्वामी ! आप ऐसी अनुचित बात क्यों कहते

हैं ? आप अपनी पुत्री किसी राजकुमारकी दीजिये, मेरा पुत्र आपके योग्य नहीं है । क्या भी है, कि—

ययोरेव समं विच्छं, ययोरेव समंकुलम् ।

तयोर्मैत्री विवाहश्च, नतु पुष्ट-विपुष्टयोः ॥ १ ॥

“जिन दो मनुष्योंकी धन-सम्पत्ति एकसी हो, कुल एकसा हो, उन्हीं दोनोंमें परस्पर मैत्री या विवाह होना उचित है; परन्तु जगनेसे यदि एक दलवान और दूसरा निर्दल हो, तो उनमें सम्बन्ध होना ठीक नहीं है :”

मंत्रीकी यह बात सुन, राजाने फिर कहा,—“मंत्री ! इस बारेमें मुन्दारे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है । यह बात तो अब होकर ही रहेगी । इसमें कोई संशय न समझना ।”

सभासभोंने भी कहा, कि मंत्रीजी ! आपको राजाकी बात मान ही लेनी चाहिये । यही सब सुनकर मन्त्रीने, इच्छा न रहते हुए भी, राजाकी बात मान ली ।

इसके बाद मंत्री, घर आ, हथेली पर मिर रखकर मन-ही-मन विचार करने लगा,—“हाय ! मेरी तो वही हालत हो रही है, कि एक ओर बाघ बैठा है, और दूसरी ओर नदी लहरा रही है । इधर उनके मुँहमें घबरे जानेका भय है, उधर नदीमें डूब जानेका । इसका कारण यह है, कि राजाकी पुत्री देवांगना की भाँति रूपवती है और मेरा पुत्र कोढ़के रोगसे परामर्शको प्राप्त हो रहा है । फिर जान-बूझकर मैं इन दोनोंकी जोड़ी क्यों मिलाऊँ ? इसी तरहकी विनाशों में मन्त्री खाना-पीना भी भूल गया । अन्तमें उसे यह याद आया कि, मेरी कुलदेवी बड़ी जागती देवी हैं । मैं उन्हींकी आराधना करूँ, तो मेरा मनोरथ निश्च हो जाये । ऐसा विचार कर, मन्त्रीने बड़ी विधिसे साथ अपनी कुल-देवीकी आराधना की । उसकी आराधनासे प्रमत्त हो, देवाने प्रत्यक्ष प्रकट हो करके कहा,—“हे मन्त्री ! तू किसे लिये मेरा ध्यान कर रहा है ?” मन्त्रीने कहा,—“माता ! तुम तो स्वयं ही सब कुछ जानती हो, तो भी जब पृथ्वी हो, तो लो, कोई देता हूँ, छन लो । मेरा पुत्र, दुष्ट दुष्ट-व्याधित परामर्शको प्राप्त हो रहा है । तुम ऐसी कृपा कर दो, जितने मेरा पुत्र इस रोगके पंजते हट जाये ।” इस पर देवाने कहा, —“पूर्वमें किसे हुए कभीके दोषोंने जो व्याधि उत्पन्न हुई हो, उन्हे दूर करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । इसलिये मुन्दारी यह

प्रायेणा व्यर्थ है ।" यह सुन मन्त्रीने मन-ही-मन विचार कर कहा,—“अच्छा यदि ऐसा नहीं हो सक्ता, तो तुम कोई उम्मीकी सी आहुतिपामा व्याधि-रहित, तूमराही पुण्य कहींसे ढूँढ़ लाओ, तो मैं उसीके साथ राजकुमारीका ब्याह कराके पीछे राजकुमारीको अपने पुत्रके हवाले कर दूँगा ।” देवीने कहा,—“मन्त्री ! मैं किसी बालकको लाकर नगरके दरवाजे पर धोड़ोंकी रक्षा करनेवाले राजपुरुषोंके पास ले आऊँगी । वह जाड़ा बुर करनेके लिये जय आगके पास आ बैठे, तब तुम उस लड़केको गद्दामे उड़ा ले आना ।” इसके बाद जैसा उचित ज्ञान पड़े, वैसा करना । यह कह देवी अदृश्य हो गयी । इसी बात-पर विस्वास कर मन्त्री बड़ी प्रसन्नताके साथ विवाहकी तैयारियों करने लगा । इसके बाद मन्त्रीने अपने अध्यात्मको एकान्तमें बुनाकर उमने मारा हाल कह सुनाया और बड़े आदर में कहा,—“यदि कोई बालक कहींसे आकर तुम्हारे पास बैठ रहे, तो तुम उसे झटपट में पास ले आना ।” अध्यात्मने उनकी यह आज्ञा मान्य स्वीकार कर ली ।

इसके बाद कुलदेवीने अपने ज्ञानमें यह मायूम कर लिया, कि इस राजपुत्री का घर तो मंगलकालमें होने वाला है । बस, उन्होंने उज्जयिनी—नगरीमें आकर बागमें वृक्ष लेकर आते हुए मंगलकालमें देव, आकाशमें ही उड़े हुए कहा,—“यह जो बालक वृक्ष लेकर आया जा रहा है, वह किसारे पर किसी राज-कन्यामें शारी होगा ?” यह सुनकर मंगलकालमें बड़ा निश्चय हुआ । “यह क्या ?” वहीं सोचते हुए उमने मन-ही-मन निश्चय किया, कि घर पहुँचकर पितासे यह बात कहूँगा । इसके बाद जब वह घर पहुँचा, तब पितासे यह बात कहना शुरू ही गया । दूसरे दिन, उमने फिर वैसी ही बात सुनी । उस समय अपने अपने मनमें विचार किया,—“अहा ! जो बात मैंने कल्प ली थी, वहीं तो आज भी आकाशमें सुनाई दे रही है । अच्छा, कल्प तो मैं यह बात पिताजी से कहना भूल गया, पर आज अनाम कहूँगा ।” ऐसा ही विचार करना हुआ वह शाममेंसे आया आ गया था, कि इसी समय बड़े जोरकी आधी उड़ी और उमने अज्ञानमार्गिक पासवाले जंगलमें उड़ा ले गयी । एकएक वहाँ पहुँच कर वह वहाँ अवर्तल हुआ । इसके बाद थका-माँसा और व्यामा होनेके कारण वह कुछ समय-आलस का आ निमेष सोकर देव, वहाँ पहुँचा और वस्त्र भिगो, और उम्मीकी निशान का पानी पिता, इसके बाद स्वप्न हो, कुछसे कुछ में, उमने उनकी स्मृति बना ली और उमने महारे सोनेके नीर पर उमने हुए एक बड़े जड़ी बट-बूझा कर रखा । इनमेंसे कुछ अमृत हो गये । उस समय बट-बूझा कर बैठे हुए हमने जो बातें और मन्त्र सीखाए, तो बालकी उत्तर दिशाकी ओर आदि

जलती हुई मान्म पड़ी । यह देख, वह वृजने नीचे उतरा: पर साथ ही डर गया । छंदके मोरे उसका शरीर काँप रहा था । इसी लिये वह धीरे-धीरे उस आगकी सीध पर चल पड़ा । क्रमशः वह चम्पापुरीके बारी हिस्सेमें आ पहुँचा और आगपालोके पास बैठकर आग तापने लगा । उसे देखकर आग-पालक, "यह क्षीर दालक कौन है ? कहाँसे आया है ?" इस तरहकी बातें एक दूसरेसे पूछने लगे । उपर लिख हुए आगपालोके स्वामीने जब यह बात सुनी तब मन्त्रीकी दातका स्मरण कर, उस दालकको अपने पास उठा लिया । उसके पास आनेपर उसने उसकी छंद दूर करनेका उपाय कर दिया और संवरा होते ही उसे मन्त्रीके पास ले गया । उसे देख, मन्त्रीको बड़ा खेद हुआ । उसने उसे एक गुप्त स्थानमें ला रक्खा और उसे स्नान-भोजन कराके मन्त्रुष्टिया । यह सब देखकर मंगलशम्भुने सोचा,— "यह मेरी इतनी बेहिस्ताब खातिर दारों क्यों कर रहा है ? साथही मुझे इस तरह क्षिप्त कर क्यों रखा है ?" यह विचार मनमें आतेही उसने मन्त्रीसे पूछा,— "इस परदेगीकी व्याप इतनी खातिर क्यों कर रहे हैं ? यह नगरी बौनमा है ? यह देश बौनमा है ? मेरा यहाँ क्या काम है ? यह सब सब-सब बतलाइये । मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है ।" यह सुन, मन्त्रीने कहा,— "इस नगरीका नाम चम्पा है । यह देश चंग नामसे प्रसिद्ध है । यहाँ सुखसुन्दर नामके राजा राज्य करते हैं । मैं उनका मन्त्री हूँ । मेरा नाम सुदुर्दि है । मैंने ही तुम्हें एक बहुत बड़े बाँके लिये बुलावा भेगवाया है ।"

मंगलशम्भुने फिर पूछा,— "यह बौनमा क्यों है ?" सुदुर्दिने कहा,— "हो ! राजाने अपनी प्रेक्षिकाएन्द्री नामक बन्दाका विवाह मेरे पुत्रके साथ करना निश्चय किया है; परन्तु मेरा पुत्र कुष्ठ-व्याधिसे पीड़ित है । इसी-लिये, हे भद्र ! मैंने तुम्हें यहाँ बुलावाया है, कि तुम उस बन्दाके साथ विवाह कर, उसे फिर मेरे पुत्रको दे देना ।"

यह सुन, मंगलशम्भुने कहा,— "मन्त्रीजी ! व्याप यह इतना बड़ा कुर्म करनेको क्यों तैयार हैं ? यहाँ वह अत्यन्त सुखकी दाता और यहाँ तुम्हारा बेटी पुत्र ! तुमने तो यह बयान बने बहाल नहीं होना । यह तो किसी भी आगे आदमी को बुरीसे उतार कर खम्पी बर दातनेके बराबर है । यह काम भला क्यों बने ?"

तब तो मन्त्रीने विवक्षित कर कहा,— "क्यों तुम ! यदि तुम यह काम न करोगे तो मैं तुम्हें अपने हाथों मार दामेंगा ।" यह कह, सुदुर्दि मन्त्री अपने हाथ के मारने से, बड़ी भयंकर मुद्रा बना कर उसे दात-अन्यथा, पालू हा कुर्नी-

नोंमें शिरोमणि मंत्रीके सोचे हुए कुकर्मसे सार्झादार बननेको तैयार नहीं हुआ । इसी समय कुछ और बड़े बड़े लोग वहाँ आ पहुँचे और मंत्रीको उमका वध करने से रोक कर मंगलकर्मसे बोले,—“भाई ! तुम मंत्रीकी बात मान लो । बुद्धिमान् मनुष्य समय देखकर काम किया करते हैं ।” यह सुनकर उसने मन-ही-मन विचार किया,— “निरवय यही बात होनेवाली है; नहीं तो मेरा उज्जयिनीसे यहाँ आना क्यों कर होगा ? सर्व प्रथम आकाशवाणीने भी तो यही बात कही थी । इस लिये मुझे यह बात अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये; क्योंकि जो होनहार होती है, वह तो होकर ही रहती है ।” यही सोचकर उसने अबके मंत्री से कहा,— “यदि मुझे लाचार होकर यह निर्दय कार्य करना ही पड़ेगा, तो क्या कहूँगा ? यन्त्रु में आपकी बात माने लेता हूँ; पर आपको भी मेरी एक माँग पूरी करनी होगी ।” यह सुनतेही मंत्रीका सुर नरम होगया और उसने बड़े तर्का-कत्ते साथ कहा,— “हाँ, हाँ, कटपट कह डालो । मैं तुम्हारी माँग अवश्य पूरी करूँगा ।”

मंगलकर्मगणे कहा,—“राजा जो-जो चीज़ मुझे देगे, उन सबका मालिक आप मुझे ही समझना और उन सभी वस्तुओंको तत्काल उज्जयिनीके मागमें लाकर उपस्थित कर देना ।” मंत्रीने कटपट उमकी यह बात मानली ।

इसके बाद, जब व्याहृष्टा मुहूर्त समीप आया, तब मंत्री उगे अच्छे-अच्छे वस्त्राभंकार पहना, हाथी पर बैठाकर राजाके पास ले गया । उसका सुन्दर रूप देख, राजा मुग्ध हो गये । श्रौषोक्य-सुन्दरी उम कामदेवके समान वरको देखकर मन-ही-मन अपनेको कृतार्थ मानने लगी । तत्पश्चात् विवाहके समय ‘पुण्याश्वं, पुण्याश्वं’ इस प्रकारका वाक्य उच्चारण करते हुए ब्राह्मणने वर-वधूको अग्निका चार बार केरा दियवाया । चारों प्रक्षारके मंगलाचार करवाये । पहले मंगलाचार के समय राजाने वरको बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वस्त्र दान किये, दूसरेमें आभूषण दान किये, तीसरेमें मणि-रत्न, एवं आदि मूल्यवान् वस्तुएं दिये और चौथेमें रथ आदि वाहन प्रदान किये । इस प्रकार बड़े ही आनन्दमें वर-वधूका विवाह हो गया । विवाहकी मारी क्रिया समाप्त होनेपर, जब जामाताने वधूका हाथ पकड़ा, तब उसके हाथ अयाग करनेके पहले ही राजाने पुत्रा,— “वत्स ! अब मैं तुम्हें कौन सी चीज़ दूँ ?” यह सुन, उसने पाँच अच्छी नगणके तेज धोड़े माँगे । राजा बड़े प्रमत्न हुए और उन्होंने तत्काल उसके माँगे अनुसार पाँचधोड़े उसे दे दिये । इसके बाद राजा राजाके साथ सुन्दरियोंके संगम-गीत और भाट चारोंके जय-जय शब्द सुनने हुए मंगलकर्म आरम्भ भव-विवाहिता परनीके साथ मंत्रीके घर आया । रातक समय मंत्रीके आदमी द्विपे द्विपे यह बात

कहते छनाई दिये, कि अब किसी उपायसे शीघ्र ही यहाँसे हटा देना चाहिये। यह उन और आकार-प्रकार तथा चेष्टासे अपने स्वामीको चंचल देख, त्रैलोक्य-सुन्दरी अपने पतिके पास हो चली आयी। थोड़ी देर बाद मंगलकलग्न शौचादिके लिये उठ खड़ा हुआ। यह देख, राजकुमारी भी जलका पात्र हाथमें ले, उसके पीछे-पीछे गयी। उस जलको ले, शौचादिके निवृत्ति होकर मंगलकलग्न फिर घरमें चला आया; परंतु उसके मनमें चिन्ता बनी हुई थी। उस समय त्रैलोक्य-सुन्दरीने अपने पतिको सून्य चित्त देख, विलकुल एकान्त पाकर पड़ा—“प्राण-नाथ ! क्या आपको भूख मालूम होती है ?” इसके जवाबमें उसने हाँ कह दिया। यह उन उसने अपनी दासीसे पिताके घरसे आये हुए मिष्ठान्न मँगवा कर दिये। उन्हें खाकर पानी पीते-पीते मंगलकलग्नने कहा,— “अहा ! यह सुंदर केंसर भरी मिठाई खानेके बाद यदि कहीं उज्जयिनीका जल मिल जाता, तो फिर कैसी तृप्ति होती ! बिना उसके तृप्ति कहाँ ?”

यह वचन सुन, राजकुमारी मन-ही-मन व्याकुल होकर सोचने लगी,—“पूँ ! ये ऐसी विचित्र बात क्यों बोल रहे हैं ? इन्हें उज्जयिनीके जलकी मिठास कैसे मालूम हुई ? अथवा हो सकता है, कि इनका ननिहाल यहाँ हो और ये लड़कपनमें वहाँ जाकर वहाँका हवा-पानी देख आये हों। इसके बाद उसने पाँच सुगन्धित पदार्थोंमें मिश्रित ताम्बूल, अपने हाथों बनाकर, पतिकी मुखयुद्धि के लिये दिये। थोड़ी देरमें मन्त्रीने मंगलकलग्नके पास आदमी भेजकर उसे समय की सूचना दी, जिस सुनते ही मंगलकलग्नने त्रैलोक्यसुन्दरीसे कहा,—“प्यारी ! मुझे फिर गौच जानेकी इच्छा हो रही है—पेटमें बड़ा दर्द हो रहा है। लेकिन देखना, इसबार जलका पात्र लेकर जल्दी न आना। थोड़ी देर ठहर कर आना।” यह कह, वह घरमें बाहर चला आया।

मन्त्रीके पास पहुँच कर उसने पूछा,—“राजाने जो मुझे आज्ञा दी पदार्थ दिये थे, वे सब कहाँ रखे हैं ?” मन्त्रीने कहा,—“वे सब उज्जयिनीके राम्नेमें हैं।

यह सुन वह वहाँ गया और सब चीज़ोंको एक रथ पर रखकर, उसमें चार घोड़े जोत दिये। पाँचवें घोड़ेको पीछे बाँध दिया। बहुतसी चीज़ें तो उसने वहीं छोड़ दीं और अपनी नगरीकी राह नापी। राम्नेमें जो जो गाँव मिलते गये, उन सबके नाम उसने मन्त्रीके सेवकोंसे मालूम कर लिये। इस तरह रथमें बैठा हुआ रात-दिन चमकर, वह कुछ दिनोंमें अपनी नगरीमें आ पहुँचा।

इधर मंगलकलग्नके गुम हो जानेके बाद उसके नाता-निताने उसकी बड़ी खोज-तूँठ करवायी; पर जब कहीं उसका पता न मिला, तब रोने-रोते घरकर वे

नोंमें शिरोमणि मंत्रीके मोचे हुए कुकर्ममें सार्कीदार बननेको तैयार नहीं हुआ । इसी समय कुछ और बड़े बड़े लोग वहाँ आ पहुँचे और मंत्रीको उमका बध करने में रोक कर मंगलकर्मसे बोले,—“भाई ! तुम मंत्रीकी बात मान लो । मुद्दिमान् मनुष्य समय देखकर काम किया करते हैं ।” यह सुनकर उसने मन-ही-मन विचार किया,— “निरवय यही बात होनेवाली है; नहीं तो मेरा उज्जयिनीसे यहाँ आना क्यों कर होता ? सर्व प्रथम आकाशवाण्याने भी तो यही बात कही थी । इस लिये मुझे यह बात अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये; क्योंकि जो होनहार होती है, वह तो होकर ही रहती है ।” यही सोचकर उसने अपने मंत्री से कहा,— “यदि मुझे साधार होकर यह निर्दय कार्य करना ही पड़ेगा, तो क्या करूँगा ? अस्तु मैं आपकी बात माने लेता हूँ; पर आपको भी मेरी एक माँग पूरी करना होगी ।” यह सुनतेही मंत्रीका सर नरम हो गया और उसने बड़े सत्पाकके साथ कहा,— “हाँ, हाँ, कटपट कह डालो । मैं तुम्हारी माँग अवश्य पूरी करूँगा ।”

मंगलकर्मसे कहा,—“राजा जो-जो चीज़ें मुझे देंगे, उन सबका मासिक आप मुझे ही समझना और उन सभी वस्तुओंको तत्काल उज्जयिनीके मार्गमें लाकर उपस्थित कर देना ।” मंत्रीने कटपट उमकी यह बात मानली ।

इसके बाद, जब व्याहृका मुहूर्त समीप आया, तब मंत्री उसे अच्छे-अच्छे वस्त्रालंकार पहना, हाथी पर बैठाकर राजाके पास ले गया । उसका सुन्दर रूप देख, राजा मुग्ध हो गये । त्रैलोक्य—सुन्दरी उस कामदेवके समान वरको देखकर मन-ही-मन अपनेको कृतार्थ मानने लगी । तदनन्तर विवाहके समय ‘पुण्याह, पुण्याह’ इस प्रकारका वाक्य उच्चारण करते हुए माझ्याने वर-वधूको अग्निका चार बार चरा दिववाया । चारों प्रकारके मंगलाचार करवाये । पहले मंगलाचार के समय राजाने वरको बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वस्त्र दान किये, दूसरेमें आभूषण दान किये, तीसरेमें मणि-रत्न, सुवर्ण आदि मूल्यवान् पदार्थ दिये और चौथेमें रथ आदि वाहन प्रदान किये । इस प्रकार बड़े ही आनन्दसे वर-वधूका विवाह हो गया । विवाहकी सारी क्रिया समाप्त होनेपर, जब जामाताने वधूका हाथ पकड़ा, तब उसके हाथ अलग करनेके पहले ही राजाने पृथा,— “वरम ! अब मैं तुम्हें कौन सी चीज़ दूँ ?” यह सुन, उसने पाँच अच्छी जयन्तके तेज घोड़े माँगे । राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने तत्काल उसके माँगे अनुसार पाँच घोड़े उसे दे दिये । इसके बाद राजा बाजेके साथ सुन्दरियोंके मंगल-गीत और भाट चारोंके जय-जय गन्ध सुनते हुए मंगलकर्म अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ मंत्रीके घर आया । रातके समय मंत्रीके आदमी द्वारे द्वारे यह बात

बुद्धदिनोंमें शोर-रहित से हो गये। इतनेमें एक दिन उमकी माता ने उसे रथमें बसे हुए, अपनी घरकी तरफ आते देख, पुत्रको नहीं पहचाननेके कारण, सहमा पुकार कर कहा,— “हे राजपुत्र ! तुम मेरे घर पर रथ क्यों ला रहे हो ? मीठी राह छोड़कर नयी राह क्यों जा रहे हो ?” परन्तु इस प्रकार रोکنे पर भी जब उमने रास्ता नहीं बदला, नव सेठानीने बहुत ही धराकर सेठको बुलाया और उनको सारा हाल कह सुनाया । यह सुन, सेठ उमे रोکنेके लिये ज्योंही घरमे बाहर निकले, त्योंही मंगलकन्यगने रथमे नीचे उतर कर, पिताके घरखोंमें माथा टेका । तबतो पिताने पुत्रको पहचान कर, उसे बड़े प्रेममे गप्पे लगा लिया । इसके बाद ध्यानन्दके आँसू टपकाते हुए माता-पिताने पहले तो उसका कुशल समाचार पूछा । इसके बाद थौर-थौर बाने पूछीं । इस अपार सम्पत्तिके प्राप्त होनेकी बात भी पूछी । इस पर मंगलकन्यगने अपना सारा हाल माता-पिता को कह सुनाया । यह सुन, उमके माता-पिताने मन-ही-मन विचार किया, “अहा ! इस लड़केका भाग कितना बड़ा है !” इसके बाद सेठने अपने घर को लुढ़वाकर किला बनवाया और उसमें गुप्त रीतिमें उन पौखों आखोंको रख दिया । पुत्रके घर आजानेकी खुशीमे सेठके घर बड़ी धूमधाममें बधाइयाँ बजने लगीं ।

एक दिन मंगलकन्यगने अपने पितामे कहा,—“पिताजी ! अभी मुझे थोड़ासा कलाभ्यास करना बाकी रह गया है, उसे भी पूरा कर डालूँ, तो अच्छा है ।” यह सुन, सेठने अपने घरके पाम ही रहनेवाले एक कलाचार्यके पाम उसे कला सीखनेके लिये भेज दिया । वह वहीं अभ्यास करने लगा ।

इधर चम्पापुरीमे मंत्रीने पुत्रको मंगलकन्यगके गहने कपड़े पहना कर, रात के समय राजकुमारीके कमरेमे भेजा । वह आते ही बेजपर बैठ गया । उसे देखते ही त्रिलोक्यसुन्दरीने सोचा,—“यह कौन कोढ़ी मेरे पलंग पर आ बैठा ?” इसके बाद वह ज्योंही राजकुमारीको झूनेके लिये आगे बढ़ा, त्योंही वह शय्या से नीचे उतर पड़ी और भारी हुई वहाँ चली आयी, जहाँ उसकी दासियाँ सोयी हुई थीं । उसे इस तरह एकाएक वहाँ पहुँची देख, दासियोंने पूछा,—“स्वामिनी ! आप इतनी धरायी हुई क्यों मालूम पड़ती हैं ?” उसने उत्तर दिया,—“मालूम होना है, कि मेरे देवताके समान सुंदर स्वरूपवान् स्वामी कहीं चले गये ।” दासियोंने कहा,—“नहीं, नहीं—अभी तो वे तुम्हारे कमरेमें गये हैं !” राजकुमारीने कहा,—“वह मेरा पति नहीं, कोई कोढ़ी मालूम पड़ता है ।” यह कह, वह सुंदरी रात भर दासियोंके ही मध्यम सोयी रही । सारी रात वहीं बिताकर, सुबेरा होते ही त्रिलोक्य सुन्दरी अपने पिताके घर चली गयी ।

पड़ी ? अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यह तो मेरे ऊपर बड़ी भारी बिपत्ति आ पहुँची !” इन्हीं प्रकार सोचने-विचारते उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, कि जिनका मेरे साथ विवाह हुआ है, वह मेरे स्वामी अवश्य ही उज्जयिनी-नगरी में चले गये हैं । कारण उस दिन मिठाई खानेके बाद उन्होंने कहा था कि, यदि मिठाईके ऊपरसे उज्जयिनीका जल मिलता तो क्याही अच्छा होता ! इस से तो यही संभव मालूम होता है, कि वे उज्जयिनी चले गये होंगे । अब यदि मैं किसी उपायसे यहाँ पहुँच सकूँ तो उनसे मिलकर अवश्य ही छुन्नी हो जाऊँगी । इस प्रकार विचार करती हुई वह, थोड़ी देरतक वहीं बैठी रह गयी ।

एक दिन उसने अपनी मानामे कहा,—“माता ! तू देना कोई उपाय कर जिससे पिताजी एक बार मेरी बात सुनले ।” परन्तु यह सुनकर भी, उसकी माता ने उसका मान नहीं रक्खा । तब दूसरे दिन छन्द्रीने सिंह नामक एक सरदारको बुलाकर, उस पर अपना अभिप्राय प्रकट किया । उसकी आज्ञासे अन्त तक मारी बातें सुन, मन-ही-मन बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद सरदारने कहा,—“बेटी ! तू उतावली मत हो । मैं अवसर देखकर राजा से तेरी सब बातें कह सुनाऊँगा और तेरी इच्छा पूरी करूँगा ।” यह सुन, राजकुमारीको धैर्य हुआ ।

एक दिन समय पाकर सिंहने बड़ी युक्तिके साथ राजाने कहा,—“राजन् आपकी पुत्री बेचारी इस समय बड़े कष्टमें है । उसका सम्मान करना तो दूर रहा, कमसे कम इतनी भी तो कृपा कीजिये, कि उसकी बातें सुन लीजिये ।” यह सुन, राजा की आँखोंमें आँसू भर आये । उन्होंने सिंहसे कहा,—“सामन्त ! मेरी पुत्रीने किसी पर भूटा अपराध लगानेका अपराध किया है, इसी ने इस जन्ममें उस पर कलंक लगा है और वह-आपसे आप छलकी जगह दुःख पा रही है । पर यदि वह मुझसे कुछ कहा चाहती हो तो भये ही मेरे पास आकर कहे, मैं सुननेको तैयार हूँ ।” इस प्रकार राजाकी आज्ञा पा, सामन्तने त्रैलोक्यछन्द्रीके पास आकर कहा,—“पुत्री ! जा, तू अपने पिताके पास आकर जो कुछ कहना हो, कह सुना ।” यह सुन त्रैलोक्यछन्द्रीने राजा के पास आकर कहा,—“पिताजी ! मुझे राजकुमारोंकीभी पोशाक मैंगा दीजिये । यह सुन, राजाने सिंहसे कहा,—“सामन्त ! यह आकत की मारी क्या ऊटपटांग बक रही है ?” सामन्तने कहा,—“महाराज ! इसने जो कुछ कहा, वह ठीक ही कहा है । यह पतिपाटी से पहलेसे ही चली आ रही है । राजकुमारियाँ बड़े बड़े कार्योंका साधन करनेके लिये पुरुष-वेष धारण कर सकती हैं । इसमें कोई बुराई नहीं है, इस लिये आप संशय न करें, प्रसन्नतासे राज-

उपायों से इन अग्नींके पीछे-पीछे जाइये ।” सिंहने कहा, “इन घोड़ोंके मालिककी गिजायाला यहाँ पास ही है । तुम एक दिन वहाँके अध्यापकको विद्यार्थियोंके साथ आकर, भोजन करनेके लिये निमन्त्रण दे दो, फिर जैसा कुछ होगा, किया साधगा ।” सुन्दरीने ऐसा करना स्वीकार कर लिया । भोजनकी सारी सामग्री तैयार कर उसने उपाध्यायको निमन्त्रण दिया । ठीक समय पर उपाध्याय अपने सब विद्यार्थियोंके साथ आ पहुँचे । उन विद्यार्थियोंके मध्यमें अपने पतिकी देण कर, श्रीलोक्यसुन्दरीके मनमें बड़ा ही आनन्द हुआ । तदनन्तर उसने हर्षके आशयमें आकर अपना आमन और धाल इत्यादि मंगलकलशके लिये भेजा और उसकी बड़ी भक्ति की । सबको आदरके साथ भोजन कराकर उसने वस्त्र भी दिये और मंगलकलशको उसीके शरीरके दो सुन्दर बंध दिये । इसके बाद उसने कलाचार्यसे कहा,—“आपके इन विद्यार्थियोंमें जो श्रेष्ठ अच्छी कहानी सुना सकता हो, वह मुझे एक कथा सुनाये ।” यह सुन, मंगलकलशकी विशेष भक्ति हुई देख, शाहने जैसे हुए, सब विद्यार्थियोंने कहा,—“हमलोगोंमें मंगलकलश ही सबसे अधिक प्रवीण है, यही कथा सुनायेगा ।” सबकी ऐसी बात सुन पण्डितने भी मंगलकलशको ही कथा सुनानेकी आज्ञा दी । पण्डितकी आज्ञा पाकर मंगलकलशने कहा,—“कोई कल्पित कथा सुनाऊँ या आप बीती कह सुनाऊँ” यह सुन कुमार वेशधारिणी राजपुत्रीने कहा,—“कल्पित कथा छोड़ो आप बीती घटना ही कह सुनाओ ।” उसकी यह आज्ञा कानमें पड़ते ही मंगलकलशने सोचा,—“यह तो वही श्रीलोक्यसुन्दरी मालूम पड़ती है, जिसके साथ मैंने चम्पापुरीमें विवाह किया था । वही किसी कारण्से गुप्त वेश बनाकर यहाँ आयी हुई है ।” यही सोच कर वह अपनी रामकहानी सुनाने लगा । आदि, मध्य और अन्तका अपना सारा चरित्र, सुबुद्धि मंत्रीके द्वारा अपने घरसे हटाये जाने तकका हाल उसने कह सुनाया । यह सुन, राजकुमारीने बनावटी श्रेष्ठ दिशाते हुए कहा,—“कोई है ? अभी इस ऊँटी बात बनानेवासेको गिरफ्तार कर लो ।” यह सुनते ही उसके सेवकोंने उसे गिरफ्तार करना ही चाहा, कि स्वयं उसने उन्हें रोका और मंगलकलशको घरके अन्दर ले गयी । वहाँ उसे एक आसन पर बैठाकर, उसने सिंह सामन्तने कहा,—“मेरा जिनके साथ विवाह हुआ था, वे मेरे स्वामी यही हैं । अतएव अब बतलाइये, कि मैं क्या करूँ ? शीघ्र विचार कर कहो ।” सरदारने मध्यम उत्तर दिया,—“यदि सचमुच यही तुम्हारे स्वामी हों, तो तुम इनको धर्मकार करो ।” यह सुन, राजकुमारीने कहा,—“सरदार ! यदि तुम्हारे मनमें कोई संका हो तो तुम अभी इनके घर जाकर, मेरे पिताके दिये हुए धाल आदि

पदार्थों के ऐतच्छर बनना संभव दूर का मर्क है। उस राजकुमार ने इस मर्क के साथ बह बह करी, तब सिंह सामन्त मंगलकरके घर गया और अपनी दिव्य-उपाय कर, मंगलकरके पिता के पुत्र के समाने समाने मर्क कया कह सुनायी : इसके बाद वह सिंह राजकुमार के पास गया था। तदनन्तर सिंह सामन्त की मर्काने स्वीकृत कर, राजकुमार मंगलकरके घर गयी और उनकी इन्तजारी के समान रहने लगी।

उमरिनी के राजाने उस बह बह सुनी, तब उन्होंने मेवके अपने पास पुनरा और सब हाल सुन बड़ा आश्चर्य अनुभव किया। तदनन्तर राजा की आज्ञाने मंगलकर उनी मर्काने अपनी रज्जो के साथ विनाम करने लगा। इसके बाद उनीकर इन्दराने सिंह सामन्त के मर मर्क के साथ रज्जुगुनी मेव दिया और उसके साथ ही अपनी मर्काने रोदाक भी बाधित दी। सिंह सामन्तने रज्जुगुनी आकर राजाने मर बाने कह सुनायी। राजाने मर हाल सुन, प्रसन्न होकर कहा,—“अहा, मेरी पुत्री के कभी कला-कुपण दिव्य मर्क ! और इस मर्क की दुष्ट दुष्टि को तो देखो कि इन्ने मेरी दिव्य कला के मित किया बड़ा श्रेष्ठ मर दिया !”

इसके बाद राजाने सिंह सामन्त के लिए उमरिनी मेवकर अपनी कला और ज्ञाना के मर्क पुनरा मंगला और उनका मर्क मर्क आदर-मर्क किया। तदनन्तर उस दुष्ट दुष्टि मर्क मर्क भगदायेद कर, उनकी मर्क मर्काने हर कर भी और उनी कथनानिने मे जातेक हुकम दिया। कथनानिने उनी मर्क पर बड़ा कर कला के मर कथे-कथे राजाने सुनाता हुआ, कथनानिने मे गया। उस मर्क मंगलकरने राजाने बड़ा विनयी करके उसे सुकरा दिव्य दिया। उनी कथनकी आज्ञा मेने हुन राजाने उनी कहा,—“मे राजा ! देख, मैं तुझे अपने इन्ना के कहने मे मेव देता हूँ : तब दू कथने मे राजाने बाहर निकल जा।”

वह सुन, मेरी उनी मर्क उस मर्काने बाहर हो गया। राजाने कथे पुन न होने के कारण मंगलकरकी ही कथना पुन मर्क और उनके मर्कानिने भी बड़े आदरने वही हुकम किया। एक दिन राजाने मेरी और सामन्त आदिकी मर्काने बड़े पुन-आमर्क साथ, अपनी राजमंगलकरके दे दाना तदनन्तर सरलन्दर राजाने मर्काने राजक एक मर्काने जाति प्रहृष्ट किया।

सरलन्दर राजा के दीक्षा प्रहृष्ट करने पर, वह सुनकर कि उनके राज मर्काने एक वरिष्ठ जातिके पुनरा अधिकार है, कथे एक मर्काने राजा मेने मेने उस राजा के हृदय मेनेकी इच्छाने उस मर बड़ा आने। मर्क-

उस राज-कन्याको अत्यन्त रूपवती देख, इन्दुपेश और विन्दुपेश नामक दोनों राजकुमार उसमें व्याह करनेकी इच्छामें देवामय नामक उद्यानमें जा ; बहुत पहन कर, परस्पर युद्ध करने लगे । बहुतोंने उन्हें रोका-थाका, पर वे युद्धसे पीछे न हटे । उस समय अरुण कणायनाम, निर्मल मननाम, त्रिनेश्वर-की वृद्धभक्तिताले तथा प्रिय वचन बोलनेनाम धीपेश राजा जब किसी तरह उन परस्पर शत्रुकी भाँति युद्ध करनेवाले राजकुमारोंको युद्धमें रोकनेमें समर्थ नहीं हुए, तब उन्होंने मन-ही-मन विचार किया,—“यह देवो, शिवकी सन्मता, कर्मकी विधिव्रता और मोहकी कङ्कशा बैसी आश्चर्यजनक होती है ! मेरे हतने बड़े बुद्धिमान् पुत्र भी किम प्रकार एक स्त्रीके लिये आपसमें युद्ध कर रहे हैं ! इनकी यह दुष्टता देख, मुझे तो ऐसी सज्जा हो रही है, कि समासदोंके सामने मुँह दिखानेका भी जी नहीं चाहता । मैं कैसे उन्हें अपना मुँह दिखाऊँगा ? इसलिये अब तो मेरा मर जाना ही ठीक है । कहा भी है, कि प्राण दे देना अच्छा; पर मान गैवाना अच्छा नहीं । क्योंकि मृत्युमें तो सब भरका दुःख होता है; परन्तु मान-भंग होनेमें तो हर घड़ी दुःख होता रहता है ।” ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही राजाने अपनी रानियों पर भी इस विचार-को प्रकट किया । इसके बाद राजाने पंचपरमेष्ठी मन्त्रका स्मरण करते हुए, दोनों स्त्रियोंके साथ विष-मिश्रित कमलको सौंघ कर प्राणत्याग कर दिया । उसी समय सत्यभामाने भी कविलके डरके मारे उसी रीतिमें प्राणत्याग कर दिया । वे चारों जीव मरकर जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रके अन्तर्गत उत्तर कुल्लोत्रमें जुड़ैले बालककी तरह उत्पन्न हुए । धीपेश और उनकी पहली स्त्री एक साथ पैदा हुए और दूसरी जुड़ैली बालिकाएँ सिंहनन्दिता तथा सत्यभामा हुईं ।

इधर धीपेश राजाकी मृत्यु हो जानेके बाद एक चारण-मुनिने वहाँ आकर युद्ध करते हुए इन्दुपेश तथा विन्दुपेशसे कहा,— “हे राजकुमारों ! तुम दोनों ही बड़े कुलीन और सुन्दर हो, पर क्या यह निन्दुर कार्य करते हुए तुम्हें सज्जा नहीं आती ? तुम्हारी इस दुष्ट धेन्याको देखकर ही तुम्हारे माता-पिता विष सौंघकर मर गये । अब तो तुम अपने माता-पिताके उपकारका बदला - किसी तरह नहीं दे सकते । कहा है, कि—

अस्मिन् जगति महत्यपि, न किञ्चिदपि घस्तु घेधसा विहितम् ।
अतिशयघरसल्लताया, भर्घाति यतो मातुरुपकारः ॥ १ ॥

‘इस इतने बड़े संसारमें भी विधाताने ऐसी कोई वस्तु नहीं बना-यी, जिससे अत्यन्त वात्सल्यमयी माताका प्रत्युपकार किया जा सके ।’

द्वितीय-प्रस्ताव

इस भरत क्षेत्रके घैताद्वय-पर्वतपर उत्तर धेनीके मलझारके समान रघनूपुर शक्रवाल नामका नगर है। उसमें उवलनजट्टी नामक विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम वायुधेगा था। उसीके गर्भसे उत्पन्न, अर्क (सूर्य) द्वारा स्वप्नमें सूचित किया हुआ, अर्ककीर्ति नामका एक पुत्र भी उस राजाके था। यह जय युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसे युवराजके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद उस राजा की धन्त्रमाकी रेखाके उत्तम स्वप्नसे सूचित एक पुत्री हुई, जिसका नाम स्वयंप्रभा रखा गया। क्रमशः वह बालिका बड़ी होने लगी।

एक समयकी बात है, कि उस नगरके उद्यानमें अभिनन्दन और जगतनन्दन नामक दो श्रेष्ठ विद्याधर मुनि आ पहुँचे। उन्हीं लोगोंके पास आकर स्वयंप्रभाने धर्मदेशना सुनी और शुद्ध समाचारी सहित ध्यायिका हो गई। इसके बाद वे दोनों मुनिश्रेष्ठ वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये। एक दिन स्वयंप्रभाने किसी पर्वदिवसको पीपध व्रत ग्रहण किया। शुद्ध रीतिसे पीपध-व्रतका पालनकर पारणाके दिन, प्रातःकाल ही गृहप्रतिमाका पूजनकर, उस बालिकाने पिताके पास जाकर उन्हें रोपाक्ष अर्पित की। राजाने उसे सिरपर घड़ाकर कन्याको अपनी गोद में बैठा लिया। उसका रूप और धवस देख राजा मनही-मन-विचार कर करने लगे,—“देखना हूँ कि मेरी यह कन्या विवाह करने योग्य होगई, तो फिर इसके योग्य कौनसा घर हो सकता है? कहा है कि—

द्वारा देखती है ; मालाण वेदोंके ड्राग देखने हैं और अन्य-मनुष्य-
औरोंसे देखते हैं ।”

इसके बाद दूत भी वहाँ आ पहुँचा । राजाधिराजको तो मेरा
सारा हाल पहलेही मालूम हो गया होगा, यही सोचकर उस दूतने उन-
से सारी बातें सच-सच कह डाली । इसके बाद बोला,—“हे महा-
राज ! यह तो उन बालकोंकी चपलता मात्र थी ; परन्तु प्रजापति राजा-
ने तो आपकी आज्ञाका पाल बराबर भी उल्लंघन नहीं किया । इस लिये
आपको उनपर क्रोध नहीं करना चाहिये ।” यह सुन, राजेन्द्रने मौन
धारण कर लिया ।

राजाके शालिके बहुतसे क्षेत्र थे ; परन्तु उनमें सिंहका उपद्रव भी
बहुत हुआ करता था । इसीलिये प्रत्येक वर्ष कोई न-कोई राजा उस-
की आज्ञाके अनुसार वहाँ आकर उन क्षेत्रोंकी रक्षा किया करता था ।
इस वर्ष प्रजापति राजकी बारी न होनेपर भी अर्धव्रीध राजाने उसके
पास दूत भेजकर उसीकी क्षेत्र-रक्षाका भार दिया । यह सुन, प्रजापति
राजा चिन्तामें पड़ गये और मन-ही-मन विचार करने लगे । इसी
समय उस कठिन आज्ञाकी बात सुन, त्रिपृष्ठ और अचलने-पिताके पास
आकर कहा,—“हे स्वामिन् ! आप चिन्ता न करें । आपका यह काम
हमलोग करेंगे । आप निश्चिन्त रहें ।”

यह कह, ये दोनों बलवान् राजकुमार शालि-क्षेत्रमें जा पहुँचे ।
वहाँ रक्षकोंको उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने कहा,—“सब
राजा लोग इन शालिक्षेत्रोंकी रक्षवाली करनेके लिये अपने सैनिकों और
बाहनोंके साथ आते और चारों ओरसे उनका पहरा बैठा देते हैं, तब
कहीं रक्षा हो पाती है । परन्तु तुम लोग तो बड़ेही विचित्र रक्षक मालूम
पड़ते हो ; क्योंकि न तो तुम्हारे शरीर ही बहुतसे दफे हुए हैं, और न
तुम अपने साथ सैन्य-परिचारही लाये हो ।”

यह सुनतेही त्रिपृष्ठने कहा,—“भाइयों ! पहले तुम लोग हमें उस

12

सिंहको दिखला दो, जिसमें हम यह रखवालीकी बला सब राजाओंके सिरसे बाज ही टाल दें ।”

यह सुन, उन रखवालोंने गिरि-गुहामें पड़े हुए सिंहको उन्हें दिखला दिया । उसे देखकर त्रिपृष्ठ तथपर सवार हो, उस गुफाके द्वारके पास पहुंचा । रथकी घरघराहट सुनतेही सिंह जग पड़ा और अपने मुख-रूपी गुफाको खोले हुए गुफाके बाहर निकल आया । उस समय सिंहको पैदल चलते देख, त्रिपृष्ठ भी रथसे नीचे उतर आया और उसे वेहधियार देख, आप भी अपना हथियार नीचे डाल दिया । कुमारकी यह हरकत देखकर सिंहको बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने अपने मनमें विचार किया,— “मोह ! एक तो आश्चर्यकी बात यही है, कि यह राजपुत्र यहाँ अकेला ही आया है । दूसरी बात अचरजकी यह हुई, कि यह रथसे नीचे उतर पड़ा । तीसरे, यह भी कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं, कि इसने अपने हाथका खड्ग भी फेंक दिया । अच्छा रहो, मैं इसे अपनी अवज्ञाका अभी मज़ा चखाता हूँ ।” ऐसा विचार कर वह सिंह आसमानमें उछला और क्रोधके साथ त्रिपृष्ठके मस्तक पर आ पड़ा । इतनेमें बड़ी कुत्तीके साथ त्रिपृष्ठने अपने दोनों हाथ उस सिंहके मुंहमें डाल, उसके दोनों होंठ दोनों हाथोंसे पकड़ कर, उस सिंहकी देहको पतले वस्त्र की तरह बीचसे फाड़ डाला—उसका शरीर दो टुकड़े होकर भूमिपर गिर गया और वह इसी आनपर क्रोधके मारे कांपने लगा, कि मुझे एक सामान्य मनुष्यने मार डाला । यह देख, राजकुमारके सारथिने कहा,—“हे सिंह ! यह राजकुमार नरसिंह है और तू पशुसिंह है । इसलिये जब सिंहने ही सिंहको मारा, तब तुम क्यों क्रोध कर रहे हो ?” उसकी यह बात सुन, सिंह प्रसन्न हो गया और मरकर नरकको प्राप्त हुआ । इसके बाद प्रजापतिके उन पुत्रोंने उस सिंहका चमड़ा प्रतिवासुदेवके पास भेजकर विद्याधरकी जुबानी कहला भेजा, कि हे अम्भप्रीव महाराज ! अब आप हमारी कृपासे बड़ी आनन्दके साथ इस शालिका भोजन कीजिये । अम्भप्रीवने उस चमड़ेको देख और उनकी कहलवायी हुई बात सुन कर

अपने मनमें विचार किया,—“जब यह इतना बलवान है, तब तो मेरे साथ युद्ध भी कर सकता है।” ऐसा विचार कर वह मौन रह गया।

एक समयकी बात है, कि अभ्यप्रीय राजाने राजकुमारी स्वयं-प्रभाकी सुन्दरताका वृत्तान्त सुनकर उज्जैनजटीसे उसकी याचना की। यह सुन, उज्जैनजटीने दूतके मुँहसे उसे कुछ उत्तर कहला भैया और उसे शांत कर दिया। इधर गुप्त रीतिसे अपनी कन्याको पोतनपुर ले जाकर उसने ज्योतिषीके कहे अनुसार राजकुमार त्रिपृष्ठके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। कुछ दिन बाद हरिश्मधु नामक मन्त्रीने किसीसे स्वयंप्रभाका विवाह हो जानेकी बात सुनकर अपने मालिक राजा अभ्यप्रीयसे यह बात कह सुनायी। इसपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने हुषम दिया,—“मन्त्री तुम अभी त्रिपृष्ठ, अवल और मायायी उज्जैनजटीको बाँधकर मेरे पास ले आओ।” सचिवने अभ्यप्रीयके हुषमकी तामिल करनेके लिये उधरको दूत रवाना किया। उस दूतने पोतनपुर जाकर गर्विष्ठ वचनोंसे उज्जैनजटीसे कहा,—“अरे मूर्ख ! तू मेरे स्वामीको अपनी कन्यारत्न दे डाल। क्या तू नहीं जानता, कि मेरे स्वामी सब प्रकारके रत्नोंके आधार हैं ? कहा भी है, कि—

“मणिर्मैदिनी चन्दनं दिव्यदेति-वंर वामनेत्रा गजो वाजिराजः ।

विनाभूभुजं भोगसम्पत्समर्थं, गृहे युज्यते नैव चान्यम्य पुत्र ॥ १ ॥”

अर्थात्—“मणि, पृथ्वी, चन्दन, दिव्यशस्त्र, मनोहर स्त्री, उत्तम गज और श्रेष्ठ अश्व आदि उत्तम वस्तुएँ भोगकी सम्पत्तियोंमें भरे हुए राजाके सिवा और किसीके घरमें शोभा नहीं पाते ॥”

यह कह, जब यह दूत चुप हो गया, तब उज्जैनजटीने कहा, “हे दूत ! मैं तो अपनी लड़कीका विवाह त्रिपृष्ठके साथ कर चुका। इसलिये अब तो वही उसका मालिक है। मेरा उसपरसे अधिकार जाता रहा।”

यह सुन, यह दूत त्रिपृष्ठके पास बला गया। वही त्रिपृष्ठने उससे कहा,—“हे दूत ! मैंने इस कन्याके साथ विवाह किया है अब यदि

तुम्हारे स्वामी इसकी इच्छा करते हैं, तो मैं पूछता हूँ, कि क्या उन्हें अपना जीवन भारी भालूम पड़ रहा है ? यदि ऐसी बात हो, तो जामो, अपने स्वामीसे कह दो, कि यदि उनमें कुछ भी बल-पराक्रम हो, तो तुरत यहाँ चले मायें ।”

दूनने राजा अश्वप्रोषके पास पहुँच कर ठीक यही बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं । सुनतेही क्रोधमें आकर उसने अपने विद्याधर-धीरोंको शत्रुका संहार करनेके लिये भेजा । स्वामीके भेजे हुए उन वीरोंने पोटनपुर पहुँचकर प्रभुकी प्रेरणाके अनुसार युद्ध करना आरम्भ किया ; परन्तु त्रिपृष्ठने घात-की-बातमें उन सबको परास्त कर दिया । इसके बाद त्रिपृष्ठ विद्याधरोंकी सेना साथ लिये हुए अपने ससुरके नगरमें आ पहुँचा । अश्वप्रोष भी अपनी सारी सेना समेत वहीं आघमका । फिर तो दोनों मुख्य सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया । विद्याधरगण अपनी विद्या के दलसे पिशाच, राक्षस और सिंह आदिके स्वरूप धारण करने लगे । इससे त्रिपृष्ठकी सेना बहुत डरो और नष्ट सी हो गयी । इतनेमें त्रिपृष्ठ-कुमारने रथपर आरुढ़ हो, अपने खेचरोंको साथ लेकर युद्ध करना आरम्भ किया । पहले तो उसने शङ्ख बजाया, जिसकी ध्वनि सुनतेही उसकी सारी सेना सज्जित हो गयी और शत्रुकी सेना हारने लगी । यह देख, अश्वप्रोष भी अपने रथपर सवार हो, त्रिपृष्ठके सामने आकर युद्ध करने लगा । अश्वप्रोषने जित-जित दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग किया, उन सबको त्रिपृष्ठने घात-की-बातमें उसी तरह फाट डाला, जैसे सूर्य अन्धकारका नाशकर देता है । अब तो अश्वप्रोषने जबकि त्रिपृष्ठपर एक भयङ्कर चक्र चलाया । वह चक्र त्रिपृष्ठकी छातीसे आकर चिपक गया और अश्वप्रोषके पास न लौटकर वहीं पड़ा रहा । त्रिपृष्ठने शीघ्रही उस चक्रको अपने हाथमें लेकर अश्वप्रोषसे कहा,—“रे अश्वप्रोष ! तू अभी मेरे सामने हाथ जोड़ कर प्रणाम कर और घर जाकर सुखसे जीवन व्यतीत कर ।” यह सुन, अश्वप्रोषने कहा,—“दैवीको प्रणाम करनेसे तो मर जाना कहीं अच्छा है ।” यह सुन, त्रिपृष्ठने उसपर वह चक्र

उसीके समीप बैठने और उसीको राजा मानकर सेवा करने लगे । सातवें दिन एकाएक आसमानमें बादल घिर आये । बड़े जोर-जोरसे बादल गरजने और पानी बरसने लगा । इसी समय बार-बारचमककर भयङ्कर बिजली उस यक्ष प्रतिमाके ऊपर आ गिरी, बातकी बातमें वह प्रतिमा नष्ट हो गयी ; पर राजाको ज्ञान बच गयी । वैसकुशल रह गये : यह देखकर लोगोंको बड़ा अचम्भा हुआ । उपसर्ग शान्त होने पर ज्योतिषीके कहे अनुसार राजा श्रीविजय अपने महलमें आये । उस समय अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ हर्षके मारे उस ज्योतिषीको रत्न, अलङ्कार और धत्तादिक देकर सम्मानित करने लगीं । राजाने भी उसे बहुतसा धन दे, आदरके साथ उसकी विदार्थ की । नयी रत्नमयी यक्ष-प्रतिमा बनवाकर राजाने बड़ी धूमधामसे जिन प्रतिमाकी पूजा करवायी और अपने राज्य भरमें पुनर्जन्म महोत्सव करवाया ;

एक दिन राजा श्रीविजय, रानी सुताराके साथ, ज्योतिष्यन नामक उद्यानमें क्रीड़ा करनेके निमित्त गये हुए थे । वहाँ पर्यंतकी छाया युक्त शिलाओंपर स्यामीके साथ घूमती-फिरती और क्रीड़ा करती हुई मनोहर अङ्गोवाली रानी सुताराने एक सुनहले रङ्गके मृगको देखकर अपने स्वामीसे कहा,—“प्राणनाथ ! यह मृग तुम मुझे लाकर दो ।” यह सुन प्रेम के कारण मोहमें पड़े हुए राजा उसे पकड़ने दौड़े । यह मृग उन्हें देख, उछलता कूदता हुआ भाग गया । इसी समय राजाकी प्रिया सुताराकी कुर्कटजातिके सर्पने डँस दिया । अतएव वह बड़े दुःख मरे स्वरमें चिल्ला उठी,—“नाथ ! जल्दी आओ ।” उसकी पुकार सुनतेही राजा तत्काल पीछे लौट आये और अपनी पत्नीको पिंपकी पीडा से छटपटाते देखा । उन्होंने रानीको बचानेके लिये तरह-तरहके तत्त्व-मन्त्र किये, पर कोई काम न आया और रानीने राजाके देखते-देखते आँखें बन्द करलीं, उसका मुँह काला पड़ गया और वह बेहोश हो गयी । यह देख राजाकी भी मूर्छा आगई और वे पृथ्वी पर गिर पड़े । बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे जब उन्हें होश हुआ, तब वे इस प्रकार विलाप करने लगे,—“हे देवी समान



एतन्मया गच्छतीति तदा गच्छतीति वदन्ति तदा गच्छतीति । एतन्मया
 गच्छतीति तदा गच्छतीति वदन्ति तदा गच्छतीति । (१८)

रूपवती ! हे गुणवती ! हे सुनरा ! हे प्राणवल्लभा ! तुम कहाँ हो ? इसी तरह बहुत से नुबने पर राजा मरनेको तैयार हो गये । उनके नौकरों-ने उनका यह हाल देखा, राजमहलमें जाकर लोगोंसे यह समाचार कह सुनाया । यह सुनकर उनकी माता स्वयंप्रभा और भाई विजयभद्रको बड़ा दुःख हुआ । इसी समय आकाश मार्गमें जाकर किसी पुरुषने कहा,—“हे देवी स्वयंप्रभा ! तुम विषाद न करो—मेरी बात सुनो रघनूपुर नगरके स्वामी अमिततेजसे द्वारा सम्मानित संमिन्नध्रोतनामका एक उत्तम ज्योतिषी है । वहाँ मेरा पिता है, मैं उसीका पुत्र हूँ, मेरा नाम दीपशिख है । हम दोनों पिता पुत्र ज्योतिर्वनमें क्रीड़ा करने गये हुए थे । वहाँ हमने उस नगरके आगे बहुत दूर अमरचञ्जपुरीके स्वामी अशानिधोष राजाके द्वारा दरो जाती हुई और शरण-विहीन तुम्हारी रानी सुताराको देखकर उम आकाशचारी राजासे कहा,—“रे पापी दुष्ट ! तू हमारे स्वामीकी यह नकी कहाँ लिये जा रहा है ?” यह सुन, सुताराने हमसे कहा,—“इस समय तुम्हारी कोई चेष्टा काम न करेगी; इसलिये तुम पोतनपुरके उद्यान-में जाकर घंतालिनी विद्याके द्वारा मोहमें पड़े हुए धीविजय राजाको होशमें लाओ; क्योंकि वे सुतारा यनी हुई एक घंतालिनीके पीछे जान देनेको तैयार हो रहे हैं ।” सुताराकी यह बात सुन, हमने उद्यानमें जा कर राजाको चेत कराया है, जिससे तुरतही दुष्ट घंतालिनी विद्याका नाश हो गया । इसके बाद देवीका हाल सुनकर राजा धीविजय उनकी प्राप्तिका उपाय कर रहे हैं । उन्हींकी आज्ञासे मैं आप लोगोंको यह खबर देने आया हूँ । यह सुन स्वयंप्रभा देवीने उसका बड़ा आदर सत्कार किया । इसके बाद वह फिर राजा धीविजयके पास चला आया और वहाँसे संमिन्नध्रोत तथा दीपशिखा राजाको रघनूपुर नगरमें ले गये । वहाँ राजा अमिततेजने धीविजय राजाकी वहाँ आबभगत की और उनसे बानेका कारण पूछा । यह सुन उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया । यह सुन अमिततेजकी बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने मरोचि नामक एक दूतको समझा-बुझाकर उसी समय

अशनिघोषके पास भेजा । उस दूतने अमरचञ्चा नगरीमें राजा अशनि-घोषसे जाकर कहा,—“हे राजन् ! आप मेरे स्वामीकी बहन और राजा श्रीविजयकी पत्नी सुताराको बिनासमझे बूझे यहाँ ले जायें हैं; इसलिये उन्हें घुपचाप धीरेसे लौटा दीजिये, नहीं तो अनर्थ होजायेगा ।” यह सुन अशनिघोषने कहा,—“अरे दूत ! क्या मैं इस स्त्रीको लौटानेकेही लिये ले आया हूँ ! जो कोई इसे मेरे यहाँसे हटा ले जाना चाहता है, वह मेरी तलवारके घाट उतरना चाहता है, ऐमाही समझो ।” यह कह, अशनिघोषने दूतको गर्दनिया देकर निकलवा दिया । दूतने अपने नगरमें आकर अपने स्वामीको कुल कैफ़ियत कह सुनायी ।

इसके बाद राजा अमितेजने राजा श्रीविजयको दो विद्यार्थि-बालायाँ—पहली पर-शस्त्र-निवारिणी और दूसरी बन्ध-मोक्ष-कारिणी अर्थात् बन्धनसे छुड़ाने वाली । श्रीविजयने सात दिनों तक इन दोनों विद्यार्थियोंकी विधिपूर्वक साधना की । तदन्तर विद्यामें सिद्धि लाभकर, श्रीविजय शत्रुको जीतने लगे । उनके साथ-साथ अमितेजके रश्मि पैग आदि सैनिकों पुत्र तथा और भी बहुतसे वीर जो अन्यान्य विद्यार्थियोंके बलसे बलवान तथा भुजबलसे शक्तिमान थे, चल पड़े । सब लोगोंके साथ राजा श्रीविजय अशनिघोषके नगरके पास आ पहुँचे ।

इसके बाद राजा अमितेज अपने सहस्र रश्मि नामक जेठे बेटेके साथ दूसरोंकी विद्याका नारा करनेवाली महाश्याला नामक विद्याकी साधना करनेके लिये हिमवान् पर्वत पर चले गये । यहाँ एक महीने का उपवास लेकर ये विद्याकी साधना करने बैठे ।

इधर अशनिघोषने राजा श्रीविजयके सैन्य-सहित आनेका समाचार सुन, अपने पुत्रोंको सैन्य लेकर लड़नेको भेजा । दोनों सैन्योंमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया । दोनोंमें से कोई सेना पीछे हटती हुई नहीं मालूम पड़ती थी । इसी प्रकार एक महीने तक लड़ते रहनेके बाद अमितेजके पुत्रों-में अशनिघोषके बलवान् पुत्रोंको पराजित कर दिया । यह देख, अशनि-घोष स्वयं मैदानमें उतर आया । इस बार अशनिघोषने अमितेजके

पराक्रमी पुत्रोंको हरा दिया । तब अपनी सेनाको तितर-बितर होते देख, राजा धीविजय स्वयं संप्रान करनेको बागे आये । क्रोधसे भरे हुए राजा धीविजयने खड्गके प्रहारसे अशनिघोषके दो टुकड़े कर डाले । मायावी अशनिघोषने षट्पट अपने दो रूप कर डाले । धीविजयने फिर इन दोनोंको काट डाला । तब चार अशनिघोष हो गये । इसी प्रकार धार-धार काटे जाते हुए अशनिघोषने अपनी मायाके प्रभावसे अपने सो रूप बना डाले । ज्यों-ज्यों राजा धीविजय उसपर प्रहार करते जाते, त्यों-त्यों उसके रूपोंकी संख्या बढ़ती जाती थी । इससे राजा धीविजय उसका घृण करते-करते उकता गये । इतनेमें राजा अमिततेज अपनी साधनाकी सिद्धि करके वहाँ आ पहुँचे । अब राजा अमिततेजने अपनी विद्याके प्रभावसे अशनिघोषकी मायाका नाश कर दिया, जिससे वह घबराकर भाग चला । उसे भागते देख, अमिततेजने अपनी विद्याको आज्ञा दी, कि उस पापी अशनिघोषको दूरसे ही पकड़ लाओ । इस प्रकार आज्ञा पाकर वह विद्यादेवी उसके पीछे पीछे चली । इधर सीमनग ६ नामक पर्वतपर धीऋषभदेवके मन्दिरके पासही यलदेवमुनिको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिये देवगण उनका वन्दन तथा ज्ञानका उत्सव करनेके लिये आये हुए थे । यह देख, अशनिघोष उन केवलीकी शरणमें आ गिरा । इसीलिये विद्यादेवी वहाँतक आकर पीछे फिरी और अमिततेजके पास आकर सारा हाल सुनाने लगी । उसके मुँहसे सप कुछ सुनकर अमिततेजने अपने मरीचि नामक दूतको बुलाकर कहा,—

‘हे दूत ! तুম जमी अमरचञ्चा नगरीमें जाकर वहाँसे सुतारादेवीको लिये हुए मेरे पास सीमनग-पर्वत पर चले आओ ।’ यह कह, राजा अमिततेज धीविजय तथा अन्याय सैन्य-सामन्तोंको साथ लिये हुए, राजे-गाजेके साथ, सीमनग-पर्वतपर यलदेवमुनिकी वन्दना करने आये । सबसे पहले जिनैश्वरके मन्दिरमें आकर जिनैश्वरी मूर्ति बनने-के बाद धीविजय और अमिततेज यलदेवके पास आये । इधर मरीचि

“जे चिय विद्विषा लिहिषे, ते चिय परिणमइ सयनमोयम्स ।

इय जाणैउण धीरा, विदुरे वि न कायरा हुंति ॥ १ ॥”

अर्थात्—“विघाताने जो कुछ भाग्यमें लिख रखा है, वही सबको प्राप्त होता है। यही समझ कर धीर पुरुष विपद् पड़ने पर कायर नहीं होते।”

इस गाथाको पढ़कर धनदने अपने मनमें विचार किया,—“यह गाथा तो लाख मुहरोंको भी सस्ती है। फिर जब एक हजार मुहरों पर ही बेच रहा है, तो बड़ा सस्ता माल है, लेही लेना चाहिये।” यह विचार कर, उसने उस जुआरीको मुँहमाँगा मूल्य देकर वह गाथा ले ली और बार-बार उसे पढ़ने लगा। इतनेमें उसका पिता सेठ रत्नसार आ पहुँचा। उसने पूछा,—“बेटा ! आज तुमने कौनसा व्यापार किया ?” यह सुन पासकी दूकानोंके व्यापारी हँसते हुए बोले,—“सेठजी ! आज तो आपके बेटेने बहुत बड़ा व्यापार कर डाला है। उसने हजार मुहरों देकर एक गाथा मोल ली है। सचमुच यदि तुम्हारे पुत्रकी व्यापारमें ऐसी ही कुशलता बनी रही, तो वह घरकी पूँजीको बहुत बढ़ा देगा ।”

लोगोंकी यह तानेज़नी सुनकर सेठ जल गया और क्रोधके साथ अपने पुत्रसे कहने लगा,—“रे दुष्ट ! तू अभी यहाँसे चला जा। मैं तेरा मुँह देखना भी नहीं चाहता। सूना घर अच्छा, पर चोरोंसे भरा हुआ घर अच्छा नहीं, तू पुत्र ही है तो क्या ? मुझे तेरी यह कार-रवाई पिलकुल ही नापसन्द है।”

इस प्रकारके अपमानयुक्त वचन सुनकर धनद उसी क्षण दूकानसे नीचे उतर आया और मन ही मन उस गाथाका अर्थ स्मरण करता हुआ चल पड़ा। नगरके बाहर हो, वह सार्यकालके समय उत्तर दिशामें एक वनमें आ पहुँचा। यहाँ निर्मल जलसे भरा हुआ एक बड़ा भारी सरोवर देख, उसीमें स्नान कर, वह पास ही एक घटपृष्ठके नीचे पत्तोंकी सेज बिछाकर सो रहा। इसी समय देवसंयोगसे एक धनुष

Handwritten title or header text at the top of the page.



Handwritten text at the bottom of the page, likely a signature or a concluding note.

धारी शिकारी उन पीले-लिये भापे हुए जानवरों का शिकार करने-
की इच्छा में वहाँ आ पहुँचा ।

उसी समय सेठके बेटेने गोदमें ही पड़े पड़े एकबार कण्ठ पकड़ी, जि-
ससे दूरी पड़े गड़गड़ा उठे । यह भाव सुन, शिकारीने विचार किया, —
मालूम होता है, बोरों अंगूठी जानवर आ रहा है ।" ऐसा विचार कर उसने
उसी शब्दों की सीधपर पाप छोड़ दिया । यह पाप उस मोचे हुए
सेठके पुत्रके पैरों आ लगा । निराशा ठीक पैठा, यह जानकर यह
शिकारी उन्ने देखनेके लिये उसको पास आया । शरीरमें पापकी
छोट सापे हुए धनदने तबलोंके मारे उल, गायाका उद्धारण किया ।
यह सुनकर उस शिकारीने सोचा,—“आह ! यह तो मालूम होगा
है, कि मैंने बिना समझे दूधे जिसी धरे-मर्दि मोचे हुए मुसाफिरको ही
मार डाला ।” इस तरहकी पाप मनमें आते ही उसने उसके पास
आकर पूछा,—“हे भाई ! मैंने अनजानतेमें तुम्हें पापसे विद्ध कर डाला
है । बरो तो तुम्हें कहां छोड़ आयीं ? ऐसा कहकर उसने उसके पैरोंसे
पाप सींचकर निजात लिया और उसके झुन्नकर मरहमपट्टी करने
लगा । सेठके बेटेने उसे मरहमपट्टी करनेसे रोक्ते हुए कहा,—“भाई !
तुम करने घर चले जाओ ।” इस प्रकार सेठके पुत्रसे आशा पाकर
यह शिकारी अपने घर चला गया । इधर सेठके बेटेके पैरसे धून जारी
हो गया । बहुतरा धून निकलनेके कारण वह प्रातःकाल होते-होते
बेहोश हो गया । इसी समय एक भारण्ड पक्षी वहाँ आया और उसे
मरा हुआ समझकर उठाये हुए सनुद्रके दीर्घोर्ध्व एक द्वीपमें ले
आया । उसने ज्योंही उसे खानेका विचार किया, त्योंही उसमें जी-
वनका कुछ चिह्न देख उसे वहाँ छोड़कर उड़ गया । इसके बाद उस द्वीप
की टट्टी टट्टी हवाके लगनेसे धनदकी चेतना हो आयी । वह खड़ा
होकर चारों ओर देखने लगा देखते-देखते उसे एक निर्जन वन
दिखलाई दिया । उसने मनमें विचार किया,—“मेरा नगर यहाँसे
कितनी दूर है ! यह भयकर वनही किस स्थान पर है ! अथवा

मेरे इस सोच-विचारका ही क्या नतीजा है ? दैवकी चिन्ता ही बन-
 यान् है ।" इसी प्रकार सोचता-विचारता हुआ वह जंगलमें धुंधा
 गूण्णामे ढका हुआ होकर फल और जलकी तलाशमें घूमने लगा ।
 घूमते-घूमते उसने एक स्थानपर एक टूटे-फूटे घरोंवाला सूत-सान
 नगर देखा । यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । उसी उजड़े हुए
 नगरमें प्रमण करते हुए उसने एक कुआँ देखा । बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे
 उस कुएँसे जल निकालकर उसने अपनी प्यास बुझायी तथा फेंके-फेंके
 आदि खाकर अपनी प्राणरक्षा की । इसके बाद वह भयके मारे उस
 नगरसे दूर जा रहा । इतनेमें सूर्य अस्त हो गया । अन्धकारसे
 सारा संसार ढक गया । उस समय धनदने एक पर्यंतके समीप जा
 वहीं आग सुलगाने लगे दूर कीया और किसी तरह रात बिता दी ।
 सपेरा होतेही उसने देखा, कि उसने रातको जहाँ आग सुलगायी
 थी, वहाँकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी है । यह देखते ही उसने
 अपने मनमें विचार किया, — "मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि यह
 स्थान अवश्यही सुवर्णक्षेत्र है । कारण, अग्निका संयोग होनेही वहाँकी
 भूमि सुवर्णमयी हो गयी है ।" ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होतेही
 उसने हर्षित होकर विचार किया, — "मैं यहाँ रहकर सोना निकालूँ,
 तो ठीक हो ।" इसके अनन्तर उसने पर्यंतकी मिट्टी काट-काटकर अपने
 नामकी ईंटें बनायीं और उन्हें आगकी भट्टीमें पकाया । ये सब ईंटें
 सोनेकी हो गयीं । एक दिन घूमने घूमने उसने पर्यंतके निकुञ्जमें रक्तों-
 का ढेर पड़ा देखा । यह उन रक्तोंको अपने सोनेके ढेरके पास ले आया ।
 धीरे-धीरे उसके पास बहुतसी सोनेकी ईंटों और रक्तोंका समूह हो गया ।
 बेटे आदि पज्ज खाकर ही वह जीवन निर्वाह करता चला जाता था ।

एक समयकी बात है, कि सुदृष्ट नामका एक व्यापारी जहाज़में पैठ-
 कर वहाँ आया । उसके जहाज़में गदलेमें लेकर रखा हुआ जल और ईंधन
 ख़ुब गया था, इसलिए उसने अपने आदमियोंको जल तथा ईंधन
 देनेके लिये उसी द्वीपकी ओर भेजा । उन आदमियोंने वहाँ घण्टों

देकर पूजा,—“भाई तुम कौन हो ?” बनने कहा,—“मैं तो बनकर हूँ ।” वे सब बोले,—“तुम हमें कोई जलाशय बतलाओ ।” इसपर धनने उन्हें कुमाँ दिखला दिया । सार्यवाहने उन सेवकोंने कुएँ के पास सोनेकी इंटों और रत्नोंका ढेर पड़ा देखकर धनदसे पूछा,—“हे बनकर ! यह सब किसका है ?” उसने कहा,—“मेरा है । इस सबको जो कोई स्थल-मार्गमें ले जायगा, उसको मैं इसका बीपार्ई हिस्सा दे दालूँगा ।” इस तरहकी बातें हो ही रही थीं, कि एक व्यापारी भी वहीं आ पहुँचा और धनदको बड़ी विनयके साथ प्रणम्यकर, भाँसझुन करते हुए, उससे कुशल-प्रश्न करते लगा । इसके बाद उसने धनदसे इस बातकी प्रतिज्ञा की, कि यह इस सारे धन-रत्नोंको उसके घर पहुँचा देगा । इसके बाद सार्यवाहने (व्यापारीने) अपने नौकरोंसे उन सुनहरी इंटों और रत्नोंको अपने अहाड़े पर लदवाया शुरू किया । धनद भी गिन-गिनकर इंटों और रत्नोंको उनके हाथमें देने लगा । यह मगर सम्पत्ति देख, सार्यवाहके मनमें पाप जग और उसने अपने नौकरोंको एकान्तमें बुलाकर कहा,—“इस मदमीकी उली कुएँ में डबेल हो ।” इस प्रकार अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर उन बादमियोंने धनदसे कहा,—“हे परोपकारी महात्मा ! हम लोग कुएँसे पानी खींचनेका हाल नहीं जानते । तुम्हें पहलेसे ही इसका जन्मास है । इसलिये हमारे हमें धाड़सा अन्न कुएँसे निकाल दो ।” यह सुनकर, धनद दपाचे मारे कुएँसे पानी खींचने लगा । इतनेमें मीठा पाकर उन दुष्टोंने उसे कुएँमें डबेल दिया । दैवयोगसे यह पत्थर मरे हुए उस कुएँकी मौखता पर ही गिरा, पानीमें नहीं गिरने पाया । सीनाग्नसे उसके ज़रा भी छोट नहीं आयी ।

अब तो धनद उसी गायिकाको पाद करता हुआ कुएँके रक्षार्थ बैठकर दीखने लगा । अकस्मात् एक स्थान पर मुकाली नजर आयी । चँदु-हलके मारे यह उसकी मदर घुस पड़ा । मदर जाकर रेतसे मालूम करता हुआ यह उसी मार्गसे घुस नीचे उतरा आया गया । पानी जाकर उसे सनतत मार्ग मिला । उसी मार्गसे बाहरके साथ आते-आते

उसे कुछ दूर पर एक देवमन्दिर दिखाई दिया । यह उसके मन्दिर बसा गया । देवमन्दिरके भीतर उसे गरुड़-बाहिनी, बकायुध-धारिणी, महिमामयी चक्र-धारी देवी दिखलायी पड़ी । उन्हें देखकर वह दोनों हाथ-ओढ़े भक्तिके साथ अपनी विचक्षण धाणीमें इसप्रकार देवीकी स्तुति करने लगा,—“हे धीमत्पुत्र स्वामीकी शासन देवी ! भयदूर कष्टोंको हटने वाली ! अनेक भक्तोंको समस्त सम्पत्ति प्रदान करनेवाली ! तुम्हारी जय हो । आज इस दुःखमें मुझे तुम्हारे दर्शन हुए । अब तुम्हीं मुझे अपने घरणोंमें शरण दो ।” उसके इन भक्तिपूर्ण वचनोंको सुनकर देवीने प्रसन्न होकर कहा,—“हे वत्स ! भांगे चलकर तेरा सब प्रकारसे भला ही होगा । भयभीत, तू इस समय मुझसे कुछ माँग ।” यह सुन, धनदने कहा,—“हे देवी ! तुम्हारे दर्शनोंसे ही मुझे सब कुछ मिल गया । अब मैं क्या माँगूँ ?” उसके ऐसा कहने पर सन्तुष्ट होकर देवीने उसके हाथमें यज्ञेयी प्रभाव-शाली पाँच रत्न दिये और उनका प्रभाव इस प्रकार बतलाया,—“देख, इसमें से एक रत्न तो सौभाग्यका दाता है, दूसरा लक्ष्मी-देनेवाला है, तीसरा रोग-हारक है, चौथा विपका प्रभाव नष्ट करनेवाला है और पाँचवाँ सब कष्टोंका निवारण करने वाला है । इस प्रकार उन रत्नोंका प्रभाव बतलाकर, उनकी भलग-भलग पहचान कराकर देवी अन्तर्ज्ञान हो गयीं । धनद उन रत्नोंके गुण चित्तमें धारण कर भागे बढ़ा । थोड़ी दूर जाते-न-जाते उसे एक स्थानपर व्रण (घाव) भच्छा करनेवाली संरोहिणी-मामकी भौषधि मिली । उसे भी उसने अपने पास रख लिया । इसके बाद उसने अपनी जंघा धीरकर उसीमें उन पाँचों रत्नोंको रख दिया और उसी संरोहिणी भौषधिके द्वारा उस व्रणको भच्छा कर लिया । वहाँसे भागे बढ़ने पर, उसे एक पातालनगर दिखाई दिया । उसने उस नगरमें प्रवेशकर देखा, कि उसमें खाने-पीनेके सामानोंसे भरे हुए घरों और दूकानोंकी धेनी तो मौजूद है, पर कहीं कोई आदमी नहीं नज़र आता । भागे चलकर उसने क़िला, फाटक और ज़िदकियोंसे सुरोमित एक बड़ा भारी राजमहल देखा । उसके मन्दिर प्रवेशकर जब यह उसके

सातवें बरुड पर पहुँचा, तब वहाँ एक बालिकाको देख, उसे बड़ा विस्मय हुआ । इतने में वह बालिका उससे पूछ बैठी,—“हे सत्पुरुष ! तुम यहाँ कहांसे आ रहे हो ? हे भद्र ! सुनो—यहाँ तुम्हारे प्राणों पर संकट आनेकी सम्भावना है, इसलिये यदि तुम जीना चाहते हो, तो भटपट यहाँसे कहीं अन्यत्र चले जाओ ।” यह सुन, धनदने कहा,—“भद्र ! तुम श्বেद न करो । मुझे मरना प्योरेवार हाल कह सुनाओ । यह नगर सुतसान क्यों है और तुम कौन हो, यह बतलाओ ।”

यह सुन, धनदके रूप और धैर्यको देख, आश्चर्यमें पड़ी हुई वह बालिका बोली,—“हे सुन्दर ! यदि तुम्हारी यह जाननेकी यड़ीही अनिलापा है, तो सुनो—

“इसी भरतक्षेत्रमें धीतिलक नामका एक नगर है । उसमें महेन्द्रराज नामक राजा राज्य करते थे । वही मेरे पिता थे । एक बार उनके राज्यके समीपवर्षी शत्रुराजाओंने उनपर चढ़ाई की और उन्हें हरा डाला । इसी समय एक वैतालने आकर स्नेहके साथ राजासे कहा,—“हे राजा ! तुम मेरे पूर्व जन्मके मित्र हो, इसलिये तुम मेरे योग्य कोई काम बतलाओ । कहो, मैं तुम्हारी कौनसी भलाई करूँ ? यह सुन राजाने कहा,—“हे मित्र ! तुम मेरी सहायता करो, जिससे मैं अपने शत्रुओंको हरा सकूँ ।” यह सुन वैतालने कहा,—“मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार गिरानेमें असमर्थ हूँ ; क्योंकि मुझसे भी अधिक बलवान वैतालगण उनके मददगार हैं, पर हाँ, मैं और तरहसे तुम्हारा मदद कर सकता हूँ ।” यह कह, वह वैताल उस नगरके सब लोगोंके साथ मेरे पिता और उनके परिवारको यहाँ ले बाया । उसीने इस पाताल नगरकी रचना की । उसने एक कुएँके अन्दरसे इस नगरमें आने-जानेका मार्ग बनाया । उस कुएँकी रक्षाके लिये उसने बाहरके हिस्सेमें एक दूसरा नगर भी बसवाया । इसके बाद अज्ञानमें भर-भरकर यहाँ सामान पहुँचने लगे । इस तरह सब लोग सुखसे रहने लगे । कुछ दिन इसी प्रकार बीत जानेके बाद, एक राक्षस कुएँकी राहसे यहाँ आ पहुँचा । वह दुष्ट माँतका सोमी था । वह

कमरा' इस नगरके निवातियोंको खाने लगा । कुछ ही दिनोंमें उसने इस नगरके सब मनुष्योंका साक्षात् कर दिया । इसके बाद वह बाहरवाले नगरके लोगोंको घट करने लगा । इसलिये वे लोग जहाज़ पर चढ़-चढ़कर भागने लगे । इस तरह उस वृष्ट राक्षसने दोनों नगर बर्बाद काले । हे साहसिक ! उसने एक मात्र मुष्यको ही विवाह कर-नेकी इच्छासे छोड़ रखा है । उसने मुष्यसे आज्ञासे सात दिन पहले कहा था,—“भद्र ! मैं बड़ाही भयंकर राक्षस हूँ । मैं मनुष्यके मांसके शोभसे ही यहाँ आया था और तुम देखही रही हो, कि मैंने समस्त पुर-जनोंका नाश कर डाला है । मर्याद एकही कारण ऐसा है, जिससे मैंने तुम्हें जीता छोड़ दिया है ।” उसकी यह बात सुनकर मैंने पूछा,—“वह कारण क्या है ?” वह बोला,—“आजके सातवें दिन बड़ाही भयंकर शुभ-भद्र युक्त लग्न है । उसी दिन मैं तुम्हारे साथ विवाह कर तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊँगा ।” हे भद्र ! आजही यह सातवाँ दिन है और उस राक्षसके धानेका समय भी हो गया है । जब तक यह यहाँ आये तब तक तुम यहाँसे दल जाओ, ” यह सुन, धनदने कहा,—“हे मुष्ये ! तुम तनिक भी भय मत करो । वह वृष्ट मेरे हाथों मारा जायेगा ।” बालिका बोली,—“यदि रिची बाल है, तो जो, मैं तुम्हें उसके मारनेका ठीक समय बतलाये दूँगी । जिस समय वह विवाहका पूजन करने बैठे, उसी समय तुम उसे मार डालो । उस समय वह न थोड़ाबाल करता है, न डटकर कहा होता है । उसी अवसरमें तुम मेरे मित्रके इस लक्ष्यक उपयोग करना ।”

वे दोनों इस प्रकार बातें करही रहे थे, कि वह राक्षस हाथमें एक मनुष्यकी लाश छिड़ी हुए आया । वहाँ धनदको बंठा देखकर दमने ईश कर कहा,—“भद्र ! आज तो बड़े मखरजकी बात देखनेमें आ रही है । मेरा पश्य आजसे आज मेरे घर आ पहुँचा है ।” इस प्रकार मखड़ा पूरे घण्टे बहकर उसने लाशको नीचे रख दिया और विवाहका पूजन करने लगा । उसी समय धनदने बहुत खींचकर कहा,—“टहर जा, पत्नी ! आज मैं तेरा मखड़ा ही खिदे देता हूँ ।” उसकी यह बात सुनकर मैं वह राक्षस

मन्त्राहोके साथ हँसता रहा । वह पूजा पर बैठाही रहा और धनदने लड़का ऐसा बार किया, कि वह बनराजके घर जा पहुँचा । इसके बाद उसी शुभ समयमें उसकी लायी हुई सानप्रियोंका उपयोग करते हुए धनदने उस तिलकुन्दरी नामक बालिकासे विवाह कर लिया । उसके साथ रहकर भोग-विलास करता हुआ, वह कुछ दिनों तक वहीं रहा ।

इसके बाद वह स्त्री, रत्नसुवर्ण तथा उत्तमोत्तम वस्त्र इत्यादि मय्ये-
कल्ले पदार्थोंको साथलिये हुए उसी कुर्रमें जा पहुँचा । इसकेबाद पंछे
सौटकरउतने और भी अपनीपतन्दकी चीड़ें लेलीं और भक्तिपूर्वक आकर
सकलभरी देवीको प्रणाम कर उस कुर्रको मेसला पर जापहुँचा । इतनेमें
उस द्वारके पास एक जहाज़ आया । उस जहाज़के बादमी उसी कुर्रसे
उल लेने आये । उन्होने कुर्रमें रस्ती डाली । धनदने उस रस्तीको
पकड़कर कहा,—“माइयो ! मैं कुर्रमें गिर पड़ा हूँ, हराकर मुझे बाहर
खींच लो ।” यह सुनकर उन मदनियोने यह बात अपने स्वामी देवदत्त
नामक सार्यवाहसे कही । वह भी कौतूहलके मारे वहाँ जा पहुँचा ।
इसके बाद उतने उस रस्तीमें एक छे दीती खोली बाँधकर लटकाम्यो ।
उसी पर चढ़कर धनद कुर्रसे बाहर निकला । उसका यह सुन्दर
रूप और उत्तम वस्त्रभूषण देख, विस्मित होकर सार्यवाहने पूछा,—
“नन्द ! तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और इस कुर्रमें कैसे गिर पड़े,
इसका हाल बताओ ।” धनदने कहा,—“हे सार्यवाह ! मेरी स्त्री भी
इसी कुर्रमें गिर पड़ी है; उसे भी बाहर निकालवा चाहिये । साथ ही
मेरे रत्नालङ्कार आदि भी इसी कुर्रमें पड़े हुए हैं । पहले इन सबको
बाहर निकलवाइये, पंछे मैं अपना साथ हात बाँधते रहूँगा ।

यहसुन उस सार्यपतिने कहा,—“हे नन्द ! तुम बुराँसे बरनी स्त्री
और सनस्त वस्तुओंको बाहर निकाल लो ।” धनदने ऐसाही किया ।
तिलकुन्दरीको देख, सार्यवाह हक्का बक्का सा हो गया । इसके बाद
सार्यवाहने सब धनदसे उसकी रानकहानी पूछा, तब उसने कहा,—“हे

सारथ्यपति ! मैं भरतक्षेत्रका रहनेवाला हूँ । आतिका, बणिक् हूँ । मैं घन-उपाजन करनेके लिये, अपनी प्रियतमाके साथ जहाज़ पर सवार हो, कटाह-द्वीपकी ओर चला जा रहा था । देवयोगसे मेरा जहाज़ समुद्रमें दूट गया और मैं ली सहित वहीं भा निकला । प्यासके मारे व्याकुल होकर मेरी ली जलकी तलाशमें घूमती-घामती, इसी कुएँ के पास आयी और काँककर पानी देखते-देखते कुएँमें गिर पड़ी । मैं भी उसके स्नेहके मारे उसके पीछे-पीछे कूद पड़ा, पर भाग्यसे हम दोनों कुएँकी मेखला पर ही रहे, पानीमें नहीं गिरे । इस कुएँमें रहने वाली जल देवीने प्रसन्न होकर मुझे बहुतसे रत्नालङ्कार आदि दिये और यह कहा, कि कुछ दिन बाद यहाँ एक जहाज़ आयेगा । तुम उसीपर बैठकर सुबसे अपने घर चले जाना । भाई सारथ्यबाह ! यही तो मेरी रामकहानी है । अब तुम कुछ अपनी कथा सुनाओ, जिससे परस्पर प्रीति बढ़े ।

यह सुन, देवदत्तने कहा,—“हे भद्र ! मैं भी भरतक्षेत्रका ही रहने वाला हूँ । मैं भी कटाह-द्वीपसे लौटा हुआ अपने घर जा रहा हूँ । तुम छुरीसे मेरे साथ चलो, हम लोग एक साथ चले जायेंगे, तुम अपनी प्रिया और समस्त वस्तुओंको मेरे जहाज़ पर चढ़ा दो ।”

उसकी यह बात सुन, घनदने कहा,—“बच्छी बात है । ऐसा ही करो । भाई सारथ्य ! यदि मैं अपने घर पहुँच गया तो इन रत्नोंमेंसे उठा हिस्सा तुम्हें दे डालूँगा ।” यह सुन, सारथ्यबाहने कहा,—“भाई ! यह बसार्त घन तो कोई चीज़ नहीं है, तुम्हारी यह मक्ति ही सब कुछ है ।”

इसके बाद सारथ्यबाहने उसकी कुल चीज़ें अपने जहाज़ पर लदवा दी, जहाज़ भागे पड़ा । रास्तेमें उस बुढ़ात्मा सारथ्यबाहका चित्त ली और घन देखकर डायॉडोल हो गया और यह घनदकी पुराई करनेकी प्रताक हो गया । एक दिन रातके समय घनद शौच जानेके लिये मञ्च पर बैठा था, उस समय सब लोग सो रहे थे । इसी समय सारथ्यबाहने चुपचाप उसके पास आकर उसे मञ्च परसे समुद्रमें ढकेल दिया । कुछ दूर भागे बढ़ने पर सारथ्यबाहने शोर मचाना शुरू किया । भाइयो ! मेरे प्राणप्रिय

(20.57) — I have been thinking about you very much lately.



बैठा कर अपने नगरको देखना आरम्भ किया । इतनेमें एक बड़ी भारी मछली तल्लेके सांपही उसको निगल गयी । उस समय नरकके समान उस मछलीके पेटमें पड़ा हुआ धनद सोचने लगा,— “हे जीव ! यह सब तुम्हारे मसीबका खेल है । इसलिये तुम भीर न कुछ करो, केवल इसी गाथाको याद किया करो । ” इस प्रकार विचार करनेके बाद उसने आपसि नियारण करनेवाली मणिका स्मरण किया । उसके प्रभावसे मछुपने इसी क्षण उस मछलीको पकड़ लिया । इसके बाद मछुमोने उसे एक जगह किनारे पर ले जाकर उसका पेट काढ़ डाला । पेट फटते ही मछुमोने उसके अन्दर एक पुरुषको देखा, मनमें बड़ा आश्चर्य माना । तदनन्तर उसे बाहर निकाल, पानीसे महलया कर, स्वस्व कर, उन लोगोंने उस नगरके राजाको यह सारा हाल कह सुनाया । राजाको भी यह कहानी सुनकर बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने इसी समय धनदको अपने पास बुलाकर पूछा,— “हे मद्र ! यह अचम्भा क्योंकर हुआ ? तुम कीन हो ? इस मत्स्यके उदरमें तुम कैसे चले गये ? यह सब सच-सच कह सुनाओ, क्योंकि मुझे इस बातका बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है । ”

धनदने कहा—“महाराज ! मैं जातिका बनियाँ हूँ । जहाज़ दूर जानेपर मैं उसके एक तल्लेके सहारे किनारे आ लगा । इतनेमें एक मछली मुझे निगल गयी । मछुमोने उसे पकड़ कर उसी क्षण उसका पेट काढ़ डाला और मुझे उसके अन्दर देखा, विस्मित हो आपके पास ले आये । यही बात है । ”

इसके बाद राजाने उसे सोनेके पानीसे महलया कर शुद्ध बनाया और उसकी सुन्दरताके कारण उसे अपने पास रख लिया । उसी दिन उन्होंने उसका नाम मत्स्योदर रखा, जो वास्तवमें यथार्थ ही था, इसीकी प्रार्थनाके मनुमार राजाने उसे अपना पालकवास बनाया । इसने बिना अपना असल हाल किसीसे कहे, यहाँ बहुतसा समय बिता दिया ।

एक दिन धनदका भविष्य करनेवाला सुरत नामका व्यापारी

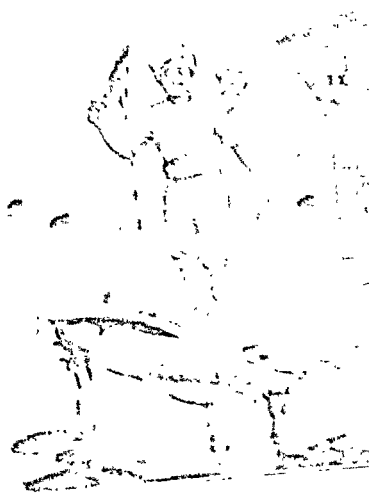
बैठा कर अपने नगरको देखना आरम्भ किया । इतनेमें एक बड़ी भारी मछली तख्तेके साँघही उसको निगल गयी । उस समय नरकके समान उस मछलीके पेटमें पड़ा हुआ धनद सोचने लगा,— “हे जीव ! यह सब सुन्दारे नसीबकर खेल है । इसलिये तুম भीर न कुछ करो, केवल उसी गार्गीको याद किया करो । ” इस प्रकार विचार करनेके बाद उसने आपत्ति निवारण करनेवाली मणिका स्मरण किया । उसके प्रभावसे मछुओंने उसी क्षण उस मछलीको पकड़ लिया । इसके बाद मछुओंने उसे एक जगह किनारे पर ले जाकर उसका पेट काट डाला । पेट फटते ही मछुओंने उसके भन्दर एक पुरुषको देख, मनमें बड़ा आश्चर्य माना । तदनन्तर उसे बाहर निकाल, पानीसे नहला कर, स्वस्थ कर, उन लोगोंने उस नगरके राजाको यह सारा हाल कह सुनाया । राजाको भी यह कहानी सुनकर बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने उसी समय धनदको अपने पास बुलाकर पूछा,— “हे भद्र ! यह अचम्भा क्योंकर हुआ ? तুম कौन हो ? इस मरस्यके उदरमें तুম कैसे चले गये ? यह सब सच-सच कह सुनाओ, क्योंकि मुझे इस बातका बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है । ”

धनदने कहा—“महाराज ! मैं जातिका बनियाँ हूँ । जहाज़ दूढ़ जानेपर मैं उसके एक तख्तेके सहारे किनारे आ लगा । इतनेमें एक मछली मुझे निगल गयी । मछुओंने उसे पकड़ कर उसी क्षण उसका पेट काट डाला और मुझे उसके भन्दर देख, विस्मित हो आपके पास ले आये । यही बात है । ”

इसके बाद राजाने उसे सोनेके पानीसे नहलाया कर शुद्ध बनाया और उसकी सुन्दरताके कारण उसे अपने पास रख लिया । उसी दिन उन्होंने उसका नाम मरस्योदर रखा, जो वास्तवमें यथार्थ ही था, उसीकी प्रार्थनाके अनुसार राजाने उसे अपना पानखवास बनाया । इसने बिना अपना असल हाल किसीसे कहे, यहाँ बहुतसा समय बिता दिया ।

एक दिन धनदका भविष्य करनेवाला सुदृढ़ नामका व्यापारी

गान्तिनाथ चरित्र—१८४८



सार्धवाहने कहा,— “तू किसी दिन एकाम्नामें राजासे जाकर कह दे, कि यह मत्स्योद्गर तो मेरा भाई है । यह सुन, उसने कटपट सार्ध-वाहकी बात स्वीकार कर ली । इस पर प्रसन्न होकर, सार्धवाहने उस बगइचालको चार ओड़ी मोनेकी हूँटें लाकर दे दीं । उन्हें घर ले जाकर यह बगइचाल गायक समामें बैठे हुए राजाके पास भाकर गाता सुनाने लगा । उसके मझीनसे प्रसन्न होकर राजाने पानघयासको बुझम दिया, कि इस उत्तम गायकको शीघ्रही पान खिलाओ । इस प्रकार राजाका बुझम पाकर ज्योंही धनद उसे पान देने गया, त्योंही यह गोतरनि नामक दुष्ट गायक, धनदके गलेसे छिपट गया, और बोला,—“भाई ! आज कितने दिन बाद मैंने तुमको देखा !” यह कह, यह अनिराय बिलाप करने लगा । यह देख, राजाने उससे पूछा,—“मत्स्योद्गर ! यह गायक क्या कह रहा है ?” इस पर मन-ही-मन उगाध चिन्तनाकर धनदने कहा,—“महाराज ! यह जो कुछ कह रहा है, यह सच ठीक है ।” राजाने पूछा, “क्योंकर ठीक है, बतानो ।” इसके उत्तरमें धनदने राजाको एक मन गदम कथा कह सुनायी । उसने कहा,—“महाराज ! पढ़ते इस नगरमें मेरे पिता, जो बगइचाल थे और गीत बलामें पढ़े ही नियुक्त थे, वे स्वामीके परम शिष्याचर थे । उनके दो शिष्यां थीं । उनके हमी दोनों पुत्र थे । मेरी माताको पिता कम प्यार करने थे, इसलिये मैं भी उनका ऐसा प्यार नहीं था । इसकी मैं उनकी बड़ी प्यारी-बुझारी थी, इसलिये यह भी उनका बड़ा लाइला था । मेरे पिताने मविष्यभूता दियाकर कर मेरी जंघामें पाँव रख (छाकर रख दिये, और आँखों जंघमको कट मग्नम पढ़ी देकर भण्डा कर दिया । इसके बाद मेरे पिताने मुझसे कहा,—‘हे धनद ! यदि कदापिन् मुझसे बुरे दिन आयें, तो इन लम्बोंको निजालकर इन्हींमें भरना काम बलाना ।’ यही कहकर उन्होंने मुझे कुछ कर दिया । मग्नमर यह उनका अन्धम प्यार था, इसलिये पिताने इसके सारे शरीरमें रख भर दिये ।” यह कह, धनदने राजाके मनमें विभाव उगम करनेके इरादों अपनी

जंघा विदीर्ण कर अपने छिपाये हुये पाँवों रत्नोंको निकाल कर राजा-
को दिखला दिया । उन महा मूल्यवान रत्नोंको देखकर राजाको बड़ा
आश्चर्य हुआ । उन्होंने उन्नी समय अपने सिपाहियोंसे कहा,—“तुम
लोग इस गीतरतिका भी शरीर काट कर रत्नोंको निकाल कर मुझे
दिखलानो ।” यह सुनते ही गीतरतिके देवता कूच कर गये और उसने
डरके मारे कहा,—“हे स्वामिन् ! न तो यह मेरा भार है, न मैं इसे
पहचानता हूँ, न मेरे शरीरमें रत्न भरे हुए हैं ।” यह येला कही रहा
था, कि राजाके सेवक उनकी देहसे रत्न निकालनेके लिये तैयार हो
गये । अदभुत यह फिर कहने लगा,—“महाराज ! मैंने जो कुछ कहा
है, वह सगत्तर झूठ है । सुदत्त सार्धयाहने मुझे सोनेकी ईंटें देकर
मुझसे यह पाप-कर्म करवाया है । हे देव ! यदि बापको मेरी घातका
विश्वास न हो, तो मेरे घरसे उन ईंटोंको मँगवा कर दिल्जनई कर
लें ।” यह सुन राजा मत्स्योदरका मुँह देखने लगे । यह देख,
उसने कहा,—“भनो ! इसकी यह घात ही ठीक है ।” राजाने कहा,
“मत्स्योदर ! अब तुम मुझे सब सच्चा हाल कह सुनाओ ।” मत्स्यो-
दरने कहा,—“हे नरेश्वर ! उस घणिकके जहाज़में मेरी आठसौ जोड़ी
सोनेकी ईंटें और पन्द्रह हजार निर्मल रत्न हैं । उन ईंटोंके अन्दर मेरे
नामका चिह्न भी अङ्कित है ।” यह कह उसने राजासे अपना नाम आदि
बतलाते हुए अपना बहुत कुछ वृत्तान्त कह डाला । यह सुन, राजाने उस
चण्डालके घरसे वे चारों जोड़ी सोनेकी ईंटें मँगवायीं और उनको तुड़वाकर
घनदका नाम भी खुदा हुआ देख लिया । तत्काल राजाने उस घणिक
और चण्डालका वध करनेका हुक्म दे डाला : पर कृपालु मत्स्योदरने
उन्नी समय उन दोनोंको प्राणमिक्षा माँग ली । इसके बाद राजाने
सोनेके जलसे उसे फिर स्नान करवा कर पवित्र करवाया और उस
घणिक तथा चण्डालके पान उसका जो कुछ धन रत्न था, वह सब मँग-
वाकर घनदको दे दिया । घणिक तथा चण्डालकी उचित शिक्षा मिली
और घनद वह सारी लक्ष्मी पाकर घनद (इन्द्रे के समान हो गया) ।

एक बार राजाने एकान्तमें धनदत्ते पूछा,— “हे मत्स्योदर ! तुम अपना सारा वृत्तान्त मुझसे सच-सच कह डालो । ” उसने भी राजा से अपना सारा कथा चिन्ता इस प्रकार कह सुनाया,— “मैं इसी नगर के रईस सेठ रत्नसारका पुत्र हूँ । मैंने एक हजार सोनेकी मुहरें देकर एक गांपा मोल ली थी, इसीलिये मेरे पिताने मुझे घरसे निकाल दिया और मैं देशान्तरमें चला गया । ” इसी प्रकार उसने अपनी और-और बातें भी राजाको बतलायीं । तदनन्तर कहा, कि—“स्वामी ! अभी आप मेरा मंझाफोड़ न करें ; क्योंकि मेरी छो और घनादिका हरण करनेवाला वैवदत्त नामका सार्यघाह भी, सम्भव है, किसी दिन यहाँ आ पहुँचे, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायेगा । ” यह कह उसने राजाको प्रसन्न कर लिया और बड़े आनन्दसे उनके पास ही रहने लगा ।

भाग्य योगसे एक दिन वैवदत्त सार्यघाह भी वहाँ आ पहुँचा । यह भी भेंट लिये, तिलकसुन्दरीके साथ राजसभामें आया । राजाने भी उसे पहचान कर उसका भली भाँति आदर-सत्कार किया । मत्स्योदर भी उस सार्यघाह और अपनी स्त्रीको पहचान कर, उनका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे एक ओर छिप रहा । उसी समय राजाने बड़े आदरसे सार्यघाहसे पूछा,— “हे मद्र ! तुम कहाँसे आ रहे हो ? और तुम्हारे साथ यह बालिका कौन है ? ” उसने कहा,— “हे राजन् ! मैं कटाहद्वीपसे चला आ रहा हूँ । मैंने इस बालिकाको एक द्वीपमें भकेजी पड़ी पाया है । मैंने इसे श्रेष्ठ वस्त्र, अलङ्कार, आहार और ताम्बूल आदिसे परम सन्तुष्ट कर रखा है । अब यदि आपकी आज्ञा हो जाये, तो मैं इसे अपनी पत्नी बना लूँ । ” यह सुन, राजाने उस बालिकासे पूछा,— “बालिके ! तुम्हें यह घर पसन्द है या नहीं ? कहीं यह तुम्हारे ऊपर बलात्कार तो नहीं करना चाहता ? ” यह सुन, वह बोली,— “इस पापीका तो मैं नाम भी लेना नहीं चाहती, क्योंकि इसने मेरे गुणरूपों रत्नोंकी निधिके समान स्वामीको समुद्रमें डाल दिया है । इस दुरात्माने मुझसे मिलनेकी कितनी इच्छा की, मेरी

कितनी प्रार्थना की, तब मैंने अपने शीलकी रक्षा करनेके विचारसे, इसे यह उत्तर दिया, कि यदि राजाकी आज्ञा होगी, तो मैं तुम्हारी स्त्री हो जाऊँगी । इस तरह इसे धोखेमें रखकर मैंने इतने दिनों तक अपनी शीलकी रक्षा की । अब मैं अपने पतिसे वियोग हो जानेके कारण अग्निमें प्रवेश करना चाहती हूँ ।” यह सुन, राजाने कहा,—“भद्रे ! तुम मरनेका विचार छोड़ दो, मैं तुम्हें तुम्हारे स्वामीसे मिला दूँगा ।” यह बोली,— “महाराज ! आपको मेरे साथ हँसी नहीं करनी चाहिये । मेरे स्वामीको तो इस सार्धवाहने समुद्रमें फेंक दिया । अब वे कहाँसे मिलेंगे ?” इसके बाद राजाने ताम्बूल देनेके लिये धनदको बुलवाकर सुन्दरीसे कहा,— “सुन्दरी ! लो, अपनी आँखों अपने स्वामीको देख लो ।” यह सुन, तिलकसुन्दरीने धनदकी ओर देखा और उसका यहाँ आना एकदम असम्भव समझ कर मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य माना । इतनेमें धनदने कहा,— “हे स्वामी ! इसका स्वामी वही है, जो न जाने कहाँसे अकस्मात् इसके महलमें आ पहुँचा और जिसे इसोंने राक्षसका विनाश करनेके लिये खड्ग दिया था । फिर उसी खड्गसे उस राक्षसको मारकर उसने स्नेहपूर्वक इसके साथ विवाह किया था ।” इस प्रकार जब धनदने आदिसे सन्त तपाको कुल घातें कह डालीं, तब यह बड़ी प्रसन्न हुई और राजाकी आज्ञासे मत्स्योदरकी पत्नी बनकर रहने लगी । पीछे राजाने सार्धवाहको बल्ल करनेका हुक्म दिया । परन्तु दयालुताके कारण धनदने उसको भी छुड़वा दिया । इसके बाद उस सार्धवाहने धनदके जो सब अलङ्कारादिक मनोहर वस्तुएँ ले ली थीं, वह राजाको दिखला दीं । राजाने वह सब चीजें धनदको दिलवा दीं ।

इसके कुछ दिन बाद राजाकी आज्ञा लेकर धनद अपने साथ बहुतसे आदमी लिये हुए अपने पिताके घर आया । उस समय सेठ गन्तसारने उस राजासे सम्मानित पुरस्कारों घर आया देख, उसे आसन भाँति देकर उसका बड़ा आदर सम्भार किया । इसके बाद सेठने कहा,—

“मैं धन्य हूँ और धन्य है मेरा यह घर, कि तुम राजासे सम्मानित पुरुष होकर भी इस घरमें पधारे । मेरे योग्य जो कोई काम-काज हो, यह बनलाओ । मेरे घरमें जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है ।” यह सुन, धनदने कहा,—“पिताजी ! आपने जो कुछ कहा, यह सब सच है; परन्तु मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिये । सेठजी ! आप यह तो कहिए, कि आपका जो धनद नामका पुत्र था, यह कहा गया और आपको उसका कुछ समाचार मालूम है या नहीं ? यह किसी निश्चित स्थानपर है या नहीं ?” यह सुन, सेठने उसे अपनेही पुत्रकी सूरत-शकलका देख, मन-ही-मन विचार कर इस प्रकार अपने पुत्रका पृष्ठान्त निवेदन किया,—“एक दिन मेरे पुत्रने दृष्टार मुहरेँ देकर एक गाथा मोल ली थी, इस पर मैंने क्रोधमें भाकर उसे कुछ खरी-खोटी सुनायी, जिससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ और यह अभिमानके मारे मेरा घर-घाग छोड़, कहींको चल दिया । जयसे यह गया है, तबसे मुझे उसका कोई हालचाल नहीं मालूम । अब मैं माहति और धोल-घालको मिलाता हूँ, तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि यही तुम्हीं तो नहीं हो; परन्तु तुमने अपने आपको ऐसा छिपा रखा है, कि मनमें संशय पैदा हो जाता है । क्योंकि दुनियामें एकसी सूरत शकलके बहुतसे आदमी होते हैं । इसीलिये मुझे यह लयाल होता है, कि तुम मेरे पुत्रकेसे आकार-प्रकारवाले कोई दूसरे मनुष्य हो ।”

सेठकी यह बात सुन, धनदने कहा,—“पिताजी ! मैं ही आपका यह पुत्र हूँ ।” यह सुन, सेठने उसके दाहिने पैरका निशान देख, उसे ठीक ठीक पहचान लिया । धनदने भी विनयके साथ पिताके चरणोंमें सिर झुकाया । सेठने अत्यन्त प्रेमके यशमें हो उसे गाढ़ालिङ्गन कर, हृषिके भाँसू भाँसोंमें भरे हुए गद्गद् कंठसे कहा,—“पुत्र ! तुम इसी नगरमें थे और अपनेको यों छिपाये हुए थे, क्या तुम्हें किसी दिन माँ-बापसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती थी ? पुत्र ! तुम इतने दिनों तक कहाँ रहे ? परदेशमें रहकर तुमने क्या क्या सुख-दुःख उठाये ?

दिनाचे इस प्रकार पृथगे पर धनदही भी कहीं नर भायी । उसने
 लंछेनमें बरका खाया वृत्तात्मा माना-दिनाको कह सुनाया और इससे
 समा मंगी। इससे बाद फिर उसने अपने दिनासे कहा,—‘दिनाजी !
 तार सुखे राजाके पहासे तुही दिनाया शीजिये, जिनमें मैं भारकी पुत्र-
 दण्डये साथ साथसे पर आकर रहने लूँ ।’ यह सुन, नेत्र पलमालने
 दहे हर्षसे साथ राजासमामें आकर पुत्रमहित राजाकी भोजनका निम-
 न्नप दिया । पन्द्र भरती दिनाके साथ हाथी पर सया हो, राजाके
 साथ-ही-साथ वही धूमधामसे करने घर आया । उस समय सेठने
 करने देशान्तरसे लांटे हुए पुत्रके माने और राजाके करने घर भोजन
 करनेके निमित्त पधारनेके कारण वही सुशीमनायी और सुबधूमधाम
 की । राजाने भी दहे आनन्दसे उसके घर भोजन किया । उस समय
 राजाका पुत्र, राजाकी गोदमें बैठा हुआ खेल रहा था । इसी समय
 एक मालीने आकर अपनी डालसे एक उठन पुष्प लेकर राजाकी
 भेंट किया । राजाकी गोदमें बैठे हुए कुमारने उस पुष्पको लेकर सुँघ
 लिया । उसी क्षण पुष्पके अन्दर बैठे हुए एक सुस्म शरीरवाले राज-
 सर्पने उसकी काष्में डंस दिया । राजकुमार दहे झोरसे रो-रो कर
 कहने लगा,— ‘न जाने मुझे किस कीड़ेने काट खाया ।’ यह सुन,
 राजाने जो फूलकी मसलकर देखा, तो उसके भीतर कहाँसा राजसर्प
 पैठा दिखाई दिया । यह देख, अत्यन्त दुःखित हो, राजाने कहा,—
 ‘अरे ! कौं आकर सर्पहरीको बुना लाओ ।’ तत्काल संपेहरी भी
 आ पहुँचा । उसने उसका डंक घौरह देखकर कहा,— ‘यह राज-
 सर्प सय सर्पोंका शिरोमणि है । इसका विष बड़ा मजदूर होता है । यह
 जिसे काट खाता है, उसपर तन्त्र-मन्त्र कुछ भी बतर नहीं करता ।’
 यह सुन, राजा और भी चिन्तनमें पड़े । श्वर छूट विष व्याप आनेसे
 राजकुमारकी चेतना लुप्त हो गयी । इसी समय धनदने आकर चक्षे-
 श्वरी देवीकी दो हुई मलिका उस छिड़क कर राजकुमारकी ललछान
 विष-रहित कर दिया । इससे राजा दहे ही हर्षित हुए, इसके बाद

राजाने धनदका खूब आदर-सत्कार किया और अपने महलोंमें आकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ भजवायीं, खूब उत्सव करवाया और दीन दुःखियोंको बहुतसा दान दिया ।

इसके बाद राजकुमार शमशः बढ़ते-बढ़ते सुधायस्थाको प्राप्त हुए । एक दिन वे हाथी पर सवार हो, राजवाटिकामें चले जा रहे थे । रास्तेमें जाते-जाते नगरकी शोभा देखते हुए कुमारकी दृष्टि सूरराजकी पुत्री धीषेणा पर पड़ी और वे उसी समय कामदेवकी पीड़ासे व्याकुल हो गये । परन्तु उस कन्याके मनमें राजकुमारको देखकर कुछ भी प्रीति नहीं उत्पन्न हुई । काम-ज्वरसे पीड़ित कुमार घर आये, पर उनकी पीड़ा शान्त नहीं हुई । कुमारके मंत्रियोंने उनका भविष्य राजापर प्रकट किया । राजाने एक चतुर मन्त्रीको सूरराजके पास उनकी कन्या धीषेणाकी धावना करनेके लिये भेजा । सूरराज मन्त्रीके मुँह से कन्याकी मँगनीकी ख्यात सुन बड़े प्रसन्न हुए और मन्त्रीकी बड़ी खातिर करने लगे । इतनेमें उस लड़कीने आकर कहा,—“यदि तुम मुझे कुमारके हाथों सौंप दोगे तो मैं निश्चय ही आत्महत्या कर दूँगी ।” सूरराजको अपनी कन्याकी यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ उन्होंने मन्त्रीसे कहा,—“अभी तो भाप जाइये, मैं पीछे अपनी कन्याको समझा-बुझाकर आपको सौंप दूँगा ।”

मन्त्रीने राजाके पास आकर यह सब हाल कह सुनाया । मन्त्रीके जाने बाद सूरराजाने अपनी कन्याको बहुत तरहसे समझाया बुझाया, परन्तु वह किसी प्रकार राजकुमारको घरनेपर राजी नहीं हुई । हाचार, सूरराजने यही बात कहला भेजी । राजाने पुत्रको इसकी सूचना दे दी । यह सुन, राजकुमारको बड़ी निराशा और घोर दुःख हुआ । इसी समय धनदने राजाके पास आकर पूछा,—“स्यामी ! आज भाप इतने चिन्तित क्यों हैं ?” राजाने इसको अपने पुत्रकी बात कह सुनायी । सब सुनकर धनदने कहा,—“हे राजन् ! आप इस बातकी ज़रा भी चिन्ता न करें । मैं अवश्य ही राजकुमारकी मनस्का-

मना पूरी करूँगा । ” यह कह, वह घर बाया और वहाँसे चक्रेश्वरी देवीका दिया हुआ एक रत्न ले जाकर राजकुमारके हवाले किया । तदनन्तर राजकुमारने धनदके बतलाये अनुसार उस रत्नकी विधिपूर्वक आराधना की, जिससे उस मणिका अधिनायक सन्तुष्ट हो गया । उसके प्रभावसे सूरराजकी पुत्रीके मनमें राजकुमारके प्रति प्रीति उत्पन्न हो गयी और उसने अपनी एक सखीसे अपने मनकी बात कह डाली । उस सखीने यह बात उसके पितासे कही । उसके पिताने इसकी सूचना राजाको दी और राजाने अपने पुत्रसे सारा हाल कहा । इससे राज-कुमारको बड़ा ही हर्ष हुआ । इसके बाद राजाने ज्योतिषीको बुलाकर विवाहका शुभ दिवस विचारनेको कहा । शुभ ग्रह-नक्षत्रमें दोनोंका विवाह हो गया । राजकुमार उसके साथ आनन्दपूर्वक विषय-सुख भोगने लगे ।

एक दिन राजाके सिरमें बड़ी भयानक पीड़ा हुई । उसी समय धनदने देवीकी रोगापहारिणी मणिके प्रभावसे उनकी पीड़ा दूर कर दी । उस समय राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ,—“ओह ! धनदके समान गुण-रत्नका सागर दूसरा कोई मनुष्य नहीं है । बड़े भाग्यसे यह मेरा मित्र हो गया है ।” ऐसा विचार कर, वे उस दिनसे उसे पुत्रसे भी बढ़कर मानने लगे ।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें शीलन्धर नामक सूरि अपने चरण-रत्नसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए परिवार सहित वा पहुँचे । सारे नगर-निवासी बड़ी भक्तिसे साथ उनके दर्शन और चन्दन करनेके लिये उद्यानमें आये । धनद भी स्थलें बैठ कर वहाँ आया । गुरुकी चन्दना कर धनद इत्यादि सभी लोग यथायोग्य स्थानपर बैठ रहे । गुरुने उस समय इस प्रकार धर्मदेशना करनी आरम्भ की,—“इस संसारमें जीवोंको धर्मके दिना सुखकी प्राप्ति नहीं होती । इसलिये, हे भक्त प्राणिमों ! तुम सदा धर्मकी आराधनाका प्रयत्न करते रहो । जो मनुष्य धर्म करते समय बीच-बीचमें मनमें अन्तर ले जाता है, वह महपापके

समान दुःखमिश्रित सुख पाता है । * यह सुन, घनदने सूरिसे पूछा,—
 “हे भगवन् ! यह महणाक कौन था, जो धर्म करते हुए बीच-बीचमें
 अन्तर डाल देता था ! उसने किस प्रकार धर्मको कलङ्कित किया !
 कृपाकर उसका वृत्तान्त कह सुनाइये ।” यह सुन, गुरुने कहा,—

“इसी मरतक्षेत्रमें रतनपुर नामक एक नगर है । उसमें शुभदत्त
 नामका एक घनशान् सेठ रहता था । उसकी छोटी नाम घमुन्धरा
 था । उनके महणाक नामका एक पुत्र था । उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री
 था । एक दिन यह महणाकके रथमें बैठकर यात्रीचमै सैर करनेके
 लिये गया । उसने यात्रीचमैमें बड़ा भारी मण्डप बनवाया था । उसी
 मण्डपमें यह अपने चार दोस्तोंके साथ बैठा हुआ मनोहर छाद्य, भोज्य,
 लेह्य और पेय—इन चारों प्रकारके आहारको इच्छानुसार बर्तने लगा ।
 खाने-पीनेके बाद, पाँच सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त ताम्बूल भक्षण कर,
 थोड़ी देर नाटकका तमाशा देखनेके अनन्तर यह फलकी समृद्धिसे
 मनोहर और घने वृक्षोंसे सुशोभित उद्यानकी शोभा देखने लगा । इतने
 में उसने एक मुनिको देखा । उन्हें देखकर यह मित्रोंकी प्रेरणासे उनके
 पास आया । उनकी घन्दना करने पर उन्होंने ध्यान तोड़कर धर्म-
 लाभरूपी आशीर्वाद दिया । इसके बाद उनकी धर्मदेशना सुनकर उसको
 प्रतिशोध हुआ और उसने उन्हीं मुनिसे समकित सहित श्रावकधर्म
 धक्कीकार कर लिया । इसके बाद यह फिर मुनिको प्रणाम कर अपने
 घर लौट आया । अपना द्रव्य लगाकर उसने एक बड़ा भारी जिन-
 मन्दिर बनवाया । इसके बाद यह अपने मनमें विचार करने लगा, —
 “मैंने धर्मरसके आधिक्यके कारण इनका धन क्यों व्यय कर डाला ?
 यह धन तो मैंने व्यर्थ ही गंवा दिया ।” ऐसा विचार मनमें उत्पन्न
 होते ही यह कुछ दिनोंके लिये निरुन्साह हो गया । इसके बाद बहु-
 तेरे मनुष्योंके आग्रहसे उसने जिनप्रतिमा बनवायी और विधिवर्यक
 उसकी प्रतिष्ठा की । जीवहिंसाका त्यागकर यथायोग्य दान भी
 दिया । फिर उसके जीमें यह विचार उठा, कि—“ओह ! मैंने

धर्मकार्यमें देहिमात्र धन लगा दिया । उपार्जन किये हुए धनका बी-
 धारं हिस्ता हो धर्ममें लगाना चाहिये, अधिक नहीं । इसका फल
 मुझे कुछ मिलेगा या नहीं, इसमें भी संशय ही है । शास्त्रोंमें तो
 ऐसा किया पाया जाता है, कि अल्प वस्तुका बहुत उत्तम फल
 मिलता है ।" इस प्रकार वित्तमें संशय रखते हुए भी यह देवपूजादिक
 कार्य किया करता था । एक दिन उसके घर दो साधु आये । उसने
 उन्हें रोबकर अच्छे-भच्छे पदार्थ भोजन कराये । मुनिगोके जाने बाद
 उसने अपने मनमें विचार किया,—“मैं भी धन्य हूँ, कि मेरे हाथों
 तरस्त्रियोंको नष्ट कर साधारण पहुँचा ।” एक दिन रातको रिठले पहर
 सोते हुए उठकर उसने अपने मनमें विचार,—“वित्तका कोई प्रत्यक्ष
 फल देवनेमें न आये, वैसा पुण्य करनेसे क्या लाभ ?” यादकी एक
 दिन दो मलिन शरीरवाले तरस्त्रियोंको देखकर उसने विचार किया,—
 “बोह ! इन मलिन शरीरवाले मुनिगोको धिक्कर हूँ । यदि कदाचित्
 ये जैन-मुनि निर्मल वेष बनाये रखते, तो क्या जैनधर्ममें इतना लग
 जाता ?” इस प्रकार विचार कर उसने फिर सोचा,—“अरे ! मेरा
 वह विचार बहुत दुरु है । मुनि तो ऐसे होते ही हैं । इनकी निर्मलता
 संयममें है, इनके शरीरकी निर्मलताकी ओर ध्यान देना ही उचित
 नहीं ।” इसी प्रकार उसने शुभ भावोंके द्वारा शुभ कर्मोंका उपार्जन
 किया और बीच-बीचमें अशुभ भाव हो जातेसे उसने अशुभ कर्म भी
 उपार्जन कर लिया । अनन्तर आधु पूर्ण होजानेपर वह भवनरति देव
 हुआ । उसी स्थानसे ब्युत्त होकर तुम इस समय धनदानक सेठके पुत्र
 हुए हो । पूर्वभवेमें तुमने धर्म करते हुए भी बीच-बीचमें उसे दूषित
 किया, इसीलिए तुम्हें इस भवने दुःख निभित सुख प्राप्त हो रहा है ।”

इस प्रकार अपने पूर्वभवकी कथा सुनकर धनद, मूर्च्छित हो,
 पृथ्वी पर गिर पड़ा और जातिस्मरण उत्पन्न होनेके कारण उसने
 अपना पूर्वभव स्पष्ट देख लिया । यह देख, उसने मुदते कहा,—“अमो !
 आपने जो कुछ कहा, वह विलकुल सत्य है । मय जो मैं अपने हनुमो

की आज्ञा ले, भापसे ही प्रत ग्रहण करूँगा।" यह कह, उसने अपने घर आ, माता पितासे कहा,— "हे पिता ! हे माता ! तुम लोग मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दे दो।" यह सुनकर उम लोगोंने उसे बहुत तरहसे समझाया, पर यह अपने विचारसे न डिगा। तब लाचार होकर उम्होंने कहा,— "हे पुत्र ! यदि तुम दीक्षा लोगे, तो हमलोग भी तेरे साथ ही दीक्षा ले लेंगे।" उनकी ऐसी बात सुन, धनदने राजाके पास जाकर अपना अभिप्राय; उनसे कह सुनाया। राजाने भी कहा,— "मैं भी तुम्हारे साथ ही प्रत ले लूँगा।" यह सुनकर धनदने कहा,— "हे नाथ ! गृहस्थीमें तो आप मेरे स्वामी रहे ही; यदि यति होने पर भी आप ही मेरे स्वामी बने रहें, तो इससे बढ़कर और क्या चाहिये ?"

इसके बाद राजाने कनकप्रस नामक अपने पुत्रको राजगद्दी पर बिठाकर धनदने पुत्र धनपाहको सेठके पद पर स्थापित कर दिया। तदनन्तर राजा, माता-पिता और भार्याके साथ धनदने गुरुके पास आकर दीक्षा ले ली। कालक्रमसे ये लोग सब प्रकारके तप कर, गुप्त प्रयत्नोंका पालन कर, शुभ ध्यान करते-करते शरीर छोड़कर देव लोकमें चले गये। यहाँमें ज्युन होनेपर ये लोग महाप्रियदेव क्षेत्रमें मनुष्य सब पाकर, शान्ति ग्रहण कर मोक्षार्थ प्राप्त करेंगे।

मन्थौरा कुमार क्या समाप्त।

शान्ति मुनिने कहा,— "हे विद्याधरेन्द्र अमिननेत्र ! धनदनी यह क्या सुनकर तुम्हें निरन्तर निष्कलङ्ग धर्म करना चाहिये।"

ऐसा उद्देश पाकर अमिननेत्रने गुरुकी आज्ञा मिर पर बढ़ावी और दोनों मुनियोंको प्रणाम किया। इसके बाद ये शान्ति-श्रमण मुनि आकाशमें उड़कर अन्धत्र चले गये।

राजा श्रीविजय और अमिननेत्र धर्म-कर्ममें लक्ष्य रहते हुए काल-क्षय करने लगे। दोनों पुण्यात्मा राजा प्रति वर्ष तीन-तीन यात्रार्थ किया करते थे, जिनमें दो यात्रार्थ शारवत तीर्थकी और एक भ्या-जन तीर्थकी होती थी। एक क्षेत्र प्रथमें और दूसरी भाग्यवतमान

में इस प्रकार दो महाशक्तियाँ साध्यत हैं । देव और विद्याधर इन महाशक्तियोंमें मन्दोदर हीरकी यात्रा करने हैं और दूसरे-दूसरे लोग करने-करने देशोंमें स्थित करावून तीर्थोंकी यात्रा करते हैं ।

अग्निवैज और श्रीविजय भूचरों तथा घेचरोंके स्वामी थे । वे मन्दोदर हीरकी दो-दो यात्राएँ किया करने थे । तीसरी यात्रा वे वनमन्त्रके वेदव्रतानकी उत्पत्तिके स्थान मन्मथन-पर्यन्तके ऊपर श्री आदिनाथके मन्दिरकी करने थे । इस प्रकार कई हजार वर्षों तक उन दोनोंने राज्य किया । एक दिन वे लोग मेघ-पर्वतके ऊपर शारवत त्रिपिन्यकी घन्दना करने गये । वहाँ त्रिपिन्यकी घन्दना कर, वे दोनों नन्दन वनमें चले गये । वहाँ उन्होंने विपुलमति और महा-मति नामक दो चारण-धर्मज मुनियोंको बैठे देखा । उनकी घन्दना कर, उनकी देखना ध्वज कर, उनसे श्रीविजय और अग्निवैजने पूछा,—“हे भगवन् ! हमारी अब कितनी आयु शेष है ?” मुनियोंने कहा,—“अब तुम्हारी आयुके केवल २६ दिन बाकी हैं ।” यह सुन, उन दोनोंने व्याकुल होकर कहा,—“हमने विषय-सौलुपतामें पड़कर इतने दिनोत्तर चारित्र नहीं ग्रहण किया । अब इतनी थोड़ी आयुमें हम क्या कर सकते हैं ?” उनको इस प्रकार शोक करते देख, मुनियोंने कहा,—“अभी तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ा है । अब भी तुम स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले चारित्रको ग्रहण कर, आत्मकार्यकी साधना कर सकते हो, इसलिये तुम ऐसा ही करो ।” मुनियोंके इस प्रकार दिलासा देने पर दोनों करने-करने नगरको चले गये और करने-करने दुर्गोंको राज्य देकर अग्निनन्दन नामक मुनिसे दीक्षा ले ली, तथा नत्काल पादपोषण-अभ्यास करना आरम्भ किया । दुष्कर अभ्यास-व्रतका पालन करते हुए श्रीविजय मुनिको करने गिता विपुल वायुदेवके तेज-पराक्रमका स्मरण हो आया । इससे उन्होंने भय-हो-भय निर्णय किया,—“इस दुष्कर व्रतके प्रभावसे मैं भी करने गिताके ही मुक्त हो जाऊँगा । अग्निवैज मुनिसे ऐसा कोई निश्चय अपने मनमें नहीं किया । आयुष्मका

क्षय होने पर वे दोनों मृत्युको प्राप्त हुए और दूसरों प्राणन कल्यमें मह-
र्द्धिकदेव हो गये । इनमें अमितनेत्रका जीव नन्दिकावर्त्त नामक विमान-
में दिव्यचूल नामका देव हुआ और श्रीविजयका जीव स्वास्तिकावर्त्त
नामक विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ । यहाँ रहते हुए वे दोनों
देव इच्छानुसार दिव्य विषय-सुख भोगते, नन्दीश्वरादिक तीर्थमें
यात्रा करते और देव पूजा, स्नात्र आदि धर्मक्रियामें तत्पर रहते हुए,
शुभ भागसे अपने समकित-रत्नको अत्यन्त निर्मल बनाने लगे ।



तृतीय प्रस्ताव

इस जम्बूद्वीपके पूर्व महाविदेह-क्षेत्रके रमणीय नामक विजयमें सुमगा नामकी एक बड़ी भारी नगरी है। किसी समय यहाँपर गम्भीरता इत्यादि गुणोंसे युक्त और परम प्रतापी स्तिमितसागर नामके राजा राज्य करते थे। उनके शांतिरूपी मलङ्कारसे सुशोभित और उत्तम गुणोंवाली दो स्त्रियाँ थीं, जिनके नाम यस्तुन्यरी और अनुदरी थे। वह जो दिव्यचूल नामक अमृततैजका जीव था, वह आयुष्यका क्षय होनेपर प्राणत रूपसे व्युत् होकर रानी यस्तुन्यरीकी बोजने पुत्र-रूपसे अवतीर्ण हुआ। उस समय रानीने हस्ती, पद्मसरोवर, चन्द्र और कृष्ण—ये चार स्वप्न बल-मन्त्रके जन्मके सूचक देखे, इससे प्रभावसे समय पूरा होनेपर रानीने सोने-की सी कान्तिपाटा पुत्र प्रसव किया। पिताने पुत्र-जन्मके उपलक्षमें बड़ी धूमधाम की और उस पुत्रका नाम अराजित रखा। इसके बाद मण्डिचूल नामका जो धीविजयका जीव था, वह भी आयुष्य पूरा होनेपर प्राणत रूपसे व्युत् होकर राजाकी दूसरी रानी अनुदरीकी बोजने आया। उस समय रानी अनुदरीने वासुदेवके जन्मकी सूचना देनेवाले सिंह, सूर्य, पूर्णकुम्भ, समुद्र, धीदेवी, रत्न-समूह और निधूम मणि—ये सात स्वप्न मुखने प्रवेष्ट करते देखे। ज्ञानःज्ञान उनसे बड़े हर्षसे भरने पतिको इन स्वप्नोंकी बात बतलायी। इन स्वप्नोंकी बात सुनकर राजानी स्वप्न-शास्त्रके विद्वानोंकी बुलावाकर इस स्वप्नका विचार करवाया। उन लोगोंने कहा,—“हे राजन्! इन सात स्वप्नोंके प्रभावसे आनेके पुत्र वासुदेव (त्रिपरदाधिराजि) होने और पहली रानीके पुत्र पलमद्र होने।” यह कह, ये स्वप्नशास्त्रके पण्डित राजाका दिया हुआ दान लेकर अपने अपने घर चले गये। राजा जो राज्यका पालन करने लगे।

क्रमशः समय पूरा होनेपर अनुदरी रानीके गर्भसे एक श्यामकान्ति पुत्रका जन्म हुआ । पिताने स्नान धूमधामसे उत्सव किये और उसका नाम अनन्तवीर्य रखा । ये दोनों राजकुमार क्रमशः बढ़ने-बढ़ने कला-भ्यास करने योग्य हो गये, इसलिये राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास कराया, धीरे-धीरे रूप और लावण्यसे शोभित ये दोनों कुमार युवा वस्थाको प्राप्त हुए । तब राजाने उनका विवाह भी कर दिया ।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें विशेष ज्ञानवाले स्वयंप्रभुनामके मुनि पधारे । उसी समय स्तिमितसागर राजा भी घुड़सवारी करके गये हुए, विश्राम करनेकी इच्छासे, उसी मन्दनके समान मनोहर उपवनमें आकर घोड़ी देर बैठे रहे । इसी समय राजाकी दृष्टि भरोक वृक्षके नीचे ध्यानमग्न मुनिपर पड़ी और उन्होंने शुद्ध भावसे उनके पास जा, उनकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, विधिपूर्वक उनको नमस्कार किया । इसके बाद विनयसे नम्र बने हुए उचित स्थानमें बैठकर उन्होंने मुनिके मुंहसे इस प्रकारकी धर्मदेशना सुनी,—“कषाय कह्ये वृक्ष है, हुए ध्यान इनके फूल हैं, इस लोकमें पाप-कर्म और परलोकमें पुर्गति ही इनके फल हैं । ऐसाही समझकर संसारसे विरक्त और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको इन अनर्घकारी कषायोंका अवश्यमेव त्याग करना चाहिये ।” मुनिके ऐसे वचन सुन राजाने कहा,—“हे मुनिराज ! आपने जो कहा, यह सब सत्य है, परन्तु यह तो कहिये, ये कषाय कितने प्रकारके हैं ?” गुरुने कहा,—“हे नरेन्द्र ! सुनो,—

“क्रोध, मान, माया और लोभ — ये चार प्रकारके कषाय हैं । इनमें से प्रत्येकके चार-चार भेद हैं । इनमें प्रथम अनन्तानुबन्धी, द्वितीय अप्रत्याख्यानी, तृतीय प्रत्याख्यानावरणी और चतुर्थ संज्वलन कहलाते हैं । पहला, अनन्तानुबन्धी क्रोध, पत्थरपर की हुई लकीरकी तरह अमिट और महादुःखदायी है । दूसरा, अप्रत्याख्यानी क्रोध, पृथ्वीकी रेखाकी तरह है । तीसरा, प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, धूलकी रेखाके समान है और चौथा, संज्वलन क्रोध, जलकी रेखाके तुल्य माना गया है ।

मान और कषाय आदि भी इसी प्रकार चार-चार तरहके हैं । वे क्रमशः पत्थर, हड्डी, लकड़ी और तृणके स्तम्भके समान हैं । माया भी चार तरहकी है । यह घाँस, मेढ़के सींग, बैलके मूत्र और अवलेहिकाके समान है । इसी तरह लोभ भी चार तरहका होता है । यह किरमिची रंग, या कीचड़, खज्जन और हल्दीके रंगका सा होता है । अनन्तानुबन्धी आदि चारों कषायोंके भेद अनुक्रमसे जन्मपर्यन्त, एक वर्षतक, चार महीनेतक और एक पक्षवादेतक रहनेवाले होते हैं और क्रमशः नरक-गति, तिर्यच-गति, मनुष्य-गति और देवगतिके देनेवाले होते हैं । हे राजन् ! इन सोलह प्रकारके कषायोंको आश्रपूर्वक पालने रहनेसे ये दीर्घकाल तक दुःख देते रहते हैं और स्वाभाविक रीतिसे करनेसे कुछ ही भय तक दुःख देने हैं । इसलिये हे राजन् ! तुम तो इन कषायोंको एक दम त्याग दो : क्योंकि थोड़ेसे दुष्टतसे भी पापका बहुत बड़ा फल मिल जाता है । जिस प्रकार मित्रानन्द आदिको इनका फल भोगना पड़ा था, वैसेही औरोंको भी भोगना पड़ेगा ।

यह सुन, राजाने मुनिसे पूछा,—“पूज्य मुनिराज ! ये मित्रानन्द आदि कौन थे ? और उन्हें थोड़ेसे कषायका बहुत कड़ा फल किस प्रकार भोगना पड़ा ? यह कृपाकर बतलाइये ।” इसके उत्तरमें स्वयंप्रम मुनिने कहा,—“हे राजन् ! उस मित्रानन्दकी कथा तुम खूब जी लगाकर सुनो ।” ऐसा कहकर मुनिने अपनी अमृत भरी चाणीमें वह कथा सुनानी आरम्भ की :—

मित्रानन्द और अमरदत्तकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें अपनी अपार समृद्धिके कारण देवनगरीके समान बना हुआ और पृथ्वीपर परमप्रसिद्ध अमरतिलक नामका एक नगर है ।

७ बाँस आदिके अरकी द्वारा ।

साथ तारती दौड़ा प्रहस्य कर ली और बनमें जाकर रहने लगे । वत
महस्य करते समय रानीके गर्भ था, यह बात किसीको मालूम नहीं थी ।
कमल गर्भ वृद्धि पाने लगा । यह देख, राजाने एक दिन रानीसे पूछा,—
“ यह क्या ? ” यह सुन, रानीने राजा और कुलरतिको साथ हाल
सब-सब बतला दिया । तत्कालिनियोंकी सेवा-सहायतासे पूर्ण समय
पर रानीके एक सुमनसमय पुत्र उत्पन्न हुआ ।

दैवयोगसे प्रसूति-अवस्थामें सरय्य बाहर करनेके कारण रानीके
शरीरमें मयङ्गु व्याधि उत्पन्न हो गयी । तत्कालमें रानीके और पप्प-
का, जैसा चाहिये वैसा सुभीता नहीं था, इसलिये सब तत्कालिनियोंने मिल-
कर विचार किया,— “माताके पिता गृहस्थोंके बालकोंका पालन-पोषण
बड़ा ही कठिन है । ऐसी अवस्थामें यदि कहीं इस बालकको माता
नर गयी, तो फिर हम तत्कालीन इसका कैसे पालन करेंगे ? ” वे लोग
इसी तरह चिन्त करहो रहे थे, कि इसी समय उम्रपिनीका रास, देव-
घर नामक बचिक, व्याघरके लिये घूमना-फिरना हुआ वहाँ जा पहुँचा ।
वह तत्कालिनियोंने बड़ी भक्ति रखता था, इसलिये उनकी वन्दना करने-
के निमित्त तत्कालमें चला गया । उस समय उन सभी तत्कालिनियोंकी
चिन्तामें पड़े देखकर उसने उनसे इसका करम पूछा । यह सुन, कुल-
पतिने कहा,— “ हे देवघर ! यदि तुम्हें हमारे दुखसे दुःख होता हो,
तो इस बालकको तुम लेलो, ” यह सुन, उसने कुलरतिको साथ स्वीकार
कर ली, तत्कालिनियोंने बालकको उसके हवाले कर दिया । उसने यह
बालक लेकर अपनी देवसेवा नामक स्त्री, जो उसके साथ वहाँ
जायी हुई थी उसे दे दिया । उस देवसेवाके एक लक्ष्मी दूधरानी
बालिका थी, इसलिये बड़ी मनुकृपा हुई । श्वर नन्दसेवा रानीने
अपने पुत्रको सभी जगह दूँदा : पर वह न निम्न, तब मन नारकर रह
गयी, अन्ततः उसका रोग बहुत बढ़ गया और उससे उनकी मृत्यु भी
हो गयी । देवघरने उस लक्ष्मीको घर ले जाकर बड़ी धूमधाम की और
उसका नाम अनन्द रख दिया उसकी पुत्रिका नाम सुरसुन्दरी रखा,

लोगोंमें यही बात प्रसिद्ध हुई, कि देवधरकी लीके जुड़ेले बालक पैदा हुए हैं ।

कमराः उच्चयिनी-मगरीके सागर सेठकी ली मित्रभीके गर्भसे उत्पन्न मित्रानन्दके साथ अमरदत्तकी मित्रता हुई । उन दोनोंमें ऐसीही मित्रता थी, जैसी दोनों भाँजोंमें होती है । एक दिन पर्या-अतुमें दोनों मित्र क्षिप्रानदीके किनारे घटवृक्षके पास गिल्लीडंडा खेल रहे थे । एक बार अमरदत्तकी उछाली हुई गिल्ली देवयोगसे घटवृक्षसे लटकते हुए किसी खोरके मृत्तक शरीरके मुखमें जा पड़ी । यह देख, मित्रानन्दने हँस कर कहा,—“भइ, मित्र ! यह देखो, कैसे साध्यकी बात है, कि तुम्हारी गिल्ली इस मृत्तकके मुँहमें चली गयी ।” यह बात सुन, क्रोधितसा होकर वह मृत्तक बोझ उठा,—“हे मित्रानन्द, चुन ले ! तू भी इसी तरह इसी घटवृक्षसे लटकाया जायेगा और मेरे मुँहमें भी गिल्ली पड़ेगी ।” उसके पैसे वचन सुन, मृत्तकके भयसे भील होकर मित्रानन्दका उत्साह खेलमें न रह गया, इसलिये उगने कहा,—“यह गिल्ली मुँहके मुँहमें पड़ कर अर्धाग्र हो गयी, इसलिये जाने दो—अब यह खेलही बन्द कर दिया जाये ।” यह सुन, अमरदत्तने कहा,—“मेरे पास दूसरी गिल्ली है, उम्मेरो खेलो ।” परन्तु इसपर भी मित्रानन्द खेलनेका चाज़ी न हुआ और दोनों मित्र अपने-अपने घर चले गये ।

दूसरे दिन मित्रानन्दका उद्वास और उसका खेदना काला पड़ा हुआ देख, अमरदत्तने उससे पूछा,—“हे मित्रानन्द ! तुम क्यों ऐसे दुःखित होरहे हो ? तुम्हारे दुःखका कोई कारण भी है ? यदि हाँ, तो मुझसे कह सुनाओ ।” उसके इस प्रकार कहा आग्रह करके, पूछनेपर मित्रानन्दने उस मृत्तककी कहा हुई बातोंका खोरा अपने मित्रका सुनाया । यह सुन, अमरदत्तने कहा,—“हे मित्र ! मुझ तो कभी बर्तें नहीं करना, इसलिये मुझे ना देवा मायूस होना है, कि अदृश्यसे यह बात किसी खेलनेवाले कही होगी । पर हाँ, कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता ।” इसके बाद अमरदत्तने फिर उम्मेरो पूछा,—“अच्छा, मित्र ! यह न क-

लाओ, कि तुम्हें उसकी बात सच्ची मालूम होती है या झूठी ? अथवा तुम उसे दिलगी-भात्र समझते हो ?” यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—“मुझे तो वह बात सच्ची ही मालूम पड़ती है ।” इसपर अमरदत्तने कहा,—“यदि सच्ची हो, तो भी क्या हुआ ? मनुष्यको चाहिये, कि अपने भाग्य-का लिखा हुआ मेट डालनेके लिये भी पुरुषार्थ करे ।” मित्रानन्दने कहा,—“जो बात दैवाधीन है, उसमें पुरुषार्थ क्या करेगा ?” अमरदत्तने कहा,—“मित्र ! क्या तुमने नहीं सुना है, कि ज्ञानगर्भ मन्त्रीने पुरुषार्थके ही द्वारा दैवशक्ती बतलायी हुई अपनी जीवन-नाशिनी आपत्तिसे छुटकारा पा लिया था ।” मित्रानन्दने पूछा,—“वह ज्ञानगर्भ कौन था ? और उसने किस प्रकार आपत्तिसे छुटकारा पाया था ? यह सब हाल मुझे बतलाओ ।” यह सुन, अमरदत्तने उसे यह कथा कह सुनायी,—

ज्ञानगर्भ मन्त्री की कथा

इसी भरतक्षेत्रमें धन-धान्यसे परिपूर्ण चम्पानामकी नगरी है । उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे । उनके मन्त्रीका नाम ज्ञानगर्भ था, जिसपर वे सदा प्रसन्न रहते थे और जो राज्यको सारी विन्ता अपने सिरपर लिये हुए था । मन्त्रीको खोका नाम गुप्ताबलो था । उसीकी कोखसे उसके सुपुत्रि नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही सुन्दर था । एक दिन राजा जितशत्रु सब मन्त्रियों और सामन्तोंके साथ सभामें बैठे हुए थे, उसी समय कोई अष्टाङ्ग ज्योतिषका जाननेवाला दैवज्ञ द्वारपाल-द्वारा राजाको आह्वा मंगवाकर सभामें आया और राजाको आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आसनपर बैठ रहा । उस समय राजाने उससे पूछा,—“हे दैवज्ञ ! तुमने कितना ज्ञान उपार्जन किया है ?” उसने कहा,—“हे राजन् ! मैं ज्योतिष-विद्याके प्रभावसे, लाभ-हानि, जीवन-मरण, गमन-भागमन और सुख-दुःखकी सभी बातें जान लेता हूँ ।” तब

राजाने कहा,—“ मेरे इस, परिवारमें यदि किसीके ऊपर कोई बहुत बात घीतनेवाली हो, तो घतालाओ ।” यह सुन, दैवज्ञने कहा,—“मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि आपके इस ज्ञानगर्भ मन्त्रीपर पन्द्रह दिनोंके भीतर ही ऐसी विपत्ति आनेवाली है, जिससे यह अपने कुटुम्ब सहित मारा जायेगा ।” यह बात सुनकर राजा और समस्त राजकर्मचारियोंको बड़ा खेद हुआ । तदनन्तर दुःखित-हृदयसे मन्त्रीने उस दैवज्ञको अपने घर एकान्तमें ले जाकर पूछा,—“हे भद्र ! यह तो घतालाओ, कि मेरे ऊपर यह विपत्ति किस प्रकार आनेवाली है ?” उसने जवाब दिया,—“यह विपत्ति तुम्हारे ऊपर तुम्हारे बड़े बेटेके करते आयेगी, ऐसा मुझे मालूम होता है ।” यह सुन, मन्त्रीने उसका सत्कार कर उसे विदा कर दिया ।

इसके बाद मन्त्रीने अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—“हे पुत्र ! यदि तुम मेरी बात मानो, तो मेरे ऊपर आनेवाली प्राण-नाशिनो विपत्तिको अपनी ही विपत्ति मानो ।” यह सुन, पुत्रने अतिशय विनीत भावसे कहा,—“ पिताजी ! आप जो कहिये, वह करनेके लिये मैं तैयार हूँ ।” इसके बाद मन्त्रीने एक आदमीके समान जाने लायक बड़ा सा सन्दूक मँगवाया और उसमें पानी तथा भोजनकी सामग्री सहित पुत्रको डालकर बाहरसे बाँध ताले जड़ दिये । बादको वह सन्दूक राजाके हवाले कर उसने कहा,—“ हे राजन् ! यही मेरा सर्वस्व है । इसे आप खूब हिफाजतसे रखिये ।” यह सुन, राजाने कहा,—“ हे मन्त्री ! तुम इस सन्दूकमें रखे हुए धनको अपनी इच्छाके अनुसार धर्म-कार्यमें लगा दो—तुम्हारे बिना मैं इस धनको लेकर क्या करूँगा ?” मन्त्रीने कहा,—“स्वामिन् ! सेवकोंका यही धर्म है, कि चाहे जान भलेही चली जाये, पर अपने स्वामीके साथ धोखाधड़ी न करें ।” इस प्रकार उसके बहुत आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक एक गुप्त स्थानमें रखवा दिया । तब मन्त्रीने जिनमन्त्रियोंमें अष्टाङ्गिका-उत्सव प्रारम्भ करवाये, धीर्लघुकी पूजा की, हीन हीन मनुष्योंको दान दिया, अमारीकी आघोषणा करवायी और

आप अपने घरमें शास्त्रि-पाठ करने लगा । सायही शस्त्र तथा जिरह यन्त्रोंसे सजे हुए घीरी और हाथी-घोड़ोंको घरके चारों तरफ रख-पालीके लिये तैयार कर गृह-रक्षाका भी प्रबन्ध कर डाला । तदनन्तर यह घरके मन्दिरमें बैठकर धर्म-अभ्यास करने लगा । इसी तरह करते हुए पन्द्रहवां दिन आ पहुँचा । उस दिन पक्कापक राजाके भन्तःपुरसे यह आयाज्ञ आयी,—“हे लोगो ! दीहो, दीहो, यह देखो मन्त्रीका पुत्र सुयुद्धि राजकुमारीका घेणीदण्ड काटकर भागा जा रहा है ।” यह बात सुन, राजाने एक बारगी क्रोधमें आकर विचार किया,—“मैंने उस हुए मन्त्री-पुत्रका इतना आदर किया और उसने मेरे साथ ऐसी बेजा हर-कत की ?” ऐसा विचार मनमें आतेही राजाने सारी सभाके साम-नेही कोतवालोंको आह्वान दी, कि मन्त्री-पुत्रके इस अपराधके दण्ड-स्वरूप तुम अभी मन्त्रीको सपरिवार मृत्युके घाट उतार दो । उसके किसी नौकरको भी जीता न छोड़ना ; क्योंकि उसके पुत्रने बहुत बड़ा अप-राध कर डाला है । यह कह राजाने मन्त्रीके घर पर सेना भेजवायी । उस समय मन्त्रीके सैनिकोंने इनकी राह रोकी । यह सब समाचार ध्यानमें मग्न होकर बैठे हुए मन्त्रीको आपसे आप मालूम हो गया और उसने तत्काल बाहर आकर अपने आदमियोंको लड़नेसे मना करते हुए, राजाके सैनिकोंसे कहा,—“हे वीरो ! तुमलोग एक बार मुझे राजाके पास ले चलो । उन लोगोंने ऐसाही किया । मन्त्री-को देख राजाका क्रोध कम हो गया । तब मन्त्रीने राजाके सामने जा, प्रणाम कर विनयपूर्वक कहा,—“हे महाराज ! मैंने जो सन्दूक आपके यहाँ रखवा दिया था, उसके भीतरकी चीज़ निकलवाइये । इसके बाद आपकी जैसी ईच्छा हो, वैसा करें ।” यह सुन राजाने कहा, क्या इतना बड़ा अपराध करके तुम मुझे धन देकर सन्तुष्ट करना चाहते हो ?” मन्त्रीने कहा,—“महाराज ! मेरे प्राण तो आपके अधीनही हैं, पहले एकबार उस सन्दूकको तो खोलकर देखिये ।” उसके ऐसा आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक मँगवाकर उसके सब ताले तुड़वा

जाते । उसके मन्दिर मन्त्रीका पुत्र सुबुद्धि बैठा हुआ था । उसके हाथिने हाथमें शस्त्र और बाग्ये हाथमें पेणोदण्ड था ; पर उसके दोनों पैर बंधे हुए थे । उसकी यह हालत देख, राजागे भाक्ष्यमें पहुँचकर पूछा,— “यह क्या मामला है ?” मन्त्रीने कहा,— “महाराज ! मैं क्या जानूँ ? हाथद भाग कुछ जानगे हों ।” सच्ची बात जाने बिना ही भाग भागे इस जगमगरके सेवकको जड़से उठाकर फेंकनेके लिये तैयार हो गये थे । यह सन्तूक मंत्री भागके ही घर रथ छोड़ा था । अब यदि उसके मन्दिर यह करामात हो गयी, तो मेरा क्या अपराध है ?” यह सुन राजाके ललित होकर कहा,— “हे मन्त्री ! तुम मुझे इसका भेद बताताओ ।” मन्त्रीने कहा,— “स्वामिन् ! हो सकता है, कि किसी मृत क्रैमने कोधित होकर मेरे इस निर्दोष पुत्र पर यह दोष मगानेके लिये यह काम किया हो । नहीं तो इस तरह सन्तूकमें धन्द करके रथे हुए आदमीकी ऐसी अवस्था क्योंकर हो सकती है ?” यह सुन राजाके प्रसन्न होकर पुत्र सहित मन्त्रीका आदर-सत्कार किया । इसके बाद उन्होंने फिर पूछा,— “मन्त्री ! तुमने यह बात क्योंकर जानी ?” तब मन्त्रीने कहा,— “राजन् ! मैंने उम्मी ग्योनिगोमे पूछा था, कि मेरे ऊपर कैसे विपद् आयेंगी ? उसने कहा, कि तुम्हारे पुत्रके करने तुम पर बाधित आयेंगी । इसीलिये मैंने उसके बतलाये अनुसार यह तरीका रखा । श्री विनयमेधे प्रभावसे मेरे विपद् टल गये ।” इसके बाद राजा और मन्त्री दोनोंने अपने-अपने पुत्रोंको अपनी आज्ञा पर बहाल कर दीक्षा ले ली और गणप्या करने हुए सन्तुष्टि पायी,

जगताके मन्त्रीकी क्या मजाल ।

“हे मित्र ! जेमे मन्त्रोंने अपने पराक्रम और वस्त्रों भली दिगति का बतल किया है, वेसाही तुम भी करो और इस बीड़को जगमगी ।”

इसकी वजह सेन सुन, मित्रमन्त्रने कहा,— “मित्र ! अब तुम्हीं करो, कि मैं क्या करूँ ?” मन्त्रमन्त्रने कहा,— “कहो, हमलोग यह देन छोड़ कर क्यों और क्यों करने ?” यह सुन, मित्रमन्त्रने अपने मित्रके हाथ की

परीक्षा लेनेके विचारसे कहा,—“तुमसे बाहर जाना नहों बन सकता; क्योंकि तुम्हारा शरीर बड़ाही कोमल है। शवने मेरी जिस विपदकी बात कही है, वह तो न जाने कब सिर पर आयेगी; पर सुकुमारताके कारण परदेशकी तकल्लोफ़ीके मारे तुम्हारा मरना तो बहुतही शीघ्र सम्भव है।” यह सुन, अमरदत्तने कहा,—“मित्र ! चाहे जो कुछ हो; पर मैं तो सुख या दुख तुम्हारे साथ ही भोग करूँगा।” उसकी ऐसी बात सुनकर मिश्रानन्दके हृदयका विचार जाता रहा और दोनोंके दिल मिल गये। इसके बाद वे दोनों सलाह करके घरसे बाहर हुए और क्रमशः पाटलिपुत्रनगरमें आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने नगरके बाहर एक नन्दन वनके समान मनोहर उद्यानमें ऊँची चहारदिवारीसे घिरा हुआ और ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित एक सुन्दर प्रासाद देखा। उसे देखकर दोनों मित्रोंकी बड़ा आश्चर्य हुआ और वे पासवाली घावलीके जलमें हाथ, पैर और मुँह धोकर प्रासादके अन्दर चले गये और उसकी सुन्दरता देखने लगे। वहाँ अमरदत्तने एक पुतली देखी, जो रूपद्रावण्यमें ठीक देवाङ्गनासी मालूम होती थी। उसे देखकर अमरदत्त चित्रलिखितकी भाँति अचल सा हो रहा और भूख, प्यास तथा थकावट भी भूल गया। इतने में मध्याह्नका समय हो गया देखकर मिश्रानन्दने कहा,—“भाई ! चलो नगरमें चलें; बहुत दिलग्न्य हो रहा है।” यह सुन, उसने कहा,—“हे मित्र ! क्षणभर और ठहर जाओ, जिसमें मैं इस पुतलीकी अच्छी तरह देख लूँ।” उसकी यह बात मान, कुछ देर ठहरनेके बाद मिश्रानन्दने फिर कहा,—“प्रिय मित्र ! चलो, नगरमें चलकर वहाँ ठहरनेका ठीक-ठिकाना करें, खाये-पीये, फिर यहाँ चले आयेगे।” यह सुन अमरदत्तने कहा,—“यदि मैं यहाँसे दूटा, तो जरूर मर जाऊँगा।” यह सुन मिश्रानन्दने कहा,—“मित्र ! इन पत्थरकी पुतली पर तुम्हारा इतना अनुराग क्योंकर हो गया ! यदि तुम्हें खी-बिलासकी ही इच्छा हो, तो नगरमें चलकर भोजन करके अपनी इच्छा पूरी कर लेना।”

इसी प्रकार बार-बार कहने परन्तु अब वह यहाँसे न दूटा, न मिश्र-

मन्द प्रोधके मारे बड़े जोर-जोरसे रोने लगा । यह देख—भगवन् भी रोने लगा ; पर वहाँसे हटनेका नाम नहीं लिया । इतनेमें उस प्रामादका स्यामी सेठ रत्नसार भी यहाँ आ पहुँचा । उसने उन्हें देखकर कहा,—“भरे भाइयो ! तुमलोग इस प्रकार स्त्रीकी नार्द क्यों रो रहे हो ?” यह सुन, मित्रामन्दने पिताके समान उस सेठसे अपनी सारी रामकहानी आरम्भमेही कह सुनायी और मित्रकी वर्त्तमान स्थितिका हाल बतलाया । यह सुन, उस सेठने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया ; पर उसका उस पुतली परसे अनुराग नहीं दूर हुआ । यह देख, सेठको भी बड़ा छेद हुआ । उसने अपने मनमें विचार किया,—“जब पत्थर की बनी हुई नारी इस तरह मन हर लेगी है, तब साक्षात् स्त्रीकी बात तो कहना ही क्या ! कहा भी है,—

तावन्मौनी यतिज्ञानी, एतन्मूर्खी त्रिनेन्द्रियः ।

वाक्मन योयितां दृष्टि-गोचरं यानि पुरः ॥ १ ॥

अर्थात्—“पुरुष जबतक स्त्रीको नहीं देखता, तभीतक वह मौनी, यति, ज्ञानी, तपस्वी और त्रिनेन्द्रिय बना रहता है ।”

यह सेठ बड़ी बात सोच रहा था, कि इतनेमें मित्रामन्दने उससे पूछा,—“हे तात ! इस विषय स्थितिमें मैं भय कौनसा उपाय करूँ ? इस बातका क्या जयाय दूँ, यह न सुख पड़नेके कारण यह सेठ चुपची साधे रहा । इतनेमें मित्रामन्दने फिर कहा,—“सेठजी ! यदि मैं उस कारीगरका पता पा जाऊँ, जिसने यह पुतली गढ़ी है तो मैं अपने मित्रकी इच्छा पूरी कर दूँ ।” यह सुन, सेठने कहा,—“कोकण देशमें सोपारक नामक नगर है । वहींके शूर नामक कारीगरने यह पुतली गढ़ी है । यह प्रामाद और इसकी सारी चीजें मेरी बतयायी हुई हैं । इसीलिये मैं यह बात जानता हूँ ।” यह कह उसने फिर कहा,—“यह हाल सुन कर, जो तुमने अपने मनमें विचार हो सो मुझे कहो ।” तब मित्रामन्दने कहा,—“सेठजी ! अगर आप मेरे मित्रकी रखवालीका

भार ले लें, तो मैं सोपारक जाकर उस कारीगरसे पूछूँ, कि उसने यह मूर्ति अपनी बुद्धिसे बनायी है अथवा किसीके रूपको देखकर उसीके अनुरूप गढ़ डाली है ? यह बात मालूम होनेपर यदि उसने किसीको देखकर यह मूर्ति गढ़ी होगी, तो मैं उसका पता लगाकर अपने मित्रकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूँगा ।” यह सुन, सेठने अमरदत्तकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया । तब अमरदत्तने कहा,— “मित्र ! मैं जिस समय यह बात जान जाऊँगा, कि तुम कष्टमें पड़े हो, उसी समय प्राण दे दूँगा ।” मित्रानन्दने कहा,— “मित्र यदि मैं दो महीने तक न आऊँ, तो समझ लेना, कि मेरी मृत्यु हो गयी ।”

इस प्रकार बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे उसे समझा-धुभाकर, अमरदत्तको सेठके हाथोंमें सौंप, दिन-रात चलता हुआ मित्रानन्द क्रमसे सोपारकपुर पहुँच गया । वहाँ अपनी अंगूठो घेचकर उसने योग्यताके अनुरूप घस्त्रादि लेकर धारण किये और हाथमें ताम्बूलादिक लिये हुए उस कारीगरके घर गया । कारीगरने उसे धनधान समझकर उसकी बड़ी आचमगत की । इसके बाद उसे उत्तम आसन पर बैठा कर उससे आनेका कारण पूछा । तब मित्रानन्दने कहा,— “भाई ! मुझे तुमसे एक महल बनवाना है । यदि तुम्हारे पास तुम्हारी कारीगरीका कोई नमूना हो, अथवा तुमने कहीं प्रासाद बनाया हो, तो मुझे दिखलाओ ।” इसपर सूत्रधारने कहा,— “सेठजी ! पाटलिपुत्र-नगरके बाहरवाले उद्यानमें जो प्रासाद है, वह मेरा ही तैयार किया हुआ है । आपने उसे देखा है या नहीं ? ” मित्रानन्दने कहा,— “हाँ उसे तो मैंने हालहीमें देखा है : परन्तु उस प्रासादमें जो एक जगह एक पुतली है, वह तुमने किसीका रूप देखकर गढ़ी है, या योंही अपनी कला-कुशलता का चमत्कार दिखलाया है ।” कारीगरने कहा,— “अवन्ती नगरीके राजा महासेनकी पुत्री रत्नमञ्जरीका रूप देख करही मैंने वह पुतली गढ़ी है ।” यह सुन, मित्रानन्दने कारीगरसे कहा,— “बहुत अच्छा । अब मैं चलता हूँ और एक अच्छा दिन देखकर तुम्हें महलके काममें

हाथ लगानेके लिये बुलवाऊंगा ।" यह कह, वह बाजारमें चला गया ।
 यहाँ उसने अपने लिये जो अच्छे-बुरे यस्त्र खरीदे थे, उन्हें बेच डाला
 और सफ़रकी तैयारी कर, निरन्तर चलता हुआ, क्रमसे एक दिन
 सन्ध्याके समय उज्जयिनी (भवन्ती) नगरीमें आ पहुँचा ।

उज्जयिनीके नगर-द्वारपर घने हुए नगरदेवीके मन्दिरमें आकर मित्रा-
 नन्द बैठाही था, कि उसने नगरमें इस प्रकार ऊपोंड़ी पिटती हुई सुनी,—
 " जो कोई आज रातके चारों पहरोमें इस शयकी रखवाली करेगा, उसे
 ईश्वर सेठ हज़ार मुहरें देंगे ।" यह सुन, मित्रानन्दने पासके ही एक
 प्रतिहारसे पूछा,—“ भाई ! इस रातभरकी रखवालीके लिये यह सेठ
 इतना धन क्यों दे रहा है ? इसका कारण क्या है ?” यह सुन, दार-
 पालने कहा,—“ भाई ! इस समय इस नगरीमें महामारी फैली हुई है ।
 सेठके घरका कोई आदमी महामारीसे ही मर गया है । लाश उठते-न-
 उठते सूर्यास्त होगया और सब नगरद्वार बन्द हो गये । अब रातभर इस
 लाशगर पहरा देनेको कोई तैयार ही नहीं होता, क्योंकि यह महामारीसे
 मरा है । इसीलिये सेठ इसकी रखवालीके लिये इतना धन दे रहा
 है ।” यह सुन, मित्रानन्दने अपने मनमें विचार किया,—“ बिना धनके
 मनुष्यको किसी काममें सिद्धि नहीं मिलती, इसलिये मैं दिल् कड़ा
 करके यह धन दियेगा हूँ, तो ठीक है ।” ऐसा विचार कर, मित्रा-
 नन्दने साहस धारण किया और धनके लोभसे उस लाशकी रात भर
 रखवाली करना स्वीकार कर लिया । ईश्वर सेठने उसे आधा धन देकर
 मुहँको उसके हवाले किया और आधा सपेरे देनेको कह कर अपने घर
 चला गया ।

मित्रानन्द उस लाशको लेकर रातके समय बड़ी सावधानीके साथ
 उसकी रखवाली करने लगा । मध्यरात्रिके समय शाकिनी, भूत, वेताल
 आदि प्रकट होकर तरह-तरहके उपद्रव करने लगे, परन्तु उसने धीरता-
 के साथ सब कुछ सहन करने हुए रात बिना ही और शयकी मली मौजि
 रहा की । इसके बाद सब भयेरा हुआ, जब उस मृतकके मजनोंने

बाकर उसे झतानमें ले जाकर उसका अग्निसंस्कार किया । मित्रानन्दने बाकीका धन माँगा, तो ईश्वर सेठ साफ़ मना कर गया । तब मित्रानन्दने कहा,—“बच्छी बात है, यदि यहाँके राजा नइतेन न्यायी होंगे, तो मुझे मेरा धन अवश्य ही मिल जायेगा ।” यह कह, वह बाज़ारमें चला गया । वहाँ उसने सीं मुहरें खर्च कर उत्तमोत्तम वस्त्र खरीदे और बढ़िया बेस बनाये हुए वस्त्रतिलका नामकी बेस्याके घर पहुँचा । उसे देखतेही वह ठठ खड़ी हुई और उसका आदर-सत्कार करने लगी । उसी समय मित्रानन्दने उसे चार सीं मुहरें दे डालीं । उसकी ऐसी बड़ी-बड़ी उदारता देख, वस्त्रतिलकाकी माँ बड़ीही हर्षित हुई और बरनी देतीले जाकर बोली,—“देखना, वृ इस पुरपकी नलीं माँने करने घरने करना । क्योंकि उसने एक मुन्न इतना धन दे डाला है अधिक क्या कहूँ ? यह तो बलवृद्धी मन्त्र पड़ता है ।” यह कह, उसने स्वयंही मित्रानन्दकी महत्प्रशंसा-धुलवाई । इसके बाद सायंवालेके समय उत्तमोत्तम शृङ्गारमें सजी हुई, रूप-रत्नोंके कारण देवाङ्गनके समान बनी हुई, विरद-मोहनामे मतबली बनी हुई वस्त्रतिलका मित्रानन्दके पास बहूँ बेस्याके ऊपर चली आयी और हाव-भाव दिखानेकी हुई मधुर बचन बोलने लगी । उस समय मित्रानन्दने करने मनमें विचार किया,—“विरद-मोहके लोभमें पड़े हुए प्राणिमोको बाल्य-मिथि नहीं होना, इसलिये मुझे इस लालचमें नहीं पड़ना चाहिये ।” यही सोच कर उसने उस बेस्यासे कहा,—“सुन्दरी ! तुझे थोड़ी देर ध्यान करना है, इस दिने एक चीकी ले जाओ ।” वह लज्जन एक मोनेकी चीकी ले आयी, तबत मित्रानन्द पलतन मरे घरने करता सारा शरीर ढाके, ढोग बनये बैठ रहा । इसी तरह एकदम बार खींच गया । पर देखा, पलतने उसने विरद-मोहकी मर्दंग की, पलतु दर कुछ भी नहीं बोला, पीतोंकी मर मीन साधे ध्यानमग्न हो, बैठ रहा । इसी प्रकार उसने ध्यानमें ही कपड़े सज दिका दी । अन्तर्धान होनेकी पर उठकर ईश्वरिणी दिने गया । देखते सजकी पर मनी कपड़ कपड़

अम्मासे जाकर कह सुनायी । सुन कर, यह बोली,—“यह जैसा करे, वैसा करने दे और युक्तिपूर्वक उसकी सेवा बजा ।” वैश्याने वैसा ही किया । दूसरी रात भी मित्रानन्दने इसी तरह रिया की । यह सुन कर उस कुट्टिनीने क्रोधके साथ उसकी दिहागी उड़ाते हुए कहा,—“वाह साहब ! मेरी यह लड़की राजकुमारोंके भी हाथ आनी मुश्किल है और तुम इस प्रकार इसकी उपेक्षा कर रहे हो, इसका क्या कारण है ?” यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—“माता ! समय आनेपर मैं सब कुछ ठीक ठिकानेके साथ कर दूँगा ; पर पहले यह तो बतलाओ, तुम्हारा राजमहलमें जाना-आना होता है या नहीं ?” यह बोली,—“मेरी यह पुत्री राजाके यहाँ घंघर झुलानेपर नौकर है, इसीसे मैं भी जय चाहूँ, तभी—रात को या दिन सब समय—राजमहलमें आ-जा सकती हूँ । मेरे जाने-आनेमें कोई रोक धाम नहीं होनेको ।” यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—“हे माता ! तब तो तुम राजकुमारी रक्षमञ्जरीको अवश्यही पहचानती होगी ?” यह बोली,—“यह तो मेरी पुत्रीकी सखा ही है ।” मित्रानन्दने कहा,—“तब तो बुझा ! तुम राजकुमारीसे जाकर यह कहो, कि हे मुन्दरी ! लोगों के मुँहमें जिन अमरदत्तके गुणोंका बखान सुनकर तुमने जितपर प्रीति करनी आरम्भ की और जिसे पत्र लिख भेजा था, उसी अमरदत्तका मित्र यहाँ आया हुआ है ।” वैश्याकी मति यह बात स्वीकार कर ली और उसका सन्देशा लिये हुई राजकुमारीके पास आयी । राजकुमारीने कहा,—“बुझा ! आओ, कोई नयी बात सुनाओ ।” उसने कहा,—“हे राजकुमारी ! आज मैं तुम्हारे पास तुम्हारे प्यारेका सन्देशा लेकर आयी हूँ ।” यह सुन, माध्यमेमें पढ़कर राजकुमारीने कहा,—“मेरा प्यारा कौन है ?” इसके उत्तरमें उस बुद्धियाने मित्रानन्दका कही हुई सब बातें कह सुनायी । सुनकर राजकुमारीने अपने मनमें विचार किया,—“आज तक तो हम कप-रंगका कोई पुरुष मेरा बल्लभ नहीं हुआ, न मैंने किसीको कभी पत्र लिखा । मुझे अमरदत्तका नामनक नहीं मालूम । यह सब किसी घुसंकी बालबाओ मालूम पड़ती है । तो भी यदि जो कुछ

हो, जिस मनुष्यने यह फन्द-फरेब रचा है, उसे माँझों देख लेना ज़रूरी है।" ऐसा विचार कर, उसने उस युद्धियासे कहा,—“बच्छा, जो मादमो मेरे प्यारेका नंदेसा ले आया है, उसे आज खिड़कीकी राह मेरे पास ले आओ।” यह सुन, युद्धिया बड़ी प्रसन्न हुई और मित्रानन्दसे आकर सब हाल कह सुनाया। इससे मित्रानन्दको भी बड़ा आनन्द हुआ।

रातके समय युद्धिया मित्रानन्दको राजमहलके पास ले जाकर बोली,—“भद्र ! यह सात किलोंसे घिरा हुआ राजमहल है। इसीके मन्दिर राजकुमारीका कमरा है। यदि तुममें ऐसी शक्ति हो, तो इसके भीतर चले जाओ।” यह सुन, मित्रानन्दने उस युद्धियाको चले जानेकी आज्ञा दे दी और आप मन्दिरको तरह उछल कर सातों किले तड़प कर राजमहलके भीतर प्रवेश किया। उसको इस प्रकार सात किले लाँघकर जाते देख, उस कुट्टिनीने अपने मनमें विचार किया,—“यह तो कोई बड़ा ही वीर पुरुष मालूम पड़ता है। इसके पराक्रमका तो कोई पार-घार ही नहीं है।” ऐसा ही विचार करती हुई वह अपने घर चली आयी। इधर ज्योंही मित्रानन्द राजमहलमें राजकुमारीके महलपर चढ़ा, त्योंही उसकी यह अनुपम धोरता देख, आश्चर्यमें पड़ो हुई राजकुमारी नौदका बहाना किये पड़ रही। उस वीर पुरुषने उसे सोयी हुई देख, उसके हाथसे राजाके नामके चिह्नसे अङ्कित कड़ा निकाल लिया और उसकी दाहिनी जाँघमें छुरीसे त्रिशूलका निशान बनाकर झटपट राजमहलसे निकलकर, एक देवमन्दिरमें जा, सो रहा। उसके चले जानेपर राजकुमारीने सोचा,—“यह विचित्र चरित्र देखकर तो यह कोई सामान्य मनुष्य नहीं मालूम पड़ता। यह मैंने बड़ी भारी मूर्खता की, जो उससे थोला तक नहीं।” इसी तरहके विचारमें डूबी हुई राजकुमारी रातके पिछले पहर निद्राकी गोदमें पड़ गयी।

प्रातःकाल होतेही वह वीर पुरुष (मित्रानन्द) राजमन्दिरके द्वारपर जाकर ज़ोर ज़ोरसे पुकार कर कहने लगा,—“अरे बाधा ! मेरे ऊपर बड़ा भारी अन्याय हो गया—बहुत बड़ा अन्याय !” राजाने जब यह

यात सुनी, तब एक द्वारपालके द्वारा उसे समामें बुलवा मँगवाया । राजसभामें भातेही मिश्रानन्दने राजाको प्रणाम कर फ़र्याद की,—“हे स्वामिन् ! आप जैसा प्रचण्ड प्रतापशाली राजा होने हुए भी—ईश्वर सेठने मुझ परदेशीको धोखा दे दिया ।” राजाने पूछा,—“उसने तुम्हारे साथ कौनसा धोखा किया ?” यह सुन मिश्रानन्दने कहा,—“उसने मुझे सारी रात एक मुर्देकी रखवालीके लिये भाड़ेपर रखा ; पर यह भाड़ेकी आधी रक़म देकरही रह गया । आधी देनेका नामही नहीं लेता ।” यह सुन, राजाने क्रोधित होकर अपने सिपाहियोंको हुक्म दिया,—“तुमलोग अभी जाकर उस दुष्ट बनियेको पाँच लाखो ।” राजाके इस हुक्मकी यात सुनकर ईश्वर सेठ स्वयंही रुपया लिये हुए राजसभामें आया और उसने उस परदेशीको पाँचसी सुनहरी मुँहरे गिनकर दे दी । इसके बाद सेठने राजासे कहा,—“हे महाराज ! उस समय शोकातुर होनेके कारण मैं इस परदेशीको प्रतिज्ञानुसार धन नहीं दे सका । इसके बाद तीन दिन लोकाचारमें ही बीत गये, इसी लिये रुपये भूना करनेमें और भी देर हो गयी ।” यह कह राजाको प्रसन्न कर, वह घर चला गया । तब राजाने मिश्रानन्दसे शयकी रखवालीका हाल सुनानेके लिये कहा, जिसके उत्तरमें उसने कहा,—“हे राजन् ! यदि सबमुख आपको यह बात जाननेका कौतूहल हो, तो सायधान होकर सुनिये । धनके लोभसे शयकी रखवाली करना स्वीकार कर, मैं हाथमें छूरी लिये, रातभर उसी मुर्देके पास बिना सोये ही बैठा रहा । रातके पहले पहरमें बड़े मयदूर नियारोंकी बोली सुनाई दी और तत्काल ही मेरे चानों धोर पीले रोंगटेवाले नियार जमा हो गये ; पर हमने मुझे ज़रा भी मय नहीं मालूम हुआ । इसके बाद दूसरे पहरमें काले-काले और अनिराय मयदूर राक्षस प्रकट होकर ‘बिल-बिल’ शब्द करने लगे । पर ये भी मेरे सत्यके प्रमाणसे नष्ट हो गये । तीसरे पहरमें “मेरे दाम ! तू कहाँ जायेगा ?” यह पूछनी और हाथमें शस्त्र लिये हुई शाकिनियाँ दिखलाई पड़ीं । ये भी मेरे धर्मके भागे नष्ट

होगयीं। इससे बाद, मेरे राजन्! रातके चौथे पहरमें, दिव्य यस्त्र धारण
 बिन्दे, विविध माधुर्यपूर्णसे सुरोमित, देवाङ्गनाके समान रूपवती, मुक्त-
 केशी, मण्डूर मुखवाली, हाथमें बत्रिका (कत्ता) लिये मय उत्पन्न
 करती हुई एक स्त्री मेरे पास आकर बोली,—“ठहर जा, रे दुष्ट! मैं ममी
 तुझे जहन्नम भेजे देती हूँ।” उसे देखकर मैंने अपने मनमें विचार
 किया,—“हो न हो, यही महामारी है।” महाराजा! यह विचार मन-
 में आते ही मैंने पायें हाथसे उसे पकड़ा और दाहिने हाथसे घुरी मारने-
 के लिये उठायी। इतनेमें यह मेरे हाथको मरोड़ कर भागने लगी। यस
 मैंने उसे भागते-न-भागते उसकी दाहिनी जाँघमें घुरीसे इत्तन कर दिया
 और इसी क्षेपातानीमें उसके हाथका कड़ा मेरे हाथमें चला आया। इसी
 समय सूर्योदय हो आया। उसको ऐसा आश्चर्य-भरी कहानी सुनकर
 राजाने कहा,—“हे घोर पुरष! तुमने उस महामारीके हाथसे जो
 कड़ लिया, वह मुझे दिखलाओ।” यह सुनतेही उसने घटपट अपने दुपट्टे-
 के छोरमें बंधा हुआ वह कड़ निकाल कर राजाके हाथमें दे दिया।
 उस कड़े पर अपना नाम देध, राजाने सोचा,—“प्रे! तो क्या मेरी
 पुत्री ही महामारी है? यह गढ़ना तो उसीका है।” ऐसा विचार मनमें
 आतेही राजा शीचादिकके बहाने उठे और कन्याके महलोंमें चले
 आये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा, कि उनकी कन्या सोयी हुई है।
 उसका दाहिना हाथ खाली है,—उसमें कड़ा नहीं है। साथही
 उन्होंने उसकी जाँघमें इत्तन पड़ी बंधी हुई भी देखी। यह सब देख-
 कर राजाको तो ऐसा दुःख हुआ, मानों उनके तिरपर बिजली गिर
 पड़ी हो। उन्होंने सोचा,—“बहा! मेरे इस निर्मल कुलको इस
 दुष्ट कन्याने कलङ्कित कर दिया! चाहे जैसे हो इसका निग्रह करना
 अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो यह सारे नगरके लोगोंको मार डालेगी।”
 ऐसा विचार कर वे फिर समाने लौट आये और निश्चिन्तसे बोले,—
 “माई! यह तो बतलाओ, तुमने जो उस मुर्देकी रखवाली की, वह
 केवल साइतके ऊपर मरोसा करके की, अथवा तुम कोई मन्त्र भी

जानने हो ! उसने उत्तर दिया,— “हे महाराज ! बाप वार्त्ताके सम्पर्क ही मेरे घरमें सन्त्र-मन्त्र होना क्या आया है । मैं मन्त्र भी जानता हूँ ।” यह सुन, राजाने समासे सब लोगोको हठाकर एकान्तमें मित्रानन्दने पूछा,— “मार्ग ! तुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि मेरी ही पुत्री महामारीका अवनतार है । इसमें कोई संशय नहीं । इसलिये तुम अपनी मन्त्र-शक्तिसे उसे दण्ड दो ।” मित्रानन्दने कहा,— “महाराज ! यह बात तो मनहोनी मामूम पड़ती है । आपके कुलमें उत्पन्न क्या, मला महामारी कैसे होगी ?” राजाने कहा,— “मार्ग इसमें मनहोनी कुछ भी नहीं है । क्या मेघसे पेदा हुई बिजली प्राणोंका नाश नहीं कर देती ?” मित्रानन्दने फिर कहा,— “भयछा, महाराज ! आप कृपाकर मुझे अपनी कन्याको दिखसाइये, जिसमें मैं देखकर इसबातकी जाँच कर लूँ, कि यह मेरे द्वारा साध्य है या नहीं ?” राजाने कहा,— “जामो तुम वहीं जाकर देख आओ ।” तदनन्तर राजाके कुचमके मुतापिक वह राजकुमारीके महलमें गया, उस समय राजकुमारीकी नींद टूट गयी थी और वह अजी हुई थी । उसे आते देख, राजकुमारीने सोचा,— “यह तो यही मनुष्य मालूम पड़ता है, जिसने मेरा कड़ा छोन लिया था और छूरीसे मेरी अंघामें घाघ कर दिया था । परन्तु यह बेधड़क यहाँ खला आ रहा है, इससे तो मालूम पड़ता है, कि इसे राजाकी आज्ञा प्राप्त हो चुकी है ।” ऐसा विचार कर उसने उसको बैठनेके लिये आसन दिया । आसन पर बैठकर उसने कहा,— “राजकुमारी ! मैंने तुम्हारे ऊपर महामारी होनेका बड़ा भारी कलङ्क लगा दिया है, जिससे आज ही राजा तुमको मेरे हवाले करने वाले हैं । इसलिये यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँ, और अपने मित्र अमरदत्तसे मिला दूँ । यदि तुम्हें यह बात नहीं पसन्द हो, तो कहो, मैं इतना ही जानेपर भी तुम्हारे ऊपरसे कलङ्क दूर कर यहाँसे खला जाऊँ ।” यह सुन, उसके गुणोंसे प्रसन्न बनी हुई राज-कन्याने सोचा,— “भहा ! यह मनुष्य मेरे ऊपर कितना प्रेम रखता

है ? इसलिये मुझे तो कुछ दुःख उठाकर भी इसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये । राज्यका लाभ तो सुलभ है ; परन्तु ऐसा स्नेही मनुष्य मिलना बड़ा ही दुर्लभ है ।” ऐसा विचार कर उसने कहा,—
“हे भाग्यवान् ! मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हैं । मैं तुम्हारे साथ चलने-
को तैयार हूँ । क्या तुमने नहीं सुना है, कि,—

“अंधो नरिदक्षितं, वरसायां पानियं च नहिना य ।

ततो गच्छन्ति कुटं, जतो भुज्जं हि निमन्ति ।”

अर्थात्—“अन्धा मनुष्य, राजाका मन, वरसातका पानी
और सौ इन्हें जिधर धूर्त लोग ले जाते हैं, उधर ही वे चले जाते हैं ।

यह सुन, अपना मनोरथ सफल हुआ समझकर मिश्रानन्दने राज-
कुमारीसे कहा,— “हे सुन्दरी ! जब मैं तुम्हारे सिरपर सरसोंके दाने
छाँड़ूँ, तब तुम उनको फूँक मारना ।” राजकुमारीने यह बात स्वीकार
कर ली । इसके बाद उसने राजाके पास आकर कहा,— “राजन !
मैं इस महामारीको वशमें ला सकता हूँ ; पर आप एक तेज चालका
घोड़ा मँगवाकर तैयार रखिये, जिसमें मैं उसी पर चढ़ाकर रातोंरात
आपके देशसे बाहर ले जा सकूँ । अगर कहीं राहमें सूर्योदय हो गया,
तो घबह रही रह जायगी । यह सुन, डरे हुए राजाने एक हवाकी सी
तेज चाल वाला मनोमिष्ट नामक अच्छी नसलका घोड़ा तैयार करवाकर
उसके सुपुर्द किया । इसके बाद सन्ध्याके समय राजाके सेवक राज-
कुमारीको राजाके हुक्मसे बाल पकड़ कर ले आये और मिश्रानन्दके
हवाले कर दिया । उस समय उसने ज्योंही उसके ऊपर सरसोंके
दाने छोड़े, त्योंही वह फुफकार सी छोड़ने लगी । इस पर मिश्रानन्दने
उसे बड़े जोरसे ललकारा, जिससे वह शांत हो गयी । इसके बाद
उसने राजकुमारीको घोड़े पर घेठा, आगे रवाना कर दिया और
आप उसके पीछे-पीछे चला । राजा दरवाजे तक उसे पहुँचा कर महलों-
में लौट आये ।

इसके बाद मार्गमें जाते-जाते राजकुमारने मिश्रानन्दसे कहा,—

“हे सुन्दर ! तुम भी आकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ। ऐसी अच्छी सवारी रहते हुए भी तुम पाँच प्यादे क्यों चलते हो ?” यह सुन, मित्रानन्दने कहा,— “जयतक मैं इस राज्यकी सीमासे बाहर नहीं हो जाता, तबतक मैं पैदलही चलूँगा।” उसके ऐसा कहने पर कुछ देर ठहर कर राजकुमारीने फिर कहा,— “हे भद्र ! अब हमलोग अपने देशकी सीमासे बाहर हो गये, अब तुम भी आकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ।” मित्रानन्दने कहा,— “सुन्दरी ! मेरे नहीं बैठनेके कई कारण हैं।” उसने पूछा,— “कौनसा कारण है ?” यह बोला,— “सुन्दरी ! मैं तुम्हें अपने लिये नहीं ले जा रहा हूँ ; बल्कि अपने मित्र अमरदत्तके लिये।” ऐसा कह उसने अपने मित्रकी सारी कथा उसे सुनाते हुए फिरसे कहा,— “हे भद्र ! इसीलिये मेरा तुम्हारे साथ एक आसन या शय्या पर बैठना उचित नहीं है।” मित्रानन्दकी ये बातें सुन, विस्मय होकर राजकुमारीने अपने मनमें विचार किया,— “बोह ! इस मनुष्यका चरित्र तो बड़ा ही अलौकिक है। मला जिसके लिये लोग अपने धात, मा, भाई और मित्रके साथ घोषाधड़ी किये बिना नहीं रहने, ऐसी सुन्दर रूपवाली स्त्री पाकर भी यह अपने मनमें उसकी अभिलाषा नहीं करना, यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। यह अवश्य ही कोई महात्मा है। अपने कार्यकी निश्चिके लिये तो सब लोग दुःख उठानेको तैयार रहते हैं, पर दूसरेके लिये दुःख उठाना किसी बिरले ही पुरुषका काम है।” ऐसा विचार करती हुई राजकुमारी उसके गुणोंपर लटू हो गयी। अन्ततः वे दोनों पाटलिपुत्र नगरके पाम भा पहुँचे।

इधर दो महोनेकी अग्रधि बोल जाने पर भी जब मित्रानन्द नहीं आया, तब अमरदत्तने रत्नमार सेठमें कहा,— “हे नात ! मेरा मित्र तो आज्ञाक नहीं आया, हमलिये आप क्याकर मेरे लिये अकड़ियोंकी एक बिना तैयार कराइये, त्रिमये दुःखसे जलता हुआ मैं प्रवेश कर जाऊँ।” यह सुन, सेठकी बड़ा दुःख हुआ, परन्तु लाचार उनका बड़ा आग्रहदेख, उसने कष्टोंसे कुछ अंगोकि माला नगरके बाहर जाकर एक बिना तैयार

कलश लेकर हाथीने आपही भाप भाकर उसके मस्तक पर राज्याभिषेक किया और उसे खूँड़से उठाकर अपनी पीठपर बैठा लिया । इसके बाद बहुतसे मनुष्योंसे घिरा हुआ, पाँच प्रकारके धातोंके शब्दसे मन-ही-मन परम भगनन्द अनुभव करता हुआ अमरवत् नगरमें आया । उस समय पुर-भारियाँ उसे देखनेके लिये घिर आयीं और दम्पतिकी सुन्दरता देख आपसमें कहने लगीं,—“अहा ! इस राजाका रूप कैसा अपूर्व है !” दूसरी ली बोली,—“इस सुन्दरीका सा रूप तो शायद देवलोकमें भी नहीं होता होगा !” तीसरी बोली,—“यह लो बड़ी ही भाग्यवती है ; क्योंकि इसने ऐसा गुण और रूपसे सुशोभित स्वामी पाया है ।” चौथी बोली,—“यह पुरुष बड़ाही पुण्यात्मा है, जो इसने परदेशमें भाकर भी देवाङ्गनाकी सी अनुपम स्त्रीप्राप्त की ।” और कोई दूसरी ली बोली,—“इसके मित्रकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है ; क्योंकि उसने जी-तोड़ परिश्रम करके अपने मित्रके लिये ऐसी सुन्दरी और मृग-लोचनी ली दूँद निकाली ।” फिर दूसरी बोली,—“यह सेठ भी कम बड़ाईके योग्य नहीं है ; क्योंकि इस भाग्यवान्ने कुल और शील जाने बिना ही इसे अपने पुत्रकी तरह रखा ।” इसी प्रकारकी पुर-लियोंकी बातें सुनता हुआ अमरवत् राजमहलके द्वार पर आया और हाथीसे नीचे उतर, राज-मण्डलसे सेविन होकर राजसभामें जा, सिंहासन पर बैठ रहा । रानी रत्नमञ्जरी और मित्र मित्रानन्द उसके सामनेही बैठे । और-और लोग भी अपने अपने योग्य स्थानोंपर बैठ गये । इसके बाद मन्त्री और सामन्तोंने मिल जुलकर उसका राज्याभिषेक करके प्रणाम किया । राजा होने पर उसने रत्नमञ्जरीको पटरानी बनाया, बुद्धिमान् मित्रानन्दको सारे राज्यकी मुद्राओंका अधिकारी बनाया और सेठ रत्नसारको पिताकी जगह पर माना । इस प्रकार उचित व्यवस्था कर वृत्त्योंमें शिरोमणि अमरवत् राजा न्याय-पूर्यक अपने भलएिहित राज्यकापालन करने लगा ।

मित्रानन्द राजकाजमें फँसे रहने पर भी अपनी मृत्युकी सूचना देने-वाली उस लाशकी बातका नहीं भूलता था । इसीसे वह मन-ही-मन

सुख-सैन नहीं बना था । एक दिन हमने राजा मन्नाइलसे निवे-
दन किया,—“ हे राजा ! हम मन्नाइल पर बात, जो हमने मेरी मृत्युके
विषयमें कही थी, मुझे कहीं नहीं मूल्य । उम्मीदे निचे तो मेरी मन्ना
मेरा छोटा रमा है ।” यह सुन, राजा ने कहा,—“ हे मित्र ! तुम बेद न
बनो; यह सब भूलनीका बात थी ।” निरालन्दने कहा,—“ निरालन्दके
बापरा यहां रहनेवा भी मेरा मन दुःखित होकर रहता है, इसलिये मुझे
हुआ दूर भेज दो ।” यह सुन, राजा ने कुछ दिवार करनेके बाद कहा,—
“ हे मित्र ! यदि तुम्हारा पैसी हो गया है तो तुम कुछ विद्यालयों में
के साथ चलनपुर चले जाओ ।” इसके बाद निरालन्द ठेका होकर
चलनपुरकी ओर चला । राजा ने अपने भादमियोंकी भी उसीके साथ
रवाना कर दिया । साथ ही उन्हें उनके समय पर भी कहा, कि भुक्तने
कोई एक भादमी चलनपुर पहुंचनेके बाद वहां रहकर निरालन्दका
ध्यान-समाचार मुझे सूना जाय ।” उन भादमियोंने “ बहुत अच्छा ”
कहाकर राजाकी आज्ञा स्वीकार कर ली ।

एक राजा बनारस निवासे विद्यार्थी विहित होते हुए भी पुस्तके
प्रभावसे प्राप्त राजलक्ष्मीकी राखेंके साथ भोगते रहे । बहुत दिन बाद
उनेर भी राजाके नेंद्रे हुए भादमियोंने से कोई लौटकर नहीं बना
इसलिये राजा ने कुछ अन्य नुस्खोंकी उपरकी ओर भेजा । कुछ दिन
बाद वे लौट भादमों की ओर राजासे बोले,—“ हे स्वामिन् ! हम लोग चलन-
पुर तक जाकर लौट भादमों; पर वही निरालन्द नहीं नज़र भादमों, न उन-
का कुछ समाचार वही सुननेमें आया ।” यह सुन, राजा ने अपने पास
आहुत होकर अपनी राखेंके कहा,—“ मित्रे ! क्या मैं क्या करूं ? निर-
का तो कुछ पताही नहीं लाया ।” राजा बोले,—“ हे स्वामी ! यदि
कोई जानें पुरा वहां का भादमों, तो संभव है कि वे भी वहां उतर
इस संभवके दूर होनेका नहीं मालूम पड़ता ।” वे दोनों इस तरहकी
बातें करते रहे थे, कि अकस्मात् दगाके मालिकों काबर कहा,—“ हे
राजन् ! यह प्रकारके जानकी धारण करनेवाले धोषधोष नामक सुरि

श्रीमान्के नगरसे बाहरवाले उद्यानमें, जिसका नाम भशोकतिलक है, पधारे हैं और लोगोंको धर्मका उपदेश कर रहे हैं ।” यह सुनतेही राजा-ने उस मालीको पाँचों अंगोंके आभूषण इनाममें दिये । वे तिनकी राह देख रहे थे, उन्हीं गुदके आगमनकी बात सुन उनके चिसमें बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई । इसके बाद वे बहुतसी सामग्रियाँ साथ लिये, पटरानी समेत गुदकी धन्दना करने गये । यहाँ पहुँच राजाने लङ्का, छत्र, भाद्रि राग्यके चिह्नोंको दूर फेंक, गुदकी तीन बार प्रदक्षिणा और उत्तरासङ्ग कर, विधि-पूर्णक उनकी धन्दना की । इसके बाद वे परिवार सहित उचित स्थान पर बैठे । गुद महाराजने कहा,—“हे राजन् शुचि-मान् मनुष्योंको बाहिये, कि सब दुःखोंका नाश करनेवाले और सब सुखोंके देनेवाले धर्मकी सेवा करें ।”

इसी समय भशोकदत्त नामक एक बड़े भारी सेठने गुदसे पूछा,—
“ हे पूजनीय ! मेरे भशोकश्री नामकी एक पुत्री है । यह न मालूम किन कर्मके दोषसे शरीरसे बहुत ही दुःखी होरही है ? कृपाकर बतलाइये, कि बड़े-बड़े उपचार करनेपर भी उसका रोग तनिक भी कम क्यों नहीं होता ?” सूरिने कहा,—“ सेठजी ! तुम्हारी यह पुत्री पूर्व भयमें मृत-शाल नामक नगरके मृतदेव नामक सेठकी कुसुमयनी नामक स्त्री थी । एक दिन वनके घरमें ब्या हुआ दूध बिही गी गयी । यह देख, कुसुमयनीने ओषधमें आकर अपनी देयमनी नामक पुत्रयधूमे कहा,—“भरी, क्या तेरे मिर डाकिनी बनार हो गयी है, ओ नू इस प्रकार दूधमे देखवर हो रही ?” यह सुन, वह बेवारी बालिका डर गयी और घर-घर काँपने लगी । यह हाल देख, उन्ही समय उन्हींके घरके पास खड़ी एक घंडाल-की स्त्रीने, ओ डाकिनीका मन्त्र ज्ञानती थी, बहाना पाकर उस बट्टेके छतरेमें डाकिनी प्रविष्ट करदी, जिसमे वह बड़ा दुःख पाने लगी । बहुत तेरे देखने उसकी विचित्रता की, पर वह किसीमें भयली नहीं हुई । एक दिन वह बीगी यहाँ आ पहुँचा । उमने मंत्रके बलमें भाँपने लगा कि वह मन्त्र मन्त्र । वह मन्त्रकाजरी देदनेके मारे मरगयी हुई यह मन्त्र

लिनी घाल खोले वहाँ आ पहुँची । योगीने पूछा,—“तूने इस बेचारी यहूके शरीरमें क्यों डाकिनी प्रविष्ट कर दी ?” वह बोली,—“इसकी सासने पेसीही बात इसे कही थी, जिसे सुनकर यह बेचारी डरके मारे घर-धर काँपने लगी थी । वस यही मीका देखकर मैंने इसके शरीरमें डाकिनी प्रविष्ट कर दी ।” यह सुनकर, योगीने अपने मन्त्रके बलसे उस डाकिनीको यहूके शरीरसे बाहर निकाल डाला । यह समाचार पाकर उस नगरके राजाने उस चण्डालकी स्त्रीको देश-निकाला दे दिया और लोग कुसुमावतीकी सासको काठ-जिहा कहने लगे । इस तरह बुरा नाम धराकर वह बेचारी संसारसे विरक्त हो गयी और एक साध्वीसे दीक्षा ग्रहण कर, शुभ-भाव-युक्त हो, चारित्र्य पालन करती हुई मरकर स्वर्ग चली गयी । वहींसे च्युत होकर वह तुम्हारी पुत्री हुई है । उसने पूर्व भवमें जो दुष्ट वचन कहा था, उसको उसने गुरुसे नहीं बिचरवाया, इसीसे वह इस समय आकाशदेवीके दोषसे दूषित हो रही है । इसलिये सेठजी ! तुम अपनी पुत्रीको यहाँ ले आओ । मेरा वचन सुनकर उसे जातिस्मरण उत्पन्न होगा, जिससे उसे पूर्व भवकी यातें स्पष्ट दिखायी देने लगेंगी और वह तत्काल दोषसे मुक्त हो जायेगी । सूरिके ऐसे वचन सुन, सेठ तुरत ही अपनी पुत्रीको गुरुके पास ले आया । उसी समय गुरुके प्रभावसे आकाशदेवी जाती रह्यी, अपना चरित्र सुनकर उसे जातिस्मरण हो आया और पूर्व भवकी यातें मालूम कर बोली,—“हे प्रभु ! आपने जो कुछ कहा, वह ठीक है । अब मुझे इस संसारमें रहनेको जी नहीं चाहता, इसलिये मुझे दीक्षा दे दीजिये ।” इसपर गुरुने कहा,—“हे सुन्दरी ! अभी तूने अपने कर्मों-के फल भोगने याकी है, इसलिये तून उन्हें भोग लेनेके बाद चारित्र्य ग्रहण करना ।”

यह सुनकर उस सेठने गुरुकी चन्दना कर, कुछ धर्मकी यातें करना बड़ीकार कर, पुत्रीके साथ घरकी राह ली ।

यह सब हाल सुनकर राजाने सोचा,— “देखना ह”, कि इस

संसारमें हमारे इन गुह्य महाराजका ज्ञान बड़ा ही अद्भुत है । उन्होंने इस सेठकी लड़कीके पूर्व जन्मकी बात माँछों देनी बातकी तरह साफ-साफ बतला दी । ऐसा विचार कर राजाने गुह्यसे पूछा, “हे भगवन् ! क्याकर मेरे प्राणप्रिय मित्र मित्रानन्दका समाचार मुझे सुनाये ।” यह सुन, गुह्यने कहा,—

“हे राजन् ! तुम्हारा वह मित्र तुम्हारे पाससे चलकर कमरा जल-दुर्गका उलट्टन कर, स्थल दुर्गमें गया । वही भरण्यमें किसी पर्वतसे जहाँ नदी धरती थी, वही तुम्हारा मित्र अपने सब साथियों समेत भोजन करने बैठा । सब सेवक भी भोजन करने लगे । इसी समय मकसमात् मीलोंने उन पर घावा कर दिया और उन प्रचण्ड मीलोंके सामने सब धीर परास्त हो गये । यह हाल देख, हरके मारे मित्रानन्द भकेला भाग गया । उसके सेवकोंमेंसे भी कुछ लोग भाग गये और कुछ मरकर वहीं छेत रहे । जो भागे, वे शर्मके मारे फिर नहीं लौटे और जो मरे, वे वहीं पड़े रहे । उधर तुम्हारा मित्र भागता-भागता जङ्गलमें एक जगह सरोवर देख, उसका जल पी, एक बड़े पेड़के नीचे सो रहा, इतनेमें उस पेड़के कोटरमेंसे निकलकर एक काले नागने उसे काट खाया । थोड़ी ही देरमें कोई तपस्वी वहाँ आया । उसने तुम्हारे मित्रकी वह अवस्था देख, जलको मन्त्रित करके उसके अंगोंपर छिड़क दिया । इससे उसकी जान लौट आयी । तब योगीने पूछा,— “हे भार्ग ! तुम भकेले कहीं जा रहे हो ?” इस पर उसने अपनी राम-कहानी ज्योंकी त्यों कह सुनायी । सुनकर तपस्वी अपने स्थानको चले गये । मित्रानन्दने सोचा,—“यह देखो, मैं मृत्युका कारण उपस्थित हो जानेपर भी नहीं मरा और झूठमूठ हठ करके मित्रका भी साथ छोड़ भागा । अच्छा, चलो, मित्रके ही पास चलूँ ।” ऐसा विचार कर वह तुम्हारे पास आने लगा । रास्तेमें उसे चोरोंने पकड़ लिया और उसको अपने गाँवमें ले गये । इसके बाद उन्होंने उसको गुलामों-का व्यापार करने वालोंके हाथ बेच दिया । वे व्यापारी पारसकुल नामक

परदेशको चले जा रहे थे । जाते-जाते वे उज्जयिनी नगरके बाहर बागोचेमें रातको टिक रहे । आधी रातके समय वन्धन कुछ शिथिल होनेके कारण मित्रानन्दने उससे शीघ्र छुटकारा पा लिया और भागते-भागते नगर की मोरीकी राहसे नगरमें प्रवेश किया । उस समय उस नगरमें चोरोंका बड़ा उपद्रव जारी था; इसलिये चोरोंका दमन करनेके निमित्त राजाने कोतवाल पर कड़ी ताकीद कर रखी थी । दैवयोगसे स्वयं कोतवाल-ने ही मित्रानन्दको इस प्रकार चोरोंकी तरह शहरमें घुसते देख लिया । अतएव उसने तुम्हारे मित्रकी मुर्के कतवा कर, बँतों और घूसोंसे उसकी पूरी तरह भस्मत्त करा, अपने सेवकोंके हाथमें बंध करनेके लिये सौंप दिया और कहा,—“इसे सिन्धु-नदीके तीरपर ले जाकर बड़के पेड़से लटकाकर मार डालो, जिसमें बोरोंकी आँखें खुल जायें ।” सेवकोंके साथ जाते हुए तुम्हारे मित्रने विचार किया,—“उस दिन मुझे जो बात बड़ी थी, वह आज सब निकली । शहरमें कहा है कि

यत्र वा तत्र वा यातु, यदा तदा कालवर्ती ।

तथापि सुख्येन शरीरं, न पूर्वह्यङ्गं ॥ १ ॥

विभवो निर्धनत्वे च, दन्धने मरणे तथा ।

येन यत्र यदा मरणं, तस्य न तत्परा भवेत् ॥ २ ॥

यानि दूरमूर्ती अङ्गोष्ठापम्यादाश्चर्यतः ।

तत्रैवार्णवे नृपो अग्निवर्माङ्गुली ॥ ३ ॥

इत्यादि—“शरीरों चाहे जहाँ जायें या जो कुछ करें, परन्तु जूनें किये हुए कर्मोंसे उत्पन्न छुटकारा होता अतन्त्र है । वैभव, निर्धनता, दन्धन और मरण—ये चारों चीजें दिन शरीरके, विवर्तमान पर और दिन समय मिलने वाली होती हैं, उनको, उन स्थान पर और उन समय धन हुआ करता है । दुःखके स्थानमें डरकर शरीर चाहे जिनमें दूर भाग जायें : परन्तु उद्दिष्ट कर्मोंके फलमें वह जिन जहाँ का जाता है ।”

इस प्रकार विचार करते हुए मित्रानन्दको कोतवालके सेवकोंने निरन्तरपक्षी बड़के पेड़में लटका कर फाँसी दे दी, जिससे यह मृत्युको प्राप्त हो गया । तदनन्तर एक दिन ग्यालोंके लड़के गिल्ली-इएडा खेलते हुए वहाँ भा पहुँचे और पूरे कर्मके योगसे उनकी गिल्ली तुम्हारे मित्रके मुक्तमें खली गयी ।”

इस प्रकार गुरु महाराजके मुक्तसे मित्रका वृत्तान्त श्रवण कर, उसके गुणोंका स्मरण करते हुए राजा मरदत्त बड़े जोर-जोरसे सिसकने लगे और रत्नमञ्जरी देखी भी उसके गुणोंको याद करके बड़ी दुःखित हुई । उन दोनोंको विन्यास करते देखकर गुरुने कहा,—“दुःख छोड़ कर संसारके त्यक्तकी चिन्ता करो । इस चार प्रकारकी गतिवाले संसारमें प्राणियोंको वास्तविक सुख तो केशमात्र नहीं होता और दुःख बराबर ही मिलता रहता है । संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं, जिसे मरणकी देवता न सहन करनी पड़ी हो । अन्धवर्ती और बाधुदेवके से महापुरुषोंको भी मृत्युने नहीं छोड़ा । इसलिए हे राजन् ! शोक छोड़ो और धर्म-कर्ममें लग जाओ, जिनमें फिर इस तरहका दुःख न हो ।” राजाने फिर पूछा —“हे भगवन् ! मैं धर्म करूँगा, पर भाप यह तो ब्रह्मचार्ये, कि मित्रानन्द मरकर कहाँ पेड़ा हुआ है ।” मुनिने कहा,—“हे राजन् ! तुम्हारी इस राखीकी कोखमें मित्रानन्दका जीव पुनरुत्पत्ति पाया है । क्योंकि हमने मरने समय इसी तरहकी चिन्ता की थी । समय पूरा होने पर वह पुनः संसारमें उत्पन्न होगा । उसका नाम कल्याणगुप्त रखना । वह पहले कुमार-वन्दी पाकर फिर राजा होगा ।”

यह सुन, राजाने पूछा, —“हे महारथ ! मित्रानन्दकी जिन्दा किमी जगहायके ही खोरकी तरह मृत्यु क्यों हुई ? रत्नमञ्जरी राजीको मर-गारी कल्याण क्यों बना ? मुझे ब्रह्मचार्यत्वासे ही बन्धु-विरोधा क्यों अनुभव करना पड़ा ? और हम दोनोंमें इतना अधिक अन्तर होनेका क्या कारण है ?”

राजाने वे प्रश्न सुन, मुनिने कभी डामके द्वारा उन दोनोंका

मालूम कर कहा,—“हे राजन् ! सुनो—इस भवसे तीन भव पहले तुम क्षेमद्वार नामके एक कृपक थे । तुम्हारी पत्नीका नाम सत्यभ्री था । तुम्हारे यहाँ छप्पडसेन नामका एक नौकर था । वह नौकर अपने स्वामी पर बड़ी भक्ति तथा प्रीति रखता और साथही बड़ा विनयी था । एक दिन उस नौकरने अपने खेतमें काम करते हुए पास घाले किसी खेतमें एक मुसाफिरको अनाजकी चालें तोड़ते देखा । यह देख तुम्हारे उस नौकरने कहा,—“रहो, मैं इसी खोरको पकड़ कर घृक्षसे लटकाये देता हूँ ।” यह सुनकर भी उस क्षेप्रके स्वामीने उसे कुछ नहीं कहा । यह देख, उस मुसाफिरने, उस नौकरकी बातोंसे मन-ही-मन दुःखित होकर विचार किया,—“खेतका मालिक तो कुछ बोलता ही नहीं और यह पापी दूसरे खेतमें रहता हुआ भी कैसे कठोर वचन बोल रहा है ?” ऐसा विचार करता हुआ वह अपने घर चला गया । इस प्रकार उस कर्मकरने कठोर वचन बोलकर दुःखदायी कर्मका उपार्जन किया ।

एक दिन भोजन करते समय जल्दबाज़ीके मारे उस कृपककी पुत्र-वधूके गलेमें कौर अँटक गया । इसपर उस कृपककी पत्नी सत्यधीने कहा,—“बरी, राक्षसी ! तू छोटे-छोटे कौर क्यों नहीं खाती, जिससे गलेमें न अँटके ?” इसके बाद एक दिन उस कृपकने नौकरसे कहा,—“हे भृत्य ! आज तुम्हें एक गाँवमें एक ज़रूरी कामके लिये जाना है, इस लिये तुम वहीं जाओ ।” इसपर उस नौकरने कहा,—“आज तो मैं अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये जाना चाहता हूँ, इसलिये आज तो नहीं जाऊँगा ।” यह सुन, कृपकने बिगड़ कर कहा,—“आज तो तुम्हें अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये नहीं जाना होगा ।” यह सुनकर उस नौकरको दुःख तो ज़रूर हुआ ; पर लाचार अपने स्वजनोंसे मिलने न जाकर वहीं रह गया । दूसरे किसी दिन उस कृपकके घरपर दो मुनि भिक्षा करने आये । कृपकने अपनी खोसे कहा,—“इन मुनियोंको दान दो ।” यह सुन, वह मन-ही-मन बड़ी हर्षित हुई और भाग्य-योगसे ऐसे सुपात्रोंका आना हुआ,

यही सोचकर शुभ भावनाओंसे युक्त हो, सुन्दर अन्न-जलसे उनको सन्तुष्ट किया । यह देख, पास ही खड़े उस नौकरने सोचा,—“ ये स्त्री-पुरुष धन्य हैं, जिन्होंने अपने घर आये हुए महामुनियोंका इस प्रकार भक्ति-पूर्वक आदर-सत्कार किया ।” इसी समय एकाएक उन तीनोंके सिर पर बिजली गिर पड़ी, जिससे ये तीनों एकही साथ मर गये और सौ-धर्म नामक पहले देव-लोकमें अत्यन्त प्रीतियुक्त देव हुए । वहाँसे ज्युत होकर क्षेमद्वुरका जीव तो तुम्हारे शरीरमें आया, सत्यश्री रानी रत्न-मंजरी हुई और वह नौकरही तुम्हारा मित्र मित्रानन्द था, जो जीव पूर्व भवमें जैसा कर्म बाँधता है, उसको इस भवमें वैसाही प्राप्त होता है । पूर्व भवमें जो कर्म हँस-हँस कर बाँधा जाता है, उसका फल इस भवमें रो-रोकर भोगना पड़ता है ।” इस प्रकार अपने पूर्व भवकी कथा सुन कर राजा और रानी तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़े । इसी समय उन्हें जाति-स्मरण हो आया और ये अपने पूर्व भवका सारा हाल प्रत्यक्ष देखने लगे । इसके बाद होशमें आनेपर राजाने कहा,—“ हे भगवन् ! शानरूपी सूर्यके समान आपने जो कुछ कहा, यह मैंने भी प्रत्यक्ष देख लिया । भव कृपाकर मुझे यह धर्म यतलाइये, जिससे धर्ममें मेरी योग्यता बढ़े ।”

गुरुने कहा,—“ हे राजन् ! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो, तब तुम चारित्र्यग्रहण कर लेना । अभी तुमको धायक-धर्म ग्रहण करना चाहिये ।” यह सुनकर राजाने रानीके साथ-ही-साथ बारह प्रकारका धायक-धर्म ग्रहण किया । इसके बाद राजाने गुरुसे पूछा,—“ उस समय जिस मुर्देने मित्रानन्दको यह बात कही थी, वह कहनेवाला कौन था ?” सूरिने कहा,—“ यह मनाजकी बालोंका चोर मुन्नाफिर कमराः मृत्यु होनेपर संसारमें भ्रमण करता हुआ उस बट-यूद्धपर जाकर प्रेत हो गया । उसने जब उस दिन मित्रानन्दको देखा तब पूर्वजन्मका घेर याद हो जानेके कारण उस मुर्देके मुखमें उतर कर वैसा घबहन बोल गया ।” यह सुन, राजा अमरदत्तके सारे सन्देश दूर हो गये और ये रानी सहित सूरिको प्रणाम कर घर चले गये । गुरु भी भव्यत्र विहार कर गये ।

इसके बाद समय पूरा होनेपर रानी रत्नमञ्जरीके पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका नाम वही रखा गया, जो गुरुने बतलाया था । धात्रीसे पालित होता हुआ वह राजकुमार क्रमशः बाल्यावस्था बिताकर, बहुसर कला-
बोंका अभ्यास कर, राज्यका भार सँभालने योग्य हो गया । इसी समय एक दिन वही गुरु फिर वहाँ पधारे । मालीने आकर राजासे गुरुके आगमनकी यात बर्ही । वस उसी समय राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, रानीके साथ ही वैराग्यकी दीक्षा ग्रहण कर ली । धर्मघोष सुनिने राजा और रानीकी प्रपञ्चा देकर प्रतिबोधके निमित्त समाके समक्ष इस प्रकारकी शिक्षा दी,—“इस संसार-रूपी समुद्रकी तरनेके लिये यह दीक्षा नीकाके समान है और बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है । इसे प्राप्त कर जो जीव विषयोंके लोभमें पड़ता है, वह जिनरक्षितकी तरह घोर संसार-सागरमें पड़ता और जो प्राणी प्रार्थना करने पर भी विषय-से विमुख रहता है, वह जिनपालितके समान सुखी होता है ।” यह सुन, राजर्षि अमरदत्तने गुरुसे पूछा,—“जिनरक्षित और जिन पालितने किस प्रकार सुख और दुःख पाया, इसका हाल क्याकर बतलाइये ।” यह सुन, गुरुने सिद्धान्त ग्रन्थोंमें बहो दूर उनकी कथा इस प्रकार कह सुनायोः—

जिनरक्षित और जिनपालितकी कथा

चम्पापुरीमें जितशत्रु नामके राजा थे । उनकी रानीका नाम धारिणी था । उसी नगरमें माकन्दो नामका एक धनी सँठ रहता था । वह शान्त, सरल-हृदय, और उदार बुद्धिवाला मनुष्य था । उसकी स्त्री का नाम भद्रा था । उसके दो लड़के थे, जिनमें एकका नाम जिनरक्षित और दूसरेका जिनपालित था । वे अब युवावस्थाकी श्रम हुए, तब अज्ञान पर चढ़कर परदेस जाने और धन बनाने लगे । इस प्रकार उन्होंने ग्यारह बार समुद्र-यात्रा सातन्द् मन्यक की और धन भी खूब बनाया ।

इसके बाद जब वे बारहवीं बार धन कामानेके लिये जलके मार्गसे जाने-को तैयार हुए, तब उनके पिताने कहा,—“पुत्रो ! अपने घरमें धनकी कोई कमी नहीं है । तुम लोग जैसे चाहो, इस धनको दान और भोगमें खर्च करो । ग्यारह बार तो तुम लोग क्षेम-कुशलसे यात्रा कर भाये । पर कहीं इस बार विघ्न हुआ, तो ठीक नहीं होगा, इसलिये बहुत लोभ करना उचित नहीं । यदि मेरी बात मानो, तो तुम लोग घरही रहो ।” पिताकी यह बात सुन, उन दोनोंने कहा,—“पितामी ! ऐसी बात न कहिये । इस बारकी यात्रा भी आपकी कृपासे सकुशलही बीतेगी ।” यह कह कर उन दोनोंने किरानेका बहुतसा माल जहाज़ पर लादा और जल, ईंधन इत्यादि सामग्रियोंके साथ जहाज़ पर सवार हो, समुद्रकी राह चल पड़े । क्रमशः वे मध्य समुद्रमें आ पहुँचे । इतनेमें मेघ घिर आनेसे घनघटा होने लगा, आकाशमें बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और बड़े जोरकी आंधी चलने लगी । वैद्य-योगसे यह जहाज़ क्षण भरमें टूट गया । जहाज़ पर जितने लोग सवार थे, वे सबके सब डूब गये । उस समय जहाज़के स्वामी जिनपालिन और जिनरक्षितको एक तफ़्ता हाथ लग गया, जिसे उन्होंने बड़ी मज़बूतीसे पकड़ लिया । उसेही पकड़े हुए वे तीसरे दिन रत्नद्वीपमें आ निकले । वहाँ पहुँच कर वे नारियलके फल खा-खाकर जीवन-निर्याह करने लगे और नारियलका तेल शरीरमें लगाकर सुन्दर देहवाले होकर वहीं रहने लगे ।

एक दिन बटोर, निर्दय और तीक्ष्ण चक्षु हाथमें लिये, उस द्वीपकी मधिष्ठात्री देवीने उनके पास आकर कहा,—“यदि तुम मेरे साथ विषय-भोग करो, तब तो तुम वहाँ कुशलसे रह सकोगे, नहीं तो मैं इसी क्षणसे तुम्हारे मिर काट डालूंगी ।” यह सुन, उन्होंने मयमीन होकर कहा,—“हे देवी ! मैंने जहाज़के टूट जानेसे हम वहाँ तुम्हारी शरणमें आ पहुँचे हैं । अब जो कुछ तुम्हारी आज्ञा होगी, वह करनेके लिये हम तैयार हैं ।” यह सुन, प्रसन्न होकर वह देवी उनको अपने घर ले

गयी और उनके शरीरसे अशुभ पुद्गल निकाल कर शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप कर, उन दोनोंके साथ मनमाने तौरसे विषय-सुख भोगने लगी । वह उन दोनोंको सदा असृत-फल खानेकी देती थी । इसी तरह वे कुछ दिनों तक वहाँ बड़े सुखसे रहे । एक दिन देखते-देखते उनसे आकर कहा,— ‘लवण-समुद्रके अधिष्ठाता सुस्थित नामक देवने मुझे बाधा दी है, कि तुम इस समुद्रको शोकसे घेर इसके अन्दरसे कुछ-कुछ निकाल कर शुद्ध कराओ । समुद्रमें जो कुछ वृण, काष्ठ और अन्य अपवित्र पदार्थ हो, उन सबको निकाल कर किसी एकान्त स्थानमें फेंक दो ।’ उनका यह हुक्म पाकर मैं अब वहाँ जा रहा हूँ । तुम दोनों सानन्द यहाँ पड़े रहो । यहाँ सुन्दर फल खाकर तुम अपना पेट भरना । बड़ाचित्र यहाँ अकेले रहते-रहते तुम्हारा जो उच्छ्रित जाये, तो तुम क्रीड़ा करनेके निमित्त पूर्व दिशामें जो वन है, उसमें चले जाना । उस वनमें निरन्तर म्रोष्म और वर्षा—ये दो ऋतुएँ छाया रहती हैं । वहाँ दो ऋतुएँ होनेके कारण तुम्हारा जो सुख लगेगा । पर यदि वहाँ भी तुम्हारा मन न लगे, तो मैं बाधा देता हूँ, कि तुम उत्तर दिशावाले वनमें चला जाना, जहाँ शरद और हेमन्त, ये दो ऋतुएँ सदा बनी रहती हैं और अगर वहाँ भी मनको तृप्ति न प्राप्त हो, तो पश्चिम दिशावाले वनमें चले जाना, वहाँ शिशिर और यत्नन्त—ये दो ऋतुएँ निरन्तर वर्तमान रहती हैं । वहाँ जाकर मनमाना मौज करना : परन्तु दक्षिण दिशावाले वनमें तो हर्गिज न जाना; क्योंकि वहाँ बड़ा भारी दृष्टिबिर नामका एक काला सर्प रहता है । ”

यह कह, वह देवी चली गयी । उसके जाने बाद वे दोनों सँठके देटे देवीके घटलाये हुए तीनों वनोंमें आनन्दसे विहार करने लगे । एक दिन उन दोनोंने सोचा,— ‘देवाने हमें दक्षिण-दिशाके वनमें नहीं जाने के लिये इतना जोर देकर क्यों कहा ? इसका कारण क्या है ?’ इस-लिये चलो, एक बार चढ़कर देखें तो सही, कि वहाँ क्या है !’ ऐसा विचार कर वे सशङ्कित-चित्तसे उस वनमें गये । वहाँ पहुँचते ही

उनकी माकमें कड़ी दुर्गन्ध पहुँची । ये दुपट्टेसे नाक बन्द किये भागे पड़े । वहाँ पहुँचकर उन्होंने मनुष्यकी हड्डियोंका डेर देखा । उसे देखकर उन्हें बड़ा डर हुआ । तो भी वे भागे जाकर जङ्गलकी सैर करने लगे । इतनेमें एक भादमी फाँसोसे लटका हुआ विलाप करता दिखाई दिया । उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—“हे भाई ! तुम कीन हो ? तुम्हारी ऐसी दशा किसने की ? वहाँ जो चारों ओर मनुष्योंके मुँह दिखाई देते हैं, उसका क्या कारण है ? ” यह सुन, वह खूनीपर लटका हुआ मनुष्य बोला,—“मैं काकन्दी-नगरका रहनेवाला, जातिका धनियाँ हूँ । वैद्ययोगसे मार्गमें अज्ञान दूट जानेसे मैं एक तप्टा पकड़े हुए रत्नद्वीपमें भा निकला । वहाँको विषय भोगके लिये मतवाली यनी हुई देवीने मुझे विषय-भोगके लिये रख छोड़ा । कुछ दिन बीतने पर उसने थोड़ेसे भयराधके कारण मुझे इस प्रकार शूली पर लटका दिया । ये सब मुझ्में भी उसीके मारे हुए हैं । माझूम होता है तुम भी उसी दुष्टा देवीके चक्करमें भा फँसे हो । मला यह तो बनलाभो, तुम यहाँ कैसे भाये ? ” इसके उत्तरमें उन दोनोंने भी अपनी सारी राम-कहानी उसे सुना कर पूछा,—“भाई ! अब यह तो बताओ, कि हम यहाँसे किसी प्रकार जीते-जागते निकल भी सकते हैं या नहीं ? ” उनमें कहा,—“हाँ एक उपाय है । यहाँसे पूर्वकी ओर एक धन है, जिसमें शैलक नामक एक यक्ष रहता है । वह पर्वके दिन भयका रूप बनाकर पूछता है, कि मैं किसकी रक्षा करूँ ? किसे विपद्के मुँहसे बचाऊँ ? तुम दोनों इसी यक्षकी भक्ति पूर्वक आराधना करो । जिस दिन वह तुमसे भाकर पूछे, कि किसकी रक्षा करूँ ? उस दिन तुम उससे कहना, कि हमारी रक्षा करो । इस प्रकार वह तुम्हारी रक्षा करनेको प्रस्तुत हो आवेगा । ” यह कह, वह उल्टा टेंगा हुआ मनुष्य मर गया ।

तदनन्तर ये दोनों भाई उस मनुष्यके बनलाये हुए धनमें भाकर मनोहर पुष्पोंसे वन यक्षकी पूजा-भर्चा करने लगे । इसी प्रकार करते

100% Pure
• No. 1 •

1978-1979: A total of 1000 people were employed in the construction industry in the United States, and the total value of construction work was \$100 billion.

एक पर्वण दिन का पड़ना । उस दिन यक्षने आकर पूछा,—“बोली, मैं जिसकी रक्षा करूँ ? जिसे आपसिने पचाहूँ ? ” इतनेमें उन दोनोंने धड़पट कहा,— “हे यक्षराज ! हमें दुःख-भागमें दुःखनेसे पचाओ । ” यह सुन, शैलबने कहा,— “मैं तुम्हें दुःखमें डगर उतारूँगा पर तुम साविधान होकर मेरी एक बात सुनो । मैं जब तुम्हें पहाँसे ले चलाऊँगा, तब वह देवी भी तुम्हारे पीछे पीछे भाड़ेगी और मोठे-मोठे पवन सुना-देगी । उस समय यदि तुम उसकी बिबनी-भुरड़ी पातोसे मतमें पसीज उठोगे, तो वह जरूर हाँ तुम्हें उठाकर समुद्रमें फेंक देगी और यदि उसकी ज़रा भी परया न किये हुए राग-रहित होकर मेरे पीछे-पीछे चलते रहोगे, तो मैं तुम्हें निधय ही निधिग चम्पानगरीमें पहुँचा दूँगा और क्या कहूँ ! यदि वह देवी जादे, तो तुम उसके साथ चार आँखे भी न करता । वह उराने-धमकानेके लिये कुछ भी करे, तो उसे सुन कर डरना नहीं । यदि तू ऐसा करनेमें समर्थ हो सको, तो मामो, सभी मेरी पीठ पर सवार हो जाओ । ”

यक्षकी इस बातकी दोनों भाइयोंने स्वीकार कर लिया । इसके बाद वे दोनों उस अश्वरूपी यक्षकी पीठपर सवार हो गये । वह अश्व-रूपी यक्ष उन्हें समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर आकाशमें ले उड़ा ।

इधर देवी अपने हाथका काम पूरा कर अपने स्थानपर भायी और अपने मन्दिरमें उन दोनोंको न देखकर उपर्युक्त सप वनोंमें उन्हें दूँदने लगी ; पर वे कहीं नहीं दिखाई दिये । इसके बाद अपने ज्ञानसे यह नाट्य कर, कि वे चम्पापुरीकी ओर चले जा रहे हैं, वह क्रोधके साथ खड़ू हाथमें लिये दौड़ पड़ा । जब वह दौड़ते-दौड़ते उन लोगोंके पास पहुँच गयी, तब उन्हें घोड़ेकी पीठपर चढ़कर जाते देख, बोली,— “अरे ! तुम लोग क्यों मुझे इस तरह छोड़कर भागे जा रहे हो ? अगर तुम्हें जानकी इच्छा हो हो, तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं इसी खड़ूसे तुम्हारे सिग उतार लूँगी । ” देवीकी यह बात सुन, यक्षने उन दोनोंसे कहा, “जब तक तुम दोनों मेरी पीठपर हो, तब तक तुम्हें कोई भय

नहीं है ।” यह धैर्य-वचन सुन, दोनों भाइयोंके विषयमें बड़ी शान्ति आयी । तब देवी अनुकूल वचन बोलने लगी,— “मेरे प्राण-प्यारों ! तुम लोग मुझे इस तरह अकेली छोड़ कर कहाँ चले जा रहे हो ?” इस धीन-वचनसे भी उनके विषय धँसल नहीं हुए । तब उसने अकेले जिनरक्षितसे कहा,— “जिन-रक्षित ! तुम मेरे परम प्रिय हो । तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह निश्चल है । अब मैं तुम्हारे न रहने पर किसके साथ विषय-सुख भोगूँगी ? तुम्हारे वियोगमें मैं ज़रूर मर जाऊँगी । और एक घार मेरी ओर देख तो लो, जिसमें मैं मरते समय भी तो थोड़ी शान्ति पा जाऊँ ।” उसके इन माया-युक्त वचनोंको सुनकर जिनरक्षितको बड़ा दुःख हुआ और उसने देवीके साथ आँखें धार कीं । बस शीलक यक्षने उसे तत्काल अपनी पीठ परसे उतारकर नीचे फेंक दिया । देवीने उसे समुद्रके जलमें फेंक डालनेके पहले त्रिशूलसे बाँधकर कहा,— “दे पापी ! ले, मेरे साथ धोखेवाज़ो करनेका फल भोग ।” यह कह, उसने उसे लड़खलसे चीर डाला । इसके बाद वह माया-जाल फैलाकर जिनपालितको फँसाने आयी । यह देख, यक्षने कहा,— “यदि तूने इसकी बातों पर ज़रा भी ध्यान दिया, तो तेरी गतिभी जिनरक्षितके ही समान होगी ।” यक्षकी यह बात सुन, वह और भी दृढ़ हो गया और उसकी कपट-रचनाकी उपेक्षा कर, यक्षकी सहायतासे सकुशल चम्पापुरी पहुँच गया । वह भूतनी निराश होकर पीछे लौट गयी । यक्ष भी उसे उसके घर पहुँचाकर पीछे लौट गया । उस समय जिनपालितने उससे अपने अपराधोंकी क्षमा माँगी और विनय-पूर्ण वचनोंसे उसकी प्रशंसा की ।

अपने घर पहुँच कर जिनपालित अपने स्वजनोंसे मिला और बड़े शोक भरे स्वरमें अपने भाईके मरनेका हाल उन्हें कह सुनाया । सेठ माकम्बी अपने पुत्र की मरण क्रिया कर, एकही पुत्र और अन्य स्वजनोंके साथ गृहधर्मका पालन करने लगा । एक दिन धीमहाधीरस्यामीने उस धुरीके उद्यानमें पदार्पण किया । माकम्बी और जिनपालित आदि प्रभुकी घन्दना करनेके लिये आये और भगवान्की देशना अवध

कर, ज्ञान लाभकर, संयम ग्रहण करनेकी इच्छासे दोनोंने ही श्रीजिनेश्वरको प्रणाम किया । इसके बाद वे घर चले आये । तदनन्तर सेठ माकन्दीने पुत्रको घरका कारबार सौंपकर जिनपालितके साथ धीवीर प्रभुके पास आकर दीक्षा ग्रहण की । जिनपालित साधुपिताके साथ कठिन तपस्या करते हुए आत्मकार्यका साधन करने लगा ।

जिनपालित—जिनरक्षित-कथा समाप्त ।

यह कथा सुनकर राजर्षि अमरदत्तने श्रीधर्मघोष सूरिसे इस कथा का उपनय पूछा । इसके उत्तरमें गुरुने कहा,— “ उस सेठके दोनों पुत्रोंके स्थानमें इस संसारके समस्त जीवोंको जानो । रत्नद्वीपकी उस देवीको अविरति (माया) जानो । इसी अविरतिके कारण मनुष्योंको दुःख होता है, वे भव-भ्रमण करते रहते हैं । यह मृतकोंका समूह उसीकी करनीका फल था । शूली पर लटकाए हुए मनुष्यके स्थानमें दितकी यात यतलानेवाले गुरुको जानना । जिसप्रकार उस शूलीपर चढ़े हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार यतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होनेवाले दुःखको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा, वैसा यतला देते हैं । जिस तरह उस शूली पर टंगे हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार यतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होने वाले दुःखको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा वैसा यतला देते हैं । जिस तरह उस शूली पर टंगे हुये मनुष्यने दोनों सेठ-सुतोंको यह यतलाया था, कि शूलक यक्ष तुम्हें इस दुःखसे उबारेगा, उसी तरह गुरु भी संयमको उद्धारकर्त्ता यतलाते हैं । समुद्रके स्थानमें इसी संसारको समझना । जिसप्रकार रत्नद्वीपकी उस देवीके फैरमें पड़ा हुआ जिनरक्षित नाशको प्राप्त हुआ, उसी प्रकार अविरतिके दशमें पड़कर मनुष्य नाशको प्राप्त हो जाता है, ऐसा समझना । जैसे देवीकी यातकी परवा न कर, यक्षके आद्या-

धीन रहता हुआ जिनपालित क्रमशः अपनी नगरीमें भा पहुँचा, उसी प्रकार जीव भविरतिका त्याग कर, पवित्र चारित्र्यमें निश्चल हो रहता है और समस्त कर्मोंका क्षय कर षोडश कालमें मोक्ष सुखका अधिकारी होता है । इसलिये हे राजर्षि ! चारित्र्य भङ्गीकार करने बाद लोकमें मनको प्रवृत्त नहीं होने देना चाहिये । ”

गुरुके ऐसे वचन सुन, राजर्षि बड़े भावसे अनिचारसे रहित संयमका पालन करने लगे । गुरुने रत्नमञ्जरीको साध्वी प्रवर्त्तिनीको सौंपा वह वहाँ रहकर निरन्तर तप और संयमका पालन करने लगी । क्रमशः वे दोनों निर्मल तपस्या कर, मनोहर चारित्र्यका पालन कर, मोक्षमार्गको प्राप्त हुए ।

अमररत्न — मित्रानन्द-कथा समाप्त ।

इस प्रकार स्वयंप्रभ मुनिके मुँहसे धर्मदेशना श्रवणकर स्निग्ध-सागर राजाको बड़ा धीध प्राप्त हुआ । इसके बाद उन्होंने अपने पुत्र मनमन्थीयको राज्यपर स्थापित कर, कुमार भवराजितको युवराजकी पदवी प्रदान की और भाग वहीं मुनीश्वरसे दीक्षा ग्रहण कर ली । उन्होंने दृढ़तासे दीक्षाका पालन तो किया परन्तु मन्त्रमें मन-ही-मन संयममें कुछ विराधना कर दी इसलिये वे मरकर अधोलोकमें भवराजि-जातिमें अमररत्न नामक असुरोंके अधिपति हुए ।

कुमार भवराजित और राजा मनमन्थीय राज्य करने लगे । इसी समय किमी विद्याधरसे उनकी मैत्री हो गयी । उस विद्याधरने उन्हें आकाशनामिनी आदि विद्याएँ सिखायायीं और उनकी साधनाकी विधि भी बतला दी । राजाके कर्नेरी और यिल्लामी नामकी दो दासियाँ थीं । वे गीत और नाट्यकृत्यामें बड़ी निपुण थीं । इसलिये उनके गीत नाट्यसे प्रसन्न रहनेवाले भवराजित और मनमन्थीय निरन्तर नाच गानके ही रङ्गमें डूबे रहते थे । एक दिन वे दोनों साथ मिल कर गीत-नाट्यके रसमें डूबे हुए थे, इसी समय स्नेह्याचारी नारद वहाँ भा पहुँचे । उस समय नाचने-गानेकी वृत्तमें पड़े हुए उन दोनों साधकोंके कड़े होकर

या और तबसे नारदके प्रति सम्मान नहीं प्रकट किया । इससे मोहित होकर नारदने विचार किया,— 'ये ! इन दोनों माइयोंका मन दासियोंके नाचने-गानेमें इतना मोहित हो गया है, कि मेरा यहाँ भाना भी इन्हें नहीं मालूम हुआ ! अच्छा, रहो, मैं किसी पलवान् राजासे इन नृत्य-गीत-बल्लामें होशियार दासियोंका दर्शन करवाये देता हूँ ।' ऐसा विचार कर, तीनों लोकमें स्वेच्छापूर्वक पिचरण करने वाले और लड़ाई-झगड़ा करनेमें बड़ी प्रीति रखनेवाले नारद ऋषि विद्याधरोंके राजा और तीन खण्डोंके स्वामी दमितारि नामक प्रतिवासुदेवके पास गये । मुनिको देखते ही राजा तत्काल उठ खड़े हुए और उनके सामने जा, सत्कार-पूर्वक उन्हें आसन पर बैठाकर पूछा,— "हे मुनि ! पृथ्वी पर आपने कोई आश्चर्य-जनक बात देखी हो, तो कहिये ।" नारदने कहा,— "हे राजेन्द्र ! सुनो । मैं सुभगा नगरीमें राजा अनन्तवीर्यके पास गया हुआ था । उनके यहाँ खर्वरी और चिलाती नामकी दो दासियोंका नाट्य मैंने देखा, जिससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । हे राजन ! यदि तुम्हारे यहाँ वैसी गीत-नाट्यमें कुशल स्त्रियाँ नहीं रही, तो तुम्हारा विद्याल किस कामका ? और तुम्हारा यह इतना बड़ा राज्य ही किस कामका है ! तुम्हारी यह सारी समृद्धि, व्यर्थ ही है ।" यह कह, मुनि अन्यत्र चले गये ।

इसके बाद प्रतिवासुदेव राजा दमितारिने अभिमानके मारे तत्का लही राजा अनन्तवीर्यकी राजधानीमें एक दूत भेज कर कहलवाया, कि— "सब प्रकारके रत्न राजाधिराजोंके ही आश्रयमें रहते हैं । इसलिये तुम्हारे यहाँ गीत-नाट्यमें जो दो कुशल दासियाँ हैं, उन्हें शीघ्र ही मेरे पास भेज दो । इस विषयमें तनिक भी विलम्ब न करो ।" दूतकी यह बात सुन, अपराजित और अनन्तवीर्यने कहा,— "हे दूत ! तुमने जो कुछ कहा, सो ठीक है ; परन्तु हम लोग इन दासियोंके भेजनेके बारेमें पीछे विचार कर जैसा उचित समझेंगे, करेंगे । अभी तो तुम अपने स्वामीके पास लौट जाओ ।" यह कह, उन्होंने उस दूतको

रवानः कर दिया और दोनों भाइयोंने परस्पर विचार किया,—“यह राजा दमितारि विद्याके बलसे कहीं हमलोगोंको हरा न देवे, इसलिये हमलोगोंको चाहिये, कि उसके पहलेही विद्याका साधन कर उसका गर्व खुर-खुर कर डालें।” वे दोनों भाई इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, कि उनके पूर्व भवकी विद्याएँ उन्हें आपसे आप याद हो आयीं और उनके पास आकर बोली,—“तुम लोग तो हमें सिद्ध कर ही चुके हो, अब हमारे लिये नये सिरसे साधना करनेकी कोई जरूरत नहीं है।” यह कह, वे सब उन दोनोंके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। उस समय वे दोनों भी विद्याओंके प्रभावसे बड़े बलवान् विद्याधर हो गये। इसके बाद उन्होंने चन्दन, पुष्प इत्यादिसे उन विद्याओंका पूजन किया।

इसी समय राजा दमितारिके दूतने उनके पास लौट आकर कहा,—“अरे, क्या तुम्हें मौत सवार है, जो तुमने अभी तक प्रभुके पास उन दासियोंको नहीं भेजा ?”

यह सुन, दोनों भाइयोंने कहा,—“भला स्वामीका काम कैसे थाकी रह जाता ! हमलोग उन्हें भेज चुके।”

यह कह, उन्होंने दूतको शान्त कर दिया। इसके बाद उन दोनों भाइयोंने राजा दमितारिकी पुत्री स्वर्णश्रीके साथ विवाह करनेके लोभसे स्वयं दासियोंके रूप धारण कर, तत्काल राजा दमितारिके पास आ पहुँचे। तदनन्तर अपनी कला-कुशलता दिखलाकर उन्होंने राजाको प्रसन्न कर दिया। राजाने उनसे कहा,—“दासियों ! तुम दोनों मेरी कनकश्री नामक कन्याके पास रहो और उसका दिल बहलाया करो।” यह सुन, उन दोनोंने बहुत अच्छा, कह कर अपने मनमें विचार किया,—“जैसे कोई गिल्लीको दूधकी रसघाली सौंप दे, वैसेही इस राजाने अपनी कन्याको हमारे हवाले कर दिया है।” यही सोचने-विचारते हुए वे दोनों दासीका रूप धारण किये अद्वितीय रूपयुक्ती राजकुमारी कनकश्रीके पास आये। उसका रूप देखकर उन्होंने

सोचा,—“बहा ! विधाताने सारी सुन्दरता और समस्त उपमान-
द्रव्योंको एकत्र करके ही इस कन्याका रूप बनाया है, ऐसा माझूम
पड़ता है । इसका सा रूप तो शायद दुनियाँमें दूसरा नहीं है ।” ऐसा
विचार कर उन्होंने नधुरता तथा दास्य-रससे भरे हुए मनोहर वचन
और देशी भाषाओंसे मिले-जुले वाक्योंका प्रयोग कर उस कन्याको
पुकारा । उस समय राजकन्या कनकधारीने उनके वचनोंकी चतुराई
देख, उनका अत्यन्त लादर किया और उन्हें आसन आदि देकर उनका
मली भाँति सत्कार किया । इसके बाद उत्तने पूछा,—“अनन्त-
वीर्यका रूप कैसा है ?” यह सुन, दासीका घेरा बनाये हुए अरराजित-
ने अनन्तवीर्यके गुणोंका इस प्रकार यत्नान करना आरम्भ किया,—
“हे राजकुमारी ! अनन्तवीर्यके चानुर्य, रूप, सौन्दर्य, गान्धोर्ष, औदार्य
और धैर्य आदि गुणोंका वर्णन एक जिह्वासे हो नहीं सकता । तीनों
लोकमें राजा अनन्तवीर्यका सा गुणवान और कपवान पुरुष दूसरा नहीं
है । जिना भाग्य अच्छा हुए उनका नाम तो सुनाई ही नहीं देता,
किर उनके रूप-लावण्यका दर्शन करना तो कहाँसे हो सकता है !”
उनके गुणोंका ऐसा वर्णन सुनकर राजकुमारी कनकधारीके रोंगटे खड़े
हो गये । उनके गुण-वर्णनसे मुग्ध बनी हुई राजकुमारीको देख कर
दासीका रूप धारण किये हुए अरराजितने बहा,—“हे राजकुमारी !
यदि तुम्हें उनका दर्शन करनेकी अनिताया हो, तो मैं बनी दिखला दे
सकती हूँ ।”

यह सुन, उत्तने बहा,— “यदि ऐसा हो, तो किर क्या बात है ?
यदि एक बार मैं उनका रूप देख पाऊँ, तो किर मेरा जीवन सफल हो
जाये ।” उसकी यह बात सुन, उन दोनोंने अपना अलनो रूप प्रकट कर
राजकुमारीको दिखलाया, जिले देख, वर्णित हो राजकुमारीने बहा,—
“अब मैं तुम्हारी आज्ञाके अधीन हूँ ।” यह सुन, अनन्तवीर्यने बहा,—
“यदि ऐसा बात है, तो चलो, हम बसती नगरमें चले ।” राजकुमारी-
ने बहा,—“तुम्हारे बहुत ही ठीक बहा : परन्तु मेरे किर बड़े दमदार

हैं, वे तुम्हें भयश्य ही दरा देंगे ।” इसके उत्तरमें उन्होंने कहा,—
 “इसके लिये तुम कुछ चिन्ता न करो । वे हमारे सामने युद्धमें क्षणभर
 भी न ठहर सकेंगे ।” उनके ऐसे पचन सुनकर उनके स्नेह-पाशमें बँधी
 हुई तथा उनके रूप-सौन्दर्यसे मोहित राजकुमारी कनकधारी उनके साथ
 जानैको तैयार हो गयी ।

इसके बाद राजा अनन्तवीर्यने अपनी विद्याके प्रमाणसे विमान रख
 कर, उसी पर आरुढ़ हो, आकाशमार्गसे जाते-जाते समामें बैठे हुए
 राजा क्षमितादि और उनके साथ समासद्वोंको सुना-सुना कर कहा,—
 “हे मन्त्रियो ! सेनापतियो ! और सामन्तो ! सुनो—देखो, मैं तुम्हारे
 स्वामीकी पुत्री कनकधारीको हरणकर अपने साथ लिये जा रहा हूँ ।
 कहीं तुम पीछे यह न कह देना, कि हमें पहलेसे खबर नहीं थी ।”
 ऐसा कहते हुए राजा अनन्तवीर्य अपने माँके साथ उस बग्यारनको
 लिये हुए आकाशकी राह चले गये । राजा क्षमितादिने उनकी बात सुन,
 अव्यक्त क्रोधित हो, आक्रोशके साथ कहा,—“हे पीरो ! इस दुष्टको
 जल्दी गिरफ्तार कर दो । अभी पकड़ लो ।” इसप्रकार अपने स्वामीकी
 बात सुन, विद्याधरोंने बड़े जोरसे लड़काया,—“अरे मुरात्मा ! ठहर
 जा । तू हमारे स्वामीकी पुत्रीको कहाँ लिये जा रहा है ?” यह कहते
 हुए वे शस्त्र धारण किये उनके पीछे दौड़े । उनको इसप्रकार अपने
 पीछे-पीछे आते देख, राजा अनन्तवीर्यने उन्हें उम्मी तरफ क्षण भरमें
 नितर-नितर कर डाला, जैसे हवा नृणोंके समूहको घात-की-घातने
 उड़ा ले जाती है । अपने सैनिकोंको हारकर छोड़ा हुआ जानकर राजा
 क्षमितादिभ्यश्च राजा अनन्तवीर्यकी ओर चले । मार्गमें आते-आते जब
 राजा अनन्तवीर्यकी दृष्टि राजा क्षमितादि पर पड़ी, तब वे छोड़ी बैरके
 लिये विमानको छोड़ा करके उनकी सीताको देखने लगे । उन्होंने देखा,
 कि उस मैथिल समूहमें बग्यारनकालके समुद्रकी तरह फैले हुए हाथी,
 घोड़े और वैदूर्य गिरासियोंकी कूतारें लगी हैं और उनका विशद रूप
 आकाशको सुँझा रहा है । यह देखकर उन्होंने अनन्तवीर्य मुझ

करनेको तैयार हुए, त्योंही उस सैन्य-सागर पर निगाह पड़ते ही कनक-
श्री घेतरह व्याकुल हो गयी । उसने अनन्तवीर्यको आश्वासन देकर
तत्काल अपने सैनिकोंको इकट्ठा किया । इसके बाद राजा दमितारि
और अनन्तवीर्यके सैनिक परस्पर युद्ध करने लगे । दोनों ओरके सिपाही
खूब जी होमकर लड़े । अन्तमें राजा दमितारिके सिपाहियोंने अनन्त-
वीर्यके सैनिकोंको पराजित कर दिया । यह देखकर अनन्तवीर्य कुछ
चिन्तामें पड़ गये । इतनेमें उनके सौभाग्यसे तत्काल देवाधिष्ठित घन-
माला, गदा, खड्ग, कौस्तुभमणि, पाँचजन्य शंख और शार्ङ्ग-धनुष—ये
छः रत्न उत्पन्न हुए । यह देख, राजा अनन्तवीर्यने उत्साहित हो,
पाँचजन्य शंखको मुँहके पास ले जाकर पूरी ताकत लगाकर बजाया,
जिसकी प्रचण्ड ध्वनि ध्वज कर तत्काल ही शत्रुसेना मूर्च्छित हो
गयी और उनकी अपनी सेनाका धल बढ़ गया । यह देख, राजा दमि-
तारि स्वयं युद्ध करनेको तैयार हुए । राजा अनन्तवीर्य भी अपरा-
जितके साथ बहुर पहन कर, रथारूढ़ हो, शस्त्र हाथमें ले, उनसे
लड़नेको अप्रसर हुए । दोनों ओरसे घमासान लड़ाई हुई—बहुतेरे
वीर मारे गये । मरे हुए हाथी-घोड़ोंकी तो गिनती ही नहीं रही ।
लहूकी नदीसी यह बली । राजा दमितारिके छोड़े हुए सभी अस्त्रोंको
अनन्तवीर्य काट डालते थे । इसलिये प्रतिवासुदेवने महातीक्ष्ण और
देवीप्यमान चक्र अनन्तवीर्य पर चलाया । वह चक्र वासुदेवके हृदयमें
तुम्यङ्गीकी तरह हलका चोट करके रह गया और उन्हींके हाथमें आकर
स्थित हो गया । तब विष्णुने वह चक्र हाथमें ले, प्रतिवासुदेवसे कहा,—
“हे राजा दमितारि ! तुम युद्धसे हाथ धींच, मेरी सेवा करना स्वीकार
करो और सुखसे जाकर राज्य करो, व्यर्थ ही अपनी जान न गँवाओ ।
तुम कनकध्रीके पिता हो, इसीलिये मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ । ” यह सुन
राजा दमितारिने कहा,—“इन विचारोंको दिलसे दूर कर तुम छुशोसे
चक्र चलाओ, नहीं तो मैं इसी खड्गसे चक्र और तुम दोनोंका सफ़ाया
कर डालूँगा । ” यह कह, वे खड्ग उठाये हुए उन्हें मारने दीड़े । इसी

समय खड्ग और ढाल हाथमें धारण किये हुए अनन्तवीर्यने अपने सामने चले आते हुए द्धमितारिके ऊपर चक्र चलाकर उन्हें मार गिराया । उसी समय देव-यक्षादिकोंने अनन्तवीर्यके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए सपको सुना-सुनाकर ऊँचे स्वरसे कहा,—“यह अनन्तवीर्य अर्धविजयके स्वामी घासुदेव और इनके भाई अपराजित बलदेव हुए हैं । इसलिये इनकी चिरकाल जय हो ।” इसके बाद सब विद्याधर-वीरोंने घासुदेवको प्रणाम कर, उनकी अधीनता स्वीकार ली और घासुदेवने भी उनका भली भाँति सत्कार किया ।

तदनन्तर राजा अनन्तवीर्य और अपराजित सब विद्याधरोंके साथ मनोहर विमानपर चढ़कर अपने नगरकी ओर चले । मार्गमें जाते-जाते जब वे कनकाचल पर्वतके समीप (मार्गमें मेघ-पर्यंत किस तरह आया ?) आये, तब विद्याधरोंने उनसे कहा,—“हे स्वामी इस महागिरिके ऊपर जिनेश्वरके चैत्य हैं । इसलिये यहाँ चलकर भगवान्को प्रणाम कर आगे बढ़ना चाहिये । कारण, तीर्थका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये । यह सुन, तत्काल हो अपराजित और अनन्तवीर्य विमानसे उतरकर हर्ष और भक्तिके साथ तीर्थकी घन्दना करनेके बाद चारों ओर इष्टि दौड़ाने लगे । इसी समय उन्होंने चैत्यके मध्यमें कीर्तिधर नामक महामुनिको देखा । उस समय विद्याधरोंने कहा,—“हे स्वामी ! ये महामुनि साल भरका उपवास लेकर कमौका क्षय कर केवली-ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, इसलिये आप इनके चरणोंकी घन्दना कीजिये ।” यह सुनतेही उन्होंने परिवार सहित बड़े आनन्दके साथ उन केवलीकी घन्दना की और शुद्ध पृथ्वीपर बैठकर केवलीकी मनोहर वाणी श्रवण करने लगे । केवली ने कहा,—

मिथ्यात्वमग्निरिति, कषाया दुःखदायिनः ।

प्रमादा दुष्टयोगाश्च, बन्धने बन्धकारणम् ॥ १ ॥

धर्मात्—“मिथ्यात्व, अग्निरिति, कषाया, प्रमाद और दुष्ट योग ये पाँचों बन्धनके कारण और परिणाममें दुःख देनेवाले हैं ।”

“हे भग्य प्राणियो ! ये पाँचों सांसारिक जीवोंके कर्मबन्धके कारण

हैं। पहला कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वका अर्थ सत्य-देव, सत्य-गुरु और सत्य-धर्मके ऊपर धृष्टा न होना है। दूसरा कारण अवि-रतिका तनिक भी त्याग नहीं करना है। तीसरा कारण कपाय अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ करना है। चौथा कारण प्रमाद, जिसके चार भेद हैं। इनमें पहला प्रमाद, काष्ठ तथा अन्नसे उत्पन्न दोनों प्रकार के मर्घोंका सेवन करना है। दूसरा प्रमाद है,—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पाँच इन्द्रियोंके विषय। तीसरा प्रमाद है,—निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि—ये पाँच प्रकारकी निद्राएँ। चौथा प्रमाद है,—राज-कथा, देश-कथा, स्त्री-कथा और भक्त- (भोजन) कथा—ये चार प्रकारकी विकथाएँ। ये चारों प्रकारके प्रमाद चौथे बन्धके कारण होते हैं। दुष्ट योगका अर्थ है—मन, घबन और कायाके अशुभ व्यापार। ये पाँचवें बन्धके कारण होते हैं। इन सब पाप-बन्धोंके कारणोंका त्यागकर, मोक्षके सुख देनेवाले धर्ममें मति करनी चाहिये।”

इस प्रकारकी देशना ध्वजकर, राजा दमितारिकी पुत्री कनकध्रीने विनय-पूर्वक कीर्त्तिधर मुनिसे पूछा,—“हे मुने ! मेरा अपने भाई-बन्धुओंसे जो वियोग हुआ और मेरे पिताकी मृत्यु हो गयी। इसका क्या कारण है ? कृपाकर बतलाइये।” यह सुन, मुनिने कहा,—“हे भद्रे ! तुम अपने बन्धु-वियोग और पिताकी मृत्यु आदिके कारण चुनो,—

“घातकोखण्ड नामक द्वीपमें, जो पूर्व भरतक्षेत्रमें, शङ्खपुर नामका नगर है, वह बड़ी समृद्धिवाला है। उस नगरमें धौदत्ता नामकी एक निर्धन स्त्री रहती थी, जिसके कोई सन्तान नहीं थी। वह दूसरोंके घर काम-घन्था करके अपना पेट पालती थी। एक बार उसने दृष्टितासे पीड़ित होनेपर भी मुनिसे धर्म ध्वजकर धर्मचक्रवाल नामक तप किया। उस तपमें पहले और पीछे “अष्टम” करना होता है और मध्य-में सैंतीस उपवास करने होते हैं। इसके बाद तप सङ्पूर्ण होने पर शक्तिके अनुसार देव और गुरुकी भक्ति करनी होती है। उस घेचारीने ठीक विधिसे अनुसार तप कर, पारणाके दिन सब किस्तीको मनोहर

भोजन भादि दिया । जिन-जिन गृहस्थोंके यहाँ यह काम किया करती थी, उन लोगोंने भी उसकी तपस्या देखकर, उसे ये जितना भोजन-वस्त्र सदा देते थे, उससे तुगुना दे डाला । इससे उसके पास कुछ धन जुड़ गया । एक दिन उसके घरकी एक दीवार गिर पड़ी, जिसमेंसे बहुत धन निकला । उस धनको लेकर उसने उद्यापन (उजमना) प्रारम्भ किया तथा जिनवैत्योंकी विशेष पूजा की । अन्तमें उसने साधर्मिकयात्सल्य किया । उसी दिन उसके घर पर महीने भरसे उपवास किये हुए सुमत्त नामक महामुनि पधारे । श्रीदत्ताने तत्काल उन्हें बड़ी भक्तिके साथ शुद्ध भोजन कराया और पीछे भक्तिपूर्यक मुनिकी यन्त्रणा की । इस प्रकार धर्मका प्रत्यक्ष फल देखकर उसने मन-ही-मन हर्षित होने हुए मुनिसे धर्मका रहस्य पूछा । मुनिने कहा,—“हे भद्रे ! इस समय यहाँ पर धर्मका विचार करनेका नहीं है । यदि तुम्हें धर्मका रहस्य जानना हो, तो भवसरके समय उपाधयमें जाकर विस्तारपूर्यक धर्मदेखना श्रवण करो ।” यह कह, अपने स्थानपर जाकर, मुनिने विधिपूर्यक पारणा किया । इसके बाद जिस समय मुनि स्वाध्याय-ध्यान कर बैठे हुए थे, उसी समय मौक्त देखकर नगरवासी आगोंके साथ-ही-साथ श्रीदत्ता भी उपाधयमें आ पहुँची और मुनिकी प्रणाम कर, उक्ति स्थानमें बैठ रही । मुनिने उसे धर्मलामकारी भारीपाई दिया । तदनन्तर श्रीदत्ता और नगर-निवासियोंके प्रतिबोधके लिये उन्होंने धर्म-देखना आरम्भ की । उसमें उन्होंने कहा,—

“अथमर्थो योऽनर्थं-इति निश्चयनामिना ।

माधर्मीया अन्धिमन्त्रा, धर्मोक्षेप विनेकिना ॥ १ ॥”

अर्थात्—“यही अर्थ है और मन्त्र अनर्थ है—इस प्रकारके निरपवसे शोभित विवेकी पुरुष धर्ममें ही अपनी अन्धिमन्त्राको भावित कर गमने हैं, अर्थात् यही मोष गमने हैं, कि अन्धिमन्त्रा-पर्यन्त धर्मका पचार करने योग्य है ।”

द्विवेकी पुरुषोंको अपने मनमें यह विचार करना चाहिये, कि पर धर्म-वृत्ति करके (यदि ठीक-ठीक देखिये तो) धर्मका आराधन करना ही आरम्भकर्तव्य है । इसके निवा और सब आसारिक व्यापार अनर्थके

मूल साक्षात् अनर्थके रूप ही है । ऐसा निश्चय करके उसी जीवोंको अपनी भस्मि-मज्जाको भी धर्मसे ही प्राप्त करना चाहिये ।”

यह सुन धीरुजाने पूछा,—‘हे भगवन् ! धर्म तो भस्मो है, उसमें भस्मि-मज्जा कैसे प्राप्त की जा सकती है ?’ यह सुन, सुमन मुनिने धीरुजा तथा अन्य पुरजनोंको पाण्डित्य अर्थको निन्द करनेवाली यह कथा कह सुनायी,—

नरसिंह राजर्षि की कथा

“उज्जयिनी-नगरीमें जितरावु नामके राजा थे । उनकी स्त्रीका नाम धारिणी था । उनके पुत्रका नाम नरसिंह था । जब यह राज-कुमार क्रमशः सब कषायोंका अभ्यास कर युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसका विवाह पत्नीस मनोहर रूपवती कन्याओंके साथ कर दिया । एक समयकी बात है, कि जाड़ेके दिनोंमें एक जंगली हाथी नगरमें आकर उपद्रव करने लगा । वह हाथी मर्दके मारे मतवाला हो रहा था, उसका रङ्ग शीशकी तरह सफ़ेद था, उसका शरीर पर्वतकी तरह पड़े भारी झोल-झोलवाला था । वह यमराजकी तरह लोगोंको दुःख दे रहा था । उस हाथीको देखकर डरे हुए लोगोंने राजाके पास जाकर फ़र्याद की । यह सुनकर राजाने उसका उपद्रव दूर करनेके लिये स्वयं अपनी सेना भेजी ; पर जब यह बलवती सेना भी उस जंगली हाथीका उपद्रव न रोक सकी, तब राजा स्वयं तैयार हुए और वीरोंकी सेना साथ ले, उस हाथीकी तरफ जाने लगे । इसी समय राजकुमार नरसिंहने उन्हें रोका और आपही सैन्य समेत उस हाथीको मर्दन करनेके लिये चल पड़े । पास पहुंचकर राजकुमारने उस नी हाथ लम्बे, सात हाथ ऊंचे, तीन हाथ चौड़े, लम्बे दांत और लम्बी सूँड़वाले, छोटी पूँछवाले, मधुकी भाँति पीले-पीले लोचनोंवाले और सारे शरीरमें एक सौ चालीस लक्षणोंसे युक्त हाथीको देखा । तदनन्तर

गजकी घिघामें निपुण कुमारने कमो सामने जाकर, कमी पीछे हटकर और कमी उछलकर उस हाथीको हिरान कर मारा और अन्तमें उसे घशमें कर लिया । तदनन्तर उस पेशाबत जैसे हाथी पर सवार हो नरसिंहकुमार इन्द्रकी शोभा धारण किये हुए उसे फूलबानेमें ले आये और उसे आलान-स्तम्भमें बांध दिया । उसके बाद हाथीसे नीचे उतर कर उन्होंने उस हाथीको आरती उतारी और घिनघसे तन घने हुए पिताके पास आये । पिताने हर्यपूर्वक उनको आलिंगन कर अपने मनमें विचार किया,—“मेरा यह पुत्र राज्यका भार वहन करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ हो गया है, इसलिये इसीके ऊपर राज्यका भार सौंप कर मुझे संयमका ही राज्य स्वीकार करना चाहिये ।” ऐसा विचार कर राजाने सब मन्त्रियों, सामन्तों और पुरजनोंके सामने शुभमुहूर्त्तमें नरसिंहकुमारको अपनी गद्दी पर बैठा दिया और आपने जयन्धर शुद्धसे दीक्षा ले ली ।

राज्य पाकर राजा नरसिंह बड़े न्यायके साथ प्रजाका पालन करने लगे । एक समयकी बात है, कि एक बड़ा भारी मायाघो चोर, जो किसीको दिखलाई नहीं देता था और किसीसे पकड़ा नहीं जाता था, उस नगरमें आया और उसने किननेही घरोंमें कई बार चोरी की । नगरके महाजनोंने यह बात राजाके कान तक पहुँचायी । राजाने उस चोरको पकड़ कर दण्ड देनेके लिये कोतवालको हुक्म दिया ; पर वह चोर कोतवालसे नहीं पकड़ा गया । उल्टा और भी नगरवालोंको तंग करने लगा । इस पर महाजनोंने फिर राजाके पास फ़र्याद की,—“हे देव ! इस दुष्ट चोरने आपके समस्त नगरमें हलचल सी मचा रखी है । यह रातको ज़रदस्ती जवान और खूबसूरत औरतोंको पकड़ ले जाता है । इसलिये आप कृपाकर हमें ऐसी कोई जगह बन-लाइये जहाँ हम इस उपद्रवसे बचे रहें ।” उनकी ऐसी बातें सुन, कोषसे धर-धर काँपते हुए राजाने कोतवालको बुलाकर कहा,—“रे दुष्ट ! तू बैठा-बैठा मनमानी ननलयाह लाया करता है और नगरकी रक्षा

नहीं करता ? इसका क्या कारण है ?" इसतर महाजनोंने कहा,—“हे नाथ ! इसने इस बेचारेका क्या दोष है ? वह चोर तो एक पूरी पलटनके गिरफ्तार करने पर भी गिरफ्तार होनेवाला नहीं है ।” यह सुन, राजाने महाजनोंसे कहा,—“बच्छा, देखो, मैं इसका उचित दण्ड करता हूँ ।” यह कह, राजाने महाजनोंको बिदा कर दिया ।

इसके बाद राजा निजारीका घर बनाये, उस चोरकी तलाशमें महलसे बाहर निकले और अनेक शंकास्थानों और गुप्तस्थानोंमें घूमने लगे । पड़ते दिन वे नगरके बाहर बहुत घूमा किये ; पर किसी जगह वह चोर न दिखाई दिया । दूसरे दिन सन्ध्या समय राजा नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे, इसी समय उन्होंने एक गेरुआ वस्त्र पहने तथा रास्तेकी धूल सारे कड़ुमें लपेटे हुए त्रिदण्डकी भांति देखा । उसके पास आनेपर राजाने उसकी प्रज्ञान किया । त्रिदण्डोंने पूछा,—“भरे ! तू कहाँसे आ रहा है और कहाँ जायेगा ? तब मतलब क्या है ?” यह सुन, निजारीका घेरा बनाये हुए राजाने कहा,—“मगध ! मैं द्रव्यके लिये बहुतसे देश घूम आया ; पर मुझे कहीं धन नहीं मिला । इससे मैं बहुत ही चिन्ताग्रस्त हो रहा हूँ ।” यह सुन, उस त्रिदण्डोंने कहा,—“बड़ोही भाई ! यह तो कइो, तुमने धनकी खोजमें किन-किन देशोंकी सैर की ?” राजाने कहा,—“यों तो मैं बहुतसे देशोंमें घूमा हूँ, तो भी जो थोड़े-बहुत नाम सुने पाद है, वे तुम्हें बतलाये देता हूँ । हे त्रिदण्ड ! मैंने वह लाट-देश भी देखा है, जहाँकी खिचाँ एकही वस्त्र पहनती है । उस देशके प्रायः सभी लोग मधुर-भाषी हैं और किसीको ‘बात’ करते हैं । मैंने सौराष्ट्र-देश भी देखा है । वहाँ सभी कैथोवाली, मधुर स्वरवाली तथा कन्दल पहननेवाली महिलाओंकी खिचाँ दिखाई देती है । इसके सिवा मैंने कडुप-देश भी देखा है । वहाँ शालि-धानही विशेष कर खाया जाता है । मगर-बेलके पत्र और फलोंसे सारा देश भरा हुआ है । इसी तरह मैंने गुजरात, मेघनद और मालव इत्यादि बहुतसे देशोंमें घूमन किया, वहाँ

भाचार देखे ; पर कहीं भी मुझे धन नहीं मिला । यह सुनकर उम त्रिदण्डीने अपने मनमें विचार किया,—“यह आदमी सचमुच कोई पर-देशी और धनका इच्छुक मालूम पड़ता है ।” ऐसा विचार कर उस त्रिदण्डीने कहा,—“हे पणिक ! यदि तू मेरी बात मानकर चले तो थोड़े ही दिनमें मनचाछित फल पा जाये ।” इसपर राजाने कहा,—“हे त्रिदण्डी ! जो कोई अपना चाछित फल देता है, उसकी आज्ञामें तो मनुष्य रहता ही है ।” यह सुनकर त्रिदण्डीने कहा,—“मुसाफ़िर ! देख, रातका समय हो गया है, जिसमें परखी-नामन करनेवालों और चोरोको अपना मनलभ पूरा करनेका खूब मौका मिलता है । इन लोगोको यह समय बहुत पसन्द है । अतएव तू यहीं हाथमें खड्ग लिये खड़ा रह । मैं नगरमें जाकर किसी धनी मनुष्यके घरसे बहुत सा धन लिये आता हूँ ।”

उसकी यह बात सुन, राजाने अपने मनमें सोचा,—“हो न हो, यही वह चोर है । तो फिर क्यों नहीं मैं इसी खड्गसे इसका मिर उतार लूँ । अथवा देखूँ तो सही, यह क्या करता है ?” ऐसा विचार कर राजाने खड्ग बाहर निकाला, जिसे देखकर योगीने अपने मनमें विचार किया,—“इस खड्गसे तो यह राजा मालूम पड़ता है, तब तो जैसे ही घेसे, मुझे इसे मार ही गिराना चाहिये ।” ऐसा विचार कर, वह कुछ दूर भागे बढ़कर फिर पीछे लौट आया । तब राजाने कहा,—“अब क्यों देर कर रहे हो ?” उसने जवाब दिया,—“अभी नगरके लोग जागते होंगे, इसलिये थोड़ी देर यहीं विध्राम करता हूँ ।” यह कह, कुछ देर विचार कर उसने कहा,—“हे पणिक ! यहाँ पत्तोंकी सेत विछाओ ।” यह सुन, राजाने उसके लिये तत्काल ही पत्तोंकी सेत विछायी और दूसरी अपने लिये तैयार की । उन्हीं सेतोंपर दोनों सो रहे । उम समय त्रिदण्डीने सोचा,—“जबनक मैं जागना शुरूगा, तबनक यह कामी न सोयेगा ।” इसलिये वह चोर नींदका बहाना कर सो रहा । तब राजाने धीरे-धीरे उठकर अपनी जगह पर काठका

एक कुन्दा रखकर उसपर कपड़ा फैला दिया और आप एक झाड़में जाकर छिप रहे तथा हाथमें खड्ग लिये रहे । थोड़ी देर बाद उस चोरने उठकर राजाके भ्रममें उस लकड़ीके कुन्देपर खड्गका प्रहार किया, जिससे लकड़ी दो टुकड़े हो गयी । प्रहारके शब्दसे उसे कुछ खुटका हुआ, इसलिये उसने उसके ऊपरसे कपड़ा हटाकर जो देखा, तो महज लकड़ीका कुन्दा दिखाई दिया । कोई आदमी नज़र नहीं आया । यह देख, उसने सोचा,—“अरे ! उस धूर्त्तने तो मुझे खूब छकाया !” वह इसी तरह बैठा हुआ हाथ मल-मल कर पछता रहा था, कि इतनेमें राजाने उससे कहा,—“रे दुष्ट ! आज तेरा अन्त-समय आ पहुँचा है । इसलिये यदि तुझमें तनिक भी पुरुषार्थ हो, तो मेरे सामने आ जा । यह सुन बहुत अच्छा, आता हूँ, कहता हुआ वह चोर राजाके पास आकर युद्ध करने लगा । दोनों खूब जमकर लड़े । दोनों एकसे बलवान् और युद्ध-कलामें कुशल थे, इसलिये बड़ी देर तक लड़ाई होती रही । अन्तमें राजाने उस त्रिदण्डोंके मर्मस्थानमें चोट पहुँचाकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया । उस प्रहारसे व्याकुल होकर तस्करने राजासे कहा,—“हे घोर योद्धा ! मैं ही वह चोर हूँ, जिसकी चोरियोंसे यह सारा नगर आरौ आ गया था । आज मेरी मृत्यु आ गयी । परन्तु हे घोर ! मेरी एक बात सुनो । इस देव-मन्दिरके पीछे एक बड़ा सा पाताल-मन्दिर है । उसमें बहुतसा धन पड़ा हुआ है । वहीं पर मेरी बहन धनदेवी तथा इस नगरकी वे सब स्त्रियाँ भी हैं । जिन्हें मैं चुरा लाया हूँ । हे घोरवर ! तुम मेरी तलवार लिये वहीं चले जाओ । शिलाके विचरकी राह तुम मेरी बहनको मेरी तलवार दिखाकर मेरे मरनेकी खबर सुना देना । बस, वह तुम्हें भीतर ले जायेगी । उस समय तुम वह सब धनादि ले लेना और जो कुछ जिसका हो, उसे दे देना ।” यह कह कर वह चोर मर गया ।

उसके बाद रातको ही राजा उस पाताल-मन्दिरमें जाकर उसकी बहनसे मिले । उसने बड़े मीठे षवनोंसे राजाका स्वागत किया ।

और साध्वी बोली,—“तुम थोड़ी देर इसी पलङ्ग पर बैठो । यहाँका सब कुछ तुम्हारा ही है । मेरा पापी भार्गव अपने पापोंके फलसे ही इस तरह मारा गया ।” यह कह, उस खोरकी बहनने उस भूगर्भ-मन्दिरका द्वार बन्द कर दिया । उस समय राजाने खोरकी बहनको बार-बार अपनी ओर कननियोंमें देण, सराहुित होकर सोचा,—“इस दुष्टाका विध्वास करना ठीक नहीं । बिना विचारे एकदम इसके पलङ्ग पर बैठना तो और भी अनुचित है । हो सकता है, कि इसमें भी कोई कपट हो ।” ऐसा विचार कर ये शय्याके ऊपर तकिया रखकर दीयेकी ऊँजियालीमें हट कर भँधेरेमें बड़े हो रहे । इनमें यह काळ-काँटोंपर बड़ी हुई शय्या बन्सी खींचनेही दूट गयी और उसपर रखा हुआ तकिया शय्याके नीचेवाली गहरे अन्धकूपमें गिर पड़ा । राजा सारी कपट रचना समझ गये । खोरकी बहनने तकियेके कुर्पमें गिरनेकी भायाज सुन कर अपने मनमें यही समझा, कि शय्यापर बैठा हुआ पुरख कुर्पमें गिर पड़ा । यही सोचकर उसने हँसने और ताली पीटने हुए कहा,—“बहुन ठीक हुआ । अपने भार्गवकी जान लेनेवालेको मैंने भी जहरनुम मेज दिया ।” यह सुन, राजाने उसके पीछेमें भाकर उसके बाल पकड़ लिये और कहा,—“भरी रौंड़ ! ले इस करनीका मज़ा तू भी देख और अपने भार्गवके पास जा ।” यह सुनने ही वह रोने लड़-लड़ाने लगी । राजाको दया भा गयी, उन्होंने उसे छोड़ दिया । इसके बाद उस पानाळगृहका द्वार खोल कर राजा अपने घर चले आये ।

प्रान्त-पाल राजाने नगर भरके लोगोंको वहाँ से जाकर जो-जो चीजें त्रिमकी थीं, उन्हे दे डाली और उस पानाळ-गृहको एकदम हटा दिया । त्रिम त्रिपरीको वह बार हरण करके वहाँ ले गया था, उन्हे भी लोग राजाके हुक्मसे मारने मारने घर ले गये । परन्तु उस त्रिपरी पर हम बोलने ज़रूर कर रखा था, इसलिए इसका मन मारने घर पर नहीं मारना पा और वे बंजल हो हाथर हमी अन्धकार काटी जाया करती थीं ।

लोगोंने जब यह बात राजासे कही, तब उन्होंने एक जादू-टोनेके जानने-वाले वैद्यको बुलाकर इसका उपाय पूछा । यह सुन, वैद्यने कहा,—“हे राजन् ! उस चोरने इन स्त्रियोंको कोई ऐसा चूर्ण खिला दिया है, जिससे ये परवश हो गयी हैं । यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं भी इन्हें कोई चूर्ण खिला दूँ, जिससे ये फिर अपनी असली हालतमें आ जायें ।” राजाने हुक्म दे दिया । वैद्यने उन स्त्रियोंको अपना चूर्ण खिलाकर उनपरसे जादूका असर उतार डाला ; परन्तु उनमेंसे एक स्त्री ज्यों-की त्यों रही । इसपर राजाने फिर उसी वैद्यको बुलाकर इसका कारण पूछा । वैद्यने कहा,—“हे राजन् ! उस चोरके दिये हुए चूर्णका प्रभाव किसी-किसी स्त्रीकी त्वचा तक और किसी-किसीके मांस-रुधिर तक ही पहुँचा था : पर इस स्त्रीकी अस्ति-मज्जामें भी वह प्रवेश कर गया है, इसीलिये उन पर तो मेरी दवा कारगर हुई ; परन्तु इसपर उसका कुछ असर नहीं हो सकता ।” यह सुन, राजाने पूछा,—“तो क्या इसके लिये कोई और उपाय नहीं है ?” वैद्यने कहा,—“यदि उसी चोरकी हड्डी घिसकर इसे पिला दो जाये, तो यह भी अपने स्वभावको प्राप्त हो जायेगी, अन्यथा नहीं ।” यह सुन, राजाने वैसाही किया । वह स्त्री भी जादूके प्रभावसे छुटकारा पा गयी । सब लोग सुखी हो गये, राजा नरसिंह भी बड़े सुखसे राज्य करने लगे ।

इसके बाद फिर वही जयन्धर आचार्य वहाँ पधारे । इन्हींसे राजा-के पिता जितशत्रुने वीक्षा ली थी । उनके आगमनका समाचार सुनकर राजा नरसिंह उनकी वन्दना करने गये और उनसे धर्म-कथा ध्वज कर, प्रतियोध प्राप्त कर, अपने पुत्र गुणसागरको राज्यपर बैठाया और वैराग्य-युक्त होकर चारित्र्य ग्रहण कर लिया । इसके बाद उग्र तपस्या कर, कर्मका क्षय करनेके अनन्तर राजर्षि नरसिंहने मोक्ष-पदवी प्राप्त कर ली ।

नरसिंह राजर्षि-कथा समाप्त ।

इस प्रकारकी कथा सुनाकर साधु सुप्रतने श्रीदत्तासे कहा,—“हे भद्रे ! जिस प्रकार उस योगी पेश-धारी खोरके चूर्णके प्रभावसे उस स्त्रीकी अस्थि-मज्जा भी घासित हो गयी थी, उसी प्रकार तुम भी कन्य-वृक्ष तथा चिन्तामणिकी माँति धाञ्छित फलके देनेवाले तथा जिसका फल तुमने साक्षात् देख लिया है, उसी धर्मसे अपनी आत्माको घासित कर लो और अपने चित्तमें धर्मके ऊपर निश्चल प्रीति उत्पन्न कर लो ।” यह श्रुन, श्रीदत्ताने उन्हीं मुनिवरसे शुद्ध समकित सहित श्रावक-धर्म ले लिया । मुनि अन्यत्र विहार करने चले गये । श्रीदत्ता घर आकर विधि-पूर्वक धर्मका पालन करने लगी ।

एक दिन कर्म-परिणामके प्रभावसे श्रीदत्ताके मनमें यह सन्देह हुआ, कि मैं इतने प्रयत्नसे जिनधर्मका पालन कर रही हूँ, पर न मालूम, इसका कोई फल होगा या नहीं ? इसी प्रकार सन्देह करती हुई एक दिन श्रीदत्ता वायु पूरी होनेपर मृत्युको प्राप्त हुई । इसके बाद वह कहाँ उत्पन्न हुई, उसका हाल सुनो,—

“इसी विजयमें धैताढ्य-पर्वतके ऊपर सुरमन्दिर नामक नगरमें कनक पूज्य नामके राजा राज्य करते थे । उनकी स्त्रीका नाम वायुवेगा था । उनके कीर्त्तिधर नामका एक पुत्र भी था । यही मैं हूँ । मेरी स्त्रीका नाम अनल-वेगा था । उसने हस्ती, कुम्भ और वृषभ—ये तीन स्वप्न देखकर दमितारि नामक पुत्र प्रसव किया । वह प्रतिभासुदेव हुआ । जब दमितारि युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब मैंने उसका विवाह कित-नीही कन्याओंके साथ कर दिया । इसके बाद मैंने उसे राज्यपर बैठा-कर चारित्र्य ग्रहण किया । दमितारिकी एक स्त्रीका नाम मन्दिरा था । उसीके गमसे श्रीदत्ताके जीवका भयतार हुआ । यही तुम कनकश्री कहला रही हो । पूर्ण भवमें तुमने एक बार धर्मके विषयमें सन्देह किया था । इसीलिये तुम्हें बन्धु-वियोगादिक दुःख प्राप्त हुए ।”

इस प्रकार कनकश्रीने जब अपने पितामह मुनिके मुँहसे अपने पूर्ण भवका वृत्तान्त सुना, तब उसे संसारसे घेराव्य हो गया और उसने दाघ

जोड़कर अमराजित तथा अनन्तवीर्यसे कहा,—“दे श्रेष्ठ पुरुषो ! यदि तुम आकाशो, तो मैं चारित्र्य ग्रहण कर लूँ ।” उन्होंने कहा,—“एक घार सुभगापुरीमें चलो । यहाँ जानेपर स्वयंप्रभ नामक जिनेश्वरसे दीक्षा ग्रहण कर लेना ।” यह सुनकर कनकधारी सन्तुष्ट हो गयी । बलदेव और वासुदेव भी उन कीर्तिधर मुनिको प्रणाम कर, विमानपर बैठे हुए उस कन्याके सहित अपनी पुरीमें चले आये

एक घार धीस्वर्यप्रभ तीर्थङ्कर पृथ्वीपर विहार करते हुए सुभगापुरीमें आये । उसी समय बलदेव और केशवने वहाँ जाकर, प्रभुकी वन्दना कर, कनकधारी सहित धर्म ध्वज किया । कनकधारी पहलेसे तो विरक्त थी ही, जिनेश्वरकी वाणी ध्वजकर उसे और भी घेराम्य हो आया और उसे मत ग्रहण करनेकी बमिलाया उत्पन्न हुई । बलदेव और वासुदेवने बड़े हर्षके साथ उसका दीक्षा-महोत्सव किया । दीक्षा ग्रहण कर, कनकधारी, एकावली आदि उत्कृष्ट तप करने लगी । तदनन्तर शुक-ध्यान करती, चार घाती कर्मोंका क्षयकर, केवल-ज्ञान प्राप्त कर उसने मोक्ष पा लिया ।

अमराजित नामक बलदेवकी स्त्रीका नाम विरता था । उसीके गर्भसे उसके सुमति नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी । वह बचपनसे ही जीवा-जीवादि तत्त्वोंके जाननेमें निपुण, तप-कर्मोंमें उद्यमशील और धीजिनधर्ममें प्रीति रखनेवाली थी । एक दिन उपवास और पारणामें समता रखनेवाले इन्द्रियोंके दमन करनेवाले और क्षमा गुणसे शोभित वरदत्त नामक मुनि उसके घर आये । उस समय वह उपवासके अन्तमें पारणा करनेके लिये घालमें मनोहर भोजन परोसे हुए थी । उसीमें से उसने शुभ-भावनासे चुक होकर मुनिको भोजन कराया । उसी समय उत्तम मुनिको दान करनेके प्रभावसे उसे तत्काल उसकी भक्तिसे रजित देवोंने पाँच दिव्य प्रकट किये । मुनि अपने स्थानको चले गये । यह आश्चर्य देख, बलदेव और वासुदेव विचार करने लगे,—“यह कन्या बड़ी पुण्यशालिनी है, इसलिये धन्य है ।” ऐसा विचार कर, उन्होंने कन्याको विवाह

योग्य हुई देण, मन्त्रियोंके साथ विचार कर, बड़े आनन्दके साथ स्वयं घर-मण्डप रचाया । इसके बाद चारों दिशामोंमें पत्र भेज कर उन्होंने सब राजाओंको बुलवाया । स्वयंघरके समय सब लोग आकर मण्डपमें बैठ रहे । इसके बाद कन्या भी सब शृङ्गार किये, हाथमें घर-मन्ना लिये शुभमुहूर्तमें मण्डपमें आयी । इतनेमें उसके पूर्व भयभीत बहन-देवता, जिन्होंने उसने पूर्व भयमें अपनेको प्रतिबोध देनेका संकेत किया था, भा पहुँची और उसको घन लेनेके लिये प्रतिबोध देने लगी । इसमें वह प्रतिबोध प्राप्त कर, दृढ़ वैराग्यवती हो गयी । बस, स्वयंघरमें भाये हुए सब राजा लोगोंमें विश्वास माँगकर, वह बलदेव और केरायकी साम्प्रति ले, पाँच सौ कन्याओं सहित संयम आङ्गीकार कर, सुमना नामक अपनी गुरुमात्रीके पास आकर रहने लगी । तदनन्तर निर्मल तपस्या कर, क्षरकध्रेणी पर आरुढ़ हो, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, भग्न प्राणियोंको प्रतिबोध देकर सुमति साधवी होकर मोक्षको प्राप्त हुई ।

असम्भार्य्य वामुदेव, थौरामी लाला पूर्वका आयुष्य पूर्ण कर, मरणको प्राप्त हो, निष्काशित कर्मके योगसे, बपालीन १ शर वर्षके आयुष्यवाले नरकमें जाकर नारकी हुए । राजा मरगाजिन बहुत दिनों तक बन्धुमें वियोग हो जानेके कारण अत्यन्त शोकाकुल रहे । उस समय धर्ममें निपुण एक मन्त्रीने उनमें कहा, — “हे स्वामिन् ! जब भाग्य जैने महापुरुष भी मोक्षकी प्रशान्तमें छूटे जाते हैं, तब ऐसे-गुण किमके पास जाकर रहेगा ?” वह मृत, बलदेवका पुत्र बहुत कुछ दूर हुआ । एक दिन यमोदर नामक गुणधर महाराज वहाँ भा पधारे । उनके साथ मनका पुलायन श्रवण कर, राजा मरगाजिन को यह हठार राजाओंके साथ उनकी सम्प्रति करने गये । वहाँ पहुँच, राजपारकी पत्न्या कर, वे लोग हाथ जोड़े हुए, उभिन स्वागत पर बैठ गये । उस समय राजपार महाराजने इस प्रकार देवता की, — “इष्ट जनोंके वियोगमें उन्मत्त होते बड़े शोकका अनुभूतियोंको चाहिये, कि स्वयं दे बर्षोंके पूर्व काशीन इसकी प्रशान्तकी उम्मा की है । इष्ट निर्वाण की महाराजों

पीड़ित प्राणियोंको सुधुतमें^६ बतलाये हुए श्रेष्ठ धर्मोपधका सेवन करना चाहिये ।^१ इस प्रकार गणधरकी वैशना ध्वज कर, अपराजित बल-देव, शोक त्याग कर, गणधरकी चन्दना कर, घर आये और अपने पुत्रको राजगद्दी पर बैठा कर राजाओंके समूहके साथ उन्हीं गणधरसे दोक्षा ले ली। इसके बाद बहुत दिनों तक कठोर तपस्या करनेके पश्चात् अनशत-प्रतका अवलम्बन कर, शुभ ध्यान करते हुए, मृत्युको प्राप्त होकर अच्युत-देवलोकमें जा देवेन्द्र हुए ।

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें घैताद्वय-पर्वतके ऊपर उसकी दक्षिण श्रेणीमें गगन-वल्लभ नामका नगर है। उसमें किसी समय मेघनाहन नामक विद्याधरोंके राजा राज्य करते थे। उनको रूप-लावण्यमयी भार्याका नाम मेघमालिनी था। अनन्तधीर्यका जीव ऊपर कहे हुए नरक-मेंसे निकलकर उसी रानीको कोखमें आया और समय आनेपर वही मेघनादके नामसे उनका पुत्र प्रसिद्ध हुआ। पामराः वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उसके पिताने उसकी शादी बहुतसी राजकन्याओंके साथ कर दी। कुछ काल व्यतीत होनेपर राजाने उसीको अपना राज्य देकर आप दीक्षा ग्रहण कर ली।

राजा मेघनाद, दोनों श्रेणियोंके स्वामी हुए। उन्होंने घैताद्वय-पर्वत पर बसे हुए एक सौ दस नगरोंको अपने पुत्रोंके बीच बांट दिया। एक दिन राजा मेघनादने मेघ-पर्वतके ऊपर जाकर शाश्वती जिन-प्रतिमाओं और प्रशस्ति-विद्याकी पूजा की। इतनेमें वहाँ स्वर्गवासी देवगण आ पहुँचे। वही अपराजितका जो जीव अच्युतेन्द्र हो गया था, वह भी आया। अच्युतेन्द्रने मेघनादको देख, स्नेहसे अपने पास बुला, उनको पूर्ण मद्यका सारा वृत्तान्त सुनाकर धर्मका प्रतिबोध दिया। इसके बाद वे (अच्युतेन्द्र) अपने स्थानको चले गये। परन्तु मेघनाद खेचरेन्द्रने

^६ इसी मानका एक बंदर पत्त है। इसमें रहने से कर्पास उग्न हुए कर्पास बना हुआ—आगम ।

उनके उपदेशसे घेराम्य-लाम कर, अमरसूरि नामक गुरुमें दीक्षा ग्रहण कर ली और नन्दन-यनमें जाकर उपव्रत करने लगे ।

अभ्यप्रीय प्रतिवासुदेवके पुत्र असुरकुमारमें उत्पन्न हुआ था । उसने मुनि मेघनादको देख, पूर्य भवका घेर याद कर, एक रातको प्रतिमाके पास रहनेवाले मुनिके प्रति बड़े-बड़े उपद्रव किये ; पर तो भी मुनि अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए । प्रातःकाल वे प्रतिमाको प्रणामकर, पृथ्वी-तलपर विहार करने चले गये । अन्तमें उन्होंने समाधि-मरण पाया और अज्युत-देवलोकमें जाकर देवता हुए ।





इसी जम्बुद्वीपके पूर्वे, महाविदेह-क्षेत्रमें, शीतोदा नदीके किनारे, मङ्गलावती नामक विजयमें, सिद्धान्त ग्रन्थोंमें वर्णित रत्न-सञ्जया नामकी शाश्वती नगरी वर्तमान है। वहाँपर प्रजाका क्षेम करनेवाले क्षेमङ्कुर नामके राजा राज्य करते थे। वे उग्रवेशमें रहनेवाले तीर्थङ्कुर थे। उनके रत्नमाला नामकी रानी थी। एक समयकी बात है, कि अपराजितका जीव घाईस सागरोपमका आयुष्य सम्पूर्णकर, अच्युत देवलोकके इन्द्रपदसे चूकर रत्नमालाकी कोखमें पुत्र-रूपमें आ उत्पन्न हुआ। उस समय सुख-पूर्वक शय्यापर सोयी हुई रानीने रातको हाथीसे अस्पर्श कर, निर्धूम अग्निपर्यन्त चौदह महास्वप्न देखे। पन्द्रहवाँ-यार उसने वज्रका दर्शन किया। उस स्वप्नकी यातको हृदयमें धारण किये हुए उसने प्रातः काल अपने स्वामीसे सारा हाल कह सुनाया। तब राजा क्षेमङ्कुरने उन स्वप्नोंकी यातपर मन-ही-मन विचार कर कहा,—“हे प्रिये! इन स्वप्नोंके प्रभावसे तुम्हें बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा।” यह सुनकर रानी बड़ी हर्षित हुई। इसके बाद समय पूरा होनेपर रानीने शुभ ग्रह-लग्नके समय पुत्र रत्न प्रसव किया। तत्काल दासियों-ने राजाके पास जाकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ दीं। राजाने हर्षकी अधिकतासे दासियोंको इतना धन दान कर दिया, जिससे उनकी जीवन-पर्यन्त जीविकाका निर्वाह होता रहे। तदनन्तर राजाने पुत्र-जन्मका उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया। रानीने पन्द्रहवाँ स्वप्न वज्रका देखा

था, इसलिये राजाने कुमारका नाम यज्ञायुध रखा । क्रमशः धार्त्रियों से लालित-पालित होते हुए राजकुमार आठ वर्षके हुए, तब राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास करनेके लिये कलाचार्यके पास भेज दिया । धीरे-धीरे कुमारने सब कलाएँ सीख लीं और युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब राजाने अनुपम, रूपवती लक्ष्मीवती नामक राजकुमारीके साथ उनका व्याह बड़ी धूमधामसे कर दिया ।

इसके बाद कितनाही समय बीत गया । तब मनन्तवीर्यका जीव अच्युत-देवलोकसे च्युत होकर कुमार यज्ञायुधकी पत्नी लक्ष्मीवतीकी कोखमें पुत्र-रूपसे उत्पन्न हुआ । समय पूरा होनेपर उसका जन्म हुआ । उसका नाम सहस्रायुध रखा गया । क्रमशः कलाओंका अभ्यास करते हुए वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ । उसका विवाह राजकन्या कनकश्री के साथ हुआ । उसीके साथ रहकर भोग-विलास करते हुए उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम शतबल रखा गया ।

एक दिन राजा क्षेमङ्कर अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रके साथ समामण्डपमें श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए थे । इसी समय वहाँ ईशान-कल्पयासी मिथ्यात्वके कारण मोह-प्राप्त चित्रखूङ नामका कोई देव आया । उसने राजा क्षेमङ्करके पास आकर कहा,— “हे राजन् ! जगत्में न कोई देव है, न गुरु है, न पुण्य है, न पाप है, न जीव है और न परलोक ही है ।” उसकी यह नास्तिकता भरी बात सुन, कुमार यज्ञायुधने उससे कहा,— “देव ! तुम्हारी यह नास्तिकताकी बातें उचित नहीं ; क्योंकि इसके तुम्हीं स्वयं प्रमाण हो । यदि तुमने पूर्व भवमें कोई पुण्य नहीं किया होता, तो देवत्वको नहीं प्राप्त होते । पहले तुम मनुष्य थे, भव देव हो । इससे यह सिद्ध होता है, कि जीव है । यदि जीव न होता, तो शुभाशुभ कर्मोंका उपाजन कौन करता ? और उन कर्मोंका भोग किसे होता ?” इस प्रकार यज्ञायुधकुमारने उसको जीवका अस्तित्व सिद्ध करके दिखलाया और उसके अन्य संशयोंको भी हेतु, युक्ति और दृष्टान्तोंसे छिन्न-मिन्न कर डाला, जिससे उसे बोध हो

गया । तब देवता ने प्रसन्न होकर कहा,— “हे कुमार ! आपने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया, जो मुझे नास्तिकता के कारण भवसागर में डूबने से बचा लिया । ” यह कह, उसने कुमार से समकित ‘सहित श्री-जिनधर्म’ बड़ोकार कर कहा,— “हे धर्म के उपकारक ! मैं आपकी कुछ भलाई करना चाहता हूँ । इसलिये कहिये, मैं क्या करूँ ? देवका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता । ” उसके ऐसा कहने पर भी जब कुमार ने पूरी निस्पृहता दिखलायी, तब देव ने स्वयं बहुत आग्रह करके उनको एक आभूषण दिया और उन्हें प्रणाम कर स्वर्ग में चला गया । वहाँ पहुँच कर उसने ईशानेन्द्र से यह सब हाल कह सुनाया । यह सुन, वज्रायुध के गुणों से प्रसन्न होकर ईशानेन्द्र ने यह जान लिया, कि कुमार भरतक्षेत्र के सोलहवें तीर्थद्वार होनेवाले हैं और अपने स्यान्तर घड़े हुए ही उन्होंने कुमार वज्रायुध की पूजा की ।

एक दिन वसन्त-ऋतु के उन्नति में सुदर्शना नामकी एक दासी ने श्री वज्रायुध कुमार की पूजा देकर कहा,— “हे देव ! लक्ष्मीवती देवी आपके साथ सुरनिरात नामक उद्यान में ब्रीड़ा करने की इच्छा कर रही हैं । ” यह सुन, कुमार वज्रायुध ने प्रेमपूर्ण हो, तत्काल अपनी सातवीं रानियों के साथ उसी उद्यान की यात्रा कर दी । वहाँ अनेक प्रजा-जनों की तरह-तरह की ब्रीड़ाओं में लगे हुए देखकर वे स्वयं भी रानियों के साथ-साथ ब्रीड़ा घाटी में प्रवेश कर अनेक ब्रीड़ा करने लगे । इसी समय एक सर्पान्त घटना घटी ।

पहले भरतक्षेत्र के भवन में वज्रायुध कुमार ने जिन इन्द्रिगारि नामक प्रनिरासुदेव की हस्तियाँ दी, वह संसार में परित्रमज करने हुए बहुत दिनों तक तदस्याका अनुष्ठान करने के पश्चात् स्थानर जाति का देव हो गया था । उसने वज्रायुध कुमार की अनेक ब्रीड़ा करने देख, पूर्व भवसे ही प्रेम में लिप्त हो, उनका विदात करने की इच्छा से एक बड़ा सा पर्वत उखाड़ कर उसी घाटी में फेंका और उसके नीचे पड़े हुए कुमार की बड़ी बड़ोढ़ी से अन्तर में बंध गया । कुमार वज्रायुध स्वयं

होनेवाले थे, इसलिये उनमें बड़ा बल था । वे दो हजार यज्ञों द्वारा अधिष्ठित थे । इसलिये वे तत्काल उस मागपाशको काट, पर्यंतको चूर-चूर कर, वेदांग शरीर लिये हुए घापीसे बाहर निकले और सब रानियोंके साथ घनमें क्रीड़ा करने लगे । इसी समय इन्द्र, महाविदेह में तीर्थद्वारकी सम्मना कर, शाश्वत तीर्थकी यात्रा करनेके लिये नन्दी-धर-क्षीपकी ओर चले जा रहे थे । उन्होंने यज्ञायुधको पराग तोड़, मागपाश काटकर बायलीसे बाहर निकलने देखा लिया । यह देख, आश्चर्यमें आ, इन्द्रने अपने ज्ञानका उपयोग कर यह जान लिया, कि वे माधीतीर्थद्वार हैं । यह जान, उन्होंने भक्तिपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की — “हे कुमार ! तुम धन्य हो । क्योंकि तुम्हीं इस भरतक्षेत्रमें कल्याण और शान्तिके देनेवाले धीशान्तिनाथके नामसे म्मोहदहमें तीर्थद्वार होनेवाले हो । ” इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र नन्दीधर-क्षीप चले गये । इसके बाद कुमार भी क्रीड़ा कर अपने परित्याग सहित घर आये ।

एक दिन पंचम देवलोक-वामी लोकान्तिक देवने आकर राजा क्षेमदुरसे कहा, — “क्यामिन् ! अब आप धर्मतीर्थका भयलम्पन करें । ” यह सुन, आना-दीक्षा-काल निकट आन, क्षेमदुर राजाने यज्ञायुध कुमारको राजगद्दी पर बैठाकर मायम्सरिक दान किया । धर्मके प्रणयें वास्ति प्रहृत कर, कुछ समय तक छत्रदेशमें विहार करते हुए घाली जमीनका क्षय कर, वे कैवल्य-ज्ञानको प्राप्त हुए । इसके बाद उन्होंने देवनाग्रीका समग्रमन्त्र स्थापित । उसमें बैठकर त्रिकेश्वर क्षेमदुरसे इसप्रकार देवता दी, — ‘ हे मन्त्र प्राणियों ! निराममि, कर्मद्वार और कामदेवकी तरह धर्मकी निराला सेवा करनी चाहिये । साथ ही इस धर्म की धूम, शील और दया आदिमें मयी मीति परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि बिना परीक्षा के यह आदर्श योग्य नहीं । जैसे कि वेदकमें दूध पीना बहुत गुणकारक कहाया गया है, वह सुन कर यदि कोई मूल्य भावका दूध पी जाय, तो उसका भोजन वह आर्षेयी

और बहुत खराब बीमारी पैदा हो जायेगी । इधर यदि कोई बुद्धिमान विचार कर गायका दूध पीये, तो वह उसके बलको बढ़ायेगा और उससे उसकी पुष्टि होगी । इसी प्रकार मनुष्यको विचारके साथ धर्म का आदर करना चाहिये । यदि बिना विचारे दूसरी तरहका कार्य किया जाये, तो अमृतान्नका विनाश करनेवाले राजादिककी भाँति वह बहुत बड़ा दोष उत्पन्न करता है । अर्थात् जैसे अमृत फलवाले आम्रवृक्ष का विनाश करनेवाले राजा आदिको पश्चात्ताप हुआ, उसीतरह उसको भी पश्चात्ताप होता है । यह सुन, सभाके सब लोगोंने जितेभरसे पूछा, 'हे प्रभु ! बिना विचारे काम करनेके कारण उन लोगोंको कैसे दोष हुआ, सो छपाकर कहिये ।' यह सुन, तीर्थङ्करने कहा,—'हे भव्य-जनो ! उनकी कथा इस प्रकार है, सुनो:—

'मालव-देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है । वह सारी पृथ्वीमें प्रसिद्ध है । उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम विजयश्री था । अपनी उस पटरानीके साथ विषय-सुख भोगते हुए राजा सुधसे राज्य कर रहे थे । एक दिन राजा सभामें बैठे हुए थे । इसी समय द्वारपालने आकर विनय-पूर्वक कहा,—'हे स्वामिन् ! आपके मन्दिरके द्वारपर देखनेमें राजकुमारोंकी तरह रूप-रंगवाले चार पुरुष आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं ।' यह सुन, राजाने कहा,—'हे प्रतिहार ! उन्हें शीघ्रही अन्दर ले आओ' इसके बाद द्वारपाल उन चारों पुरुषोंको राजसभामें ले आया । वे राजा को प्रणाम कर विनयसे नम्र बने हुए खड़े रहे । राजाने उन्हें बैठनेके लिये आसन आदि देकर सम्मानित किया और उन्हें देखकर मन-ही-मन यह सोचकर, कि ये तो मेरे ही वंशके मालूम पड़ते हैं, उन्हें पान आदि देकर उनका और भी आदर किया तथा पूछा,—'तुम लोग कहाँसे आ रहे हो और क्या चाहते हो ?' यह सुन, उनमें जो सबसे छोटा था, वह बोला,—'हे देव ! उत्तर-प्रदेशमें सुवर्ण-तिलक नामक एक श्रेष्ठ नगर है । उसमें वैरो मर्दन नामके राजा थे, जिनकी स्त्रीका

और उन दोनों टुकड़ोंको एक स्थानपर छिपाकर रख दिया । इसके बाद यह फिर अपने स्थानपर आकर सावधानीके साथ पहरा देने लगा । इसी समय उसने देखा, कि रानीकी छाती पर साँपके कधिरकी बूँद पड़ी है । यह देख, यह सोचकर कि कहीं इससे रानीके शरीरमें विष का प्रवेश न हो जाय, उसने हाथसे उन बूँदोंको पोंछ दिया । इसी समय एकाएक राजाकी मीढ़ टूट गयी और उन्होंने देवराजको रानीके स्तनोंपर हाथ फेरते देखा । इससे क्रोधमें आकर उन्होंने विचार किया,— “इस दुरात्माको मार ही डालना चाहिये ।” फिर विचारा,— “यह बलवान् है, इसलिये मैं इसे अकेला ही नहीं मार सकूँगा । अतएव और ही किसी उपायसे इस विश्वास-घातकको मार डालना चाहिये ।” शास्त्रमें भी कहा हुआ है,—

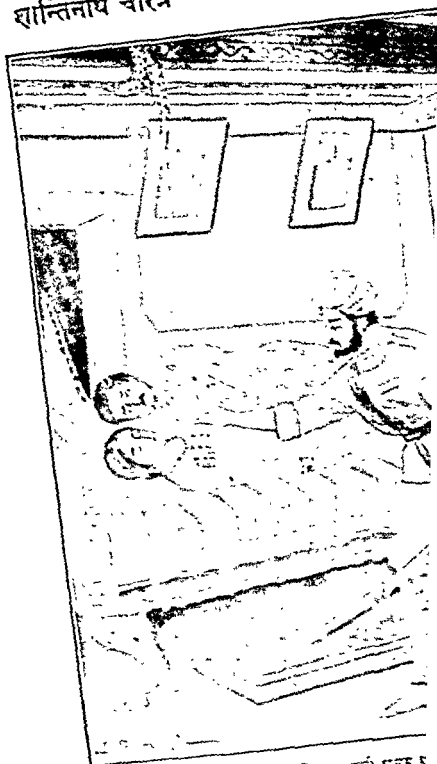
“आयुषो राज्ञ-चित्तस्य, धनस्य च धनस्य च ।

तथा स्नेहस्य देहस्य, नास्तिकालो विकुर्वताम् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“आयु, राजाके चित्त, धन, मेघ, स्नेह और देह—इन चीजोंमें विकार होते ढेर नहीं लगती ।”

क्रोधित राजा सोयेही हुए थे, कि इसी समय घड़ियालने रातके पहले पहरकी घंटी बजायी । बस, देवराजने अपनी जगह पर अपने छोटे भाई वत्सराजको बैठा दिया और आप अपने स्थानको खला गया । उस समय राजाने पूछा,— “इस समय पहरे पर कौन है ?” उसने कहा,— “मैं हूँ—आपका सेवक, वत्सराज ।” राजाने कहा,— “हे वत्सराज ! क्या तुम मेरी एक आत्माका पालन करोगे ?” उसने कहा,— “स्वामिन् । आपको जो कुछ आज्ञा होगी, उसका मैं अवश्य पालन करूँगा—शीघ्र आज्ञा दीजिये ।” राजाने कहा,— “यदि ऐसी बात है तो जाओ, अपने भाई देवराजका सिर काट लाओ ।” उसने कहा,— “बहुत अच्छा” और यह कहनेके साथही राजमन्दिरसे बाहर निकलकर अपने मनमें विचार करने लगा,— “अवश्यही आज देवराजने ऐसा कोई काम किया होगा, जिससे राजा इतने नाराज़ हैं और वह काम अवश्यही शरीर,

शान्तिनाथ चरित्र



जैसे हमने उस वृद्धों को लेट दिया । इसी समय व
 वर भी उन्होंने देखाओं वगैरह मन्त्रों का

हमी सधवा धनके द्रोहका होगा, नहीं तो इनको इतना क्रोध हरगिज़ नहीं होता : परन्तु मेरे बड़े भाई ऐसा कोई काम करेंगे, यह तो बिल्कुल अनश्वनीसी बात मानून पड़ती है । कहा भी है,—

“ये भवन्तुतना नोके, स्वप्रकृत्यै न भुवन् ।

अन्येनोक्तुर्वै नृपुं, प्रपन्नं न वीर्यम् ॥ १ ॥

भोज्य जगन्नादम्भ्य, ये भवन्ति विवेन्द्रियाः ।

अस्मान् नैव कुर्वन्ति, ते महातुल्यो यथा ॥ २ ॥

अर्थात्—“उत्त लोकमें जो लोग जन्मावने ही उत्तम हैं, वे नृप-
का भये ही आर्चन कर ले : पर कुमार्गका अवलम्बन कभी नहीं
करते । जो विवेन्द्रिय पुरुष लोकजन्मावने डरते हैं, वे महातुल्योंकी
सीति कुर्वन् नहीं करते ।”

यही विचार कर वत्सराजने सोचा,—“राजाने तो आज्ञा दे डाला:
परन्तु मैं कुदृष्ट्य क्यों करूँ ? पर उनकी आज्ञा भी तो टालने लायक
नहीं । इसलिये कुछ देर कर दूँ, तो ठीक है: क्योंकि काल-विलम्ब
करनेसे अमुकका निवारण हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका कथन है ।”
इसी प्रकार सोच विचार कर उसने राजाके पास आकर कहा,—
“स्वामिन् ! अनन्तर तो देवराज जगाही हुआ है । उसे जागतेमें
कोई नहीं मार सकता । इसलिये जब वह सो जायगा, तब मैं उसे
मार डालूँगा ।” यह सुन, राजाने उसकी बात सब मान ली ।
फिर वत्सराजने कहा,—“प्रभो ! अच्छा हो, यदि समय बितानेके लिये
मार कोई कहानी कह सुनाइये अपना मैं कहूँ और मार विस्र देकर
सुनें । राजाने कहा,—“भाई ! तुम्हीं क्या कह सुनाओ ?” राजाको
यह आज्ञा पाकर वत्सराजने उन्हें यह कथा सुनायी,—

“इसी मरुत-क्षेत्रमें पट्टलिपुत्र नामका नगर है । वहाँ प्रतापो,
विजयदि गुप्तसे विभूजि पृथ्वीराज नामका राजा राज्य करता था ।
उसको प्राणप्रिया पत्नीका नाम सुमंगा था । उसी नगरमें रत्नसार नामका
एक सेठ रहता था, जो बड़ेही निमल भाचारणाला, सद्बिचारपुरुष

भीरू ह्याका आधारभूत था । उसकी स्त्रीका नाम प्रह्लुका था, उसके गर्भसे उत्पन्न धनदत्त नामक एक पुत्र उस सेठके था, जो बड़ाही पवित्र चरित्र था । सेठका यह बालक कलामोंका अभ्यास करता हुआ बालकपनसे युवावस्थाको प्राप्त हुआ । एक दिन यह बढ़िया पोशाक पहन मित्रों और पन्धुओंको साथ ले अपने घरसे बाहर हुआ और किसी कामके लिये कहीं चला जा रहा था । इसी समय किसीने उसे रास्तेमें आते देख, कहा,—“यह सेठका बालक धन्य है, जो इस प्रकार मनमानी मौजें उड़ा रहा है ।” यह सुन, किसी दूसरेने कहा,—“भरे भूखे ! मुक्तमें इतनी तारीफ क्यों कर रहा है ? जो अपने बापके धनपर मौज करते हैं, वे तो कुपुरुष कहे जाते हैं । जो अपनी मुजाबोंके प्रतापसे उपार्जन की हुई लक्ष्मीका उपभोग करता है और दान भी देता है, वही प्रसादके योग्य है । कहा भी है, कि—

“मातुः स्तन्यं पिबुर्विशं, परेभ्यः कीदृशार्थनम् ।

पानं भोजनं चक्षुःश्रोत्रं च, वास्य एकोक्तिं वनः ॥ १ ॥

अर्थात्—“माताका स्तन-पान करना, पिताके द्रव्यका उपभोग करना अथवा दूसरोंसे कीड़ाके लिये कोई चीज लेना, यह बालकोंको ही शोभा देता है ।”

उसकी यह बात सुन, उस सेठके लड़केने सोचा,—“यद्यपि वे लोग यह बाले डाहके मारे कह रहे हैं, तथापि बाले मेरे दिनकी हैं । अतएव अब मैं देशान्तरको आकर धन कमाऊँ । तभी सत्पुरुष कह-लाइँगा, अभ्यथा नहीं ।” ऐसा विचार कर, उसने अपना विचार अपने मित्रोंपर प्रकट किया । मित्रोंने भी उसके विचारकी प्रशंसा की । सबके पीछे उसने अपने घर आकर, पिताके बरजोंमें प्रणाम कर, कड़े माझके साथ कहा,—“पिताजी ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं धन कमानेके लिये परदेश आऊँ ।” यह बात सुन, वह सेठ ऐसा दुःखी हुआ, मानों उसे बल मार गया हो और बोला,—“छेदा ! मेरे घरमें बगैरी काफ़ी धन है इसे मझेमें आभा-ज्यों और इतनी ही । तुम्हें

उपार्जन करनेकी क्या फ़िक्र पड़ी है ? परदेशमें समय पर खानेकी नहीं मिलता, कभी-कभी तो पानी भी मयस्तर नहीं होता । वाराम से सोने बैठनेका सुमोता नहीं होता । इधर तुम्हारा शरीर बड़ा कोमल है । इसलिये परदेश जाना ठीक नहीं ।" पिताकी यह बात सुन, पुत्रने फिर कहा,—“पिताजी ! तुम्हारी उपार्जन की हुई लक्ष्मी मेरी माताके समान है । अतएव लड़कपनके सिवा और किसी अवस्थामें वह मेरे भोगने योग्य नहीं ।”

इसी तरहकी बड़ी आग्रह-भरी बातें कहकर उसने पिताकी आज्ञा प्राप्त कर ली और चाहन आदि सारी सामग्रियाँ तैयार कर, काम लायक किरानेकी चीज़ें ले, खाने-पानेकी भी चीज़ें साथ ले, पिताकी दी हुई शिक्षाओंको चित्तमें भली भाँति धारण कर, एक शुभ दिवसको सारे क़ाफ़िलेके साथ, यात्रा कर दी । इसके बाद निरन्तर चलता हुआ वह सेठका पुत्र बरने क़ाफ़िलेके साथ कितनेही दिन बाद धोपुर नामक नगरमें पहुँचा । वहाँ किसी सरोवरके पास क़ाफ़िलेका पड़ाव पड़ा । क़ाफ़िलेका सरदार एक खूबसूरत तम्बूके अन्दर डेरा डालकर रहा । इसी समय एक मनुष्य, जिसकी देह काँप रही थी और बाँछें उरके मारे काम नहीं देती थीं, सेठके पुत्रकी शरणमें आया ।

धनदत्तने उससे कहा,—“भई ! तुम डरो मत । केवल यही कह दो, कि तुम कौनसा अपराध करके मेरे पास आये हो ।” उसने ऐसा पूछाही था कि इतनेमें ‘मारो-मारो’की आवाज़ करते, शस्त्रधारी रक्षक वहाँ आ पहुँचे और क़ाफ़िलेके सरदारसे बोले,—“सेठजी ! यह मनुष्य यहाँके राजाका नौकर है और उनका एक चढ़िया सा गहनालेकर जूएमें हार आया है । उस गहनेकी खोज करते हुए हमलोगोंने पता लगा जाने-पर राजासे जाकर कहा, तब उन्होंने जुमार्हते वह गहना लेकर हुस्न दिया, कि इस चोरको पूरी सज़ा दो, यह राज़दोही है, इसे हरगिज़ न छोड़ो । उस समय दयालु मन्त्रियोंने राजासे कहा, कि ‘इस गहनेके चोरकी सम्पत्ति कारागृहमें डाल दो ।’ यह सुन, राजाने भी उसे

कैदखाने भिजवा दिया । एक दिन रातके पिछले पहरेमें कैदखाना तोड़, वहाँके पहरेदारको मार, यह चोर वहाँसे निकल भागा । हम लोग यह खबर पातेही उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े । इसी समय यह चोर इस सरोवरके पास घने जङ्गलमें जा दबका । अब यह वहाँसे निकलकर आपकी शरणमें आया है, इसलिये आप इस राज-द्रोहीको कदापि अपनी शरणमें न रखिये ।” पहरेदारोंकी यह बात सुन, फ़ाफ़िला-सरदारने कहा,—“हे राजपुरुषो ! तुम लोगोंनि जो बात कहो, वह तो ठीक है ; पर अच्छे मनुष्य कभी शरणमें आये हुए मनुष्यको नहीं त्यागते ।” सिपाहियोंने कहा,—“आप चाहे जो कहें ; पर हमलोग तो राजाकी आज्ञाके अनुसार काम करते हैं, हमें दूसरा कुछ नहीं मालूम ।” तब सार्वपतिने कहा,—“अच्छा, तो मैं राजाके पास चलकर अपनी बातें कह सुनाता हूँ ।” यह कह, यह राजाके पास गया और एक अमूल्य रत्नोंका हार, राजाकी मेंट कर उनके निकट बैठ रहा । राजाने उसका बड़ा आदर-मान कर, पूछा,—“हे सार्वपति ! तुम कहाँसे चले आ रहे हो ?” इसपर उसने उन्हें अपना सारा हाल सुनाकर कहा,—“हे महाराज ! यदि आपका गहना आपको मिल गया हो, तो मेरी शरणमें आये हुए इस चोरको आप माफ़ कर दें ।” राजाने कहा,—“गहना मिल जाने पर भी यह घब करनेही योग्य था । तो भी मैं तुम्हारी प्रार्थना सुनकर, इसे छोड़े देता हूँ ।” यह सुन, राजाकी प्रणामकर, यह कहने हुए, कि आपने मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा की, यह उस चोरको साथ लिये हुए अपने स्थानको चला गया । राजाके आश्चर्योंके कहे अनुसार सिपाही अपने-अपने स्थानपर चले गये । इसके बाद उस सेठके बेटेने उस चोरको भोजन आदि करानेके बाद कहा,—“देखो, अब आजसे तुम किसी दिन चोरी न करना ।” यह सुन, चोरी न करनेका निश्चय कर, उसने सेठमें कहा,—“सेठजी ! अब आजसे मैं आपकी कृपासे कभी चोरी न करूँगा और परलोकमें दिन करनेवाले मनकी प्रशंसा करूँगा ; परन्तु मेरे पास एक साधुका दिया हुआ, बड़े विकट प्रमादशाली भूतोंका

हुआ और वह सार्वभौमसे विश्वास प्राप्त कर अपने घर चला गया । इसके बाद धनदत्त भी अपने क्राफिलेके साथ वहाँसे कूचकर, धीरे-धीरे चला हुआ समुद्रके पास ही 'गम्भीर' नामके बन्दरगाहमें पहुँचा । वहाँ वह कुछ दिनोंतक रहा भी ; परन्तु इच्छानुसार लाभ नहीं हुआ, इसलिये उसने एक जहाज़ खरीदा और उसे तैयार कर, समुद्रको पूज, देशान्तरके योग्य सब तरहके किरानेका सामान उसपर लादकर समुद्रमें उबार देनेपर उस जहाज़पर सवार हो गया । इसके बाद मनुकुल वायु पाकर वह जहाज़ बड़े वेगसे चलता हुआ बीच समुद्रमें आ पहुँचा । इतनेमें उस सेठ-पुत्रने आकाश-मार्गसे आते हुए एक भयंसे तोतेको देखा । उसके मुँहमें आम्र-फल था । उसीको दोते-दोते वह इतना दैरान हो गया था, कि समुद्रमें गिराही चाहता था । यह देख, सेठने जहाज़के खलाशियोंको एक लम्बा घोड़ा कपड़ा फैलाकर उसी पर उस तोतेको ले लेनेका हुक्म दिया । खलासी जब उस तोतेको इसी प्रकार पकड़कर ले आये, तब उसे हवा-पानीसे स्वस्थकर उसने उसे बुलवानेकी चेष्टा की, तब वह तोता, अपने मुँहका फल नीचे गिरा, मनुष्यकी सी बोलीमें बोला,—“हे सार्वनाथ ! आपने आजतक जितने उपकारके काम किये हैं, उन सबमें मेरा यह जीवन-दान सबसे बढ़कर है । मुझे जिलाकर आपने मेरे बूढ़े और अन्धे मा-बापको भी जिला लिया है । इस महान् उपकारका मैं आपको क्या बदला दूँ ? अच्छा, तो इस समय मेरा लाया हुआ यह आम्र-फल ही स्वीकार कीजिये ।” सार्वभौमने कहा,—“हे शुक-राज ! मैं इस आम्र-फलको लेकर क्या करूँगा ? तुम्हीं इसे खा लो और इसके सिया मैं तुम्हें ईश और अंगूर पगौरह और भी बीजों खानेको देता हूँ, उन्हें भी खा डालो ।” यह सुन, तोतेने कहा,—“हे सार्वपति ! यह फल बड़ा ही गुणकारी और दुर्लभ है । इस फलका वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिये,—

“इसी मरुदेशमें विन्ध्य नामक एक बड़ा भारी पर्वत है । उसीके पास पथभ्याट्टको नामक एक प्रसिद्ध जंगल है । उसी जंगलमें एक

पेड़पर एक तोतेका जोड़ा रहता था । मैं उन्होंका पुत्र हूँ । क्रमसे मेरे माँ-बाप बहुत बूढ़े हो गये और अब उनकी आँखोंसे ज़रा भी नहीं दीखता । इसलिये मैं ही उनके लिये आहार ला दिया करता हूँ । एक दिन मैं उस जंगलके एक आमके पेड़पर बैठा हुआ था, कि इतनेमें दो मुनि वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने चारों ओर देख, सझाटा पाकर आपसमें बातें करनी शुरू कीं । उनकी बातोंका सार यह था, कि—समुद्रके मध्यमें कपिशैल नामक पर्वतके शिखरपर एक निरन्तर फलनेवाला आम्र-वृक्ष है । उसका एक फल एक बार कोई खाले, तो उसके शरीर-को सारी व्याधियाँ नष्ट हो जायें और उसे अकाल-मृत्यु या घुढ़ापेका डर न रहे । साथही उसे उत्तम सौभाग्य, श्रेष्ठ रूप और देदीप्यमान कान्तिकी भी प्राप्ति हो । उन मुनियोंकी यह बातें सुन, मैंने अपने मनमें विचार किया, कि मुनियोंकी यात कदापि झूठी नहीं हो सकती, इसलिये मैं चलकर यदि वह फल ले आऊँ, तो मेरे बापकी गयी ज़वानी फिर लौट आये और उनकी आँखें भी पहलेकी सी अच्छी हो जायें । हे सायेंश ! मैं इसी विचारसे इस फलको लेता आया हूँ । अब तो इसे आपही ले लीजिये, मैं दूसरा फल लाकर अपने माँ-बापको दूँगा ।”

तोतेकी यह बात सुन, सेठने घड़े आग्रहसे उस फलको ले लिया । तोता फिर आसमानमें उड़ गया । इसके बाद सेठने अपने मनमें विचार किया,—“मैं यह फल क्यों खाऊँ ? अच्छा हो, यदि मैं इसे किसी राजाको दे डालूँ, जिससे बहुतसे मनुष्योंका उपकार हो । पर यदि मैं इसे नहीं खाऊँ तो फिर क्या करूँ ?” इसी तरह सोच विचार कर उसने उस आम्र-फलको अपने पास छिपाकर रख लिया ।

कुछ ही दिनोंमें वह जहाज़ सामने घाले तटपर आ लगा । सेठका बालक जहाज़से नीचे उतरा और भेंट लिये हुए राजाके पास गया । और-और चीजोंके साथ-साथ उसने वह आम्र-फलभी राजाकी भेंट किया । उसे देख, आश्चर्यके साथ राजाने पूछा,—“सेठजी ! यह फल कैसा है ।” यह सुन, उसने उस फलका पूरा-पूरा हाल कह सुनाया । सब कुछ

को दुलयाकर बड़ीभक्तिके साथ यह अमृतफल उसे दिया । उस ब्राह्मणने राजाका दिया हुआ वह आम्रफल घर ले आकर देवनाको चढ़ाकर खा लिया और तत्काल मर गया । जब राजाने यह बात सुनी, कि वह ब्राह्मण तो उस फलको खातेही मर गया, तब उन्हें बड़ा ही खेद हुआ । उन्होंने कहा,—“ओह ! मैं तो धर्म करने जाकर घोर ब्रह्महत्याके पापमें फँस गया । अवश्यही यह जहरीला फल मेरे किसी शत्रुने ही मुझे मार डालनेके अभिप्रायसे मेरे पास इस तरह धोखाधड़ीसे पहुँचाया दिया होगा । इसलिये यद्यपि मैंने इस वृक्षको आपही रोपा और इस तरह इसकी रक्षा की है, तथापि इसे जहाँतक जल्द हो सके, कटवा डालना चाहिये, जिसमें बहुतसे लोग न मरने पायें ।” बस, फिर क्या था ! तुरतही उन्होंने पेड़ काट डालनेकी आज्ञा दे दी । तत्काल राजाके सेवकोंने तेज़ कुल्हाड़ोंसे उस उत्तम वृक्षको जड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया । उस समय कोढ़ वगैरह रोगोंसे दुःख पानेवाले मनुष्योंने उस विष-वृक्षके काटे जानेका हाल सुन, जीधनसे ऊँचे हुए होनेके कारण सोचा, कि धलो उसी विषफलको खाकर खुशी खुशी इस मसारसे कूच कर जायें । यही सोचकर वे लोग वहाँ आये । उनमेंसे किसीने उस वृक्षका पका हुआ, किसीने अधपका फल—जोही जिसके हाथ आया, वही खा गया । किसीने पत्तेही चबाये, किसीके मोजरें ही मयस्सर हुए । इसका परिणाम यह हुआ, कि सबके सब निरोग और अद्वितीय स्वरूपवाले हो गये । इस प्रकार उन कुष्ठदि रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके दिव्यरूपवाले हो जानेका हाल सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने सोचा,—“ऐं ! यह तो बड़ेही अचम्बेकी बात है, कि सामान्य मनुष्य, तो इसके फल खाकर लाभान्वित हुए और येचारा वेद-वेदाङ्गमें निपुण ब्राह्मण मुपनही मारा गया ।”

ऐसा विचार कर राजाने सबवालोंको बुलाकर पूछा,—“तुम लोग उस दिन यह फल पेड़परसे ताड़ लाये थे या जमीनपर गिरा देखकर उठा लाये थे ?” उन्होंने सच-सच बयान कर दिया । यह सुन, राजाने

को धुलवाकर बड़ीभक्तिके साथ यह अमृतफल उसे दिया । उस ब्राह्मणने राजाका दिया हुआ यह आभूषण घर ले जाकर देवताको चढ़ाकर बालिया और तत्काल मर गया । अथ राजाने यह बात सुनी, कि वह ब्राह्मण तो उस फलको खातेही मर गया, तब उन्हें बड़ा ही खेद हुआ । उन्होंने कहा,—“ओह ! मैं तो धर्म करने जाकर घोर ब्रह्महत्याके पापमें फँस गया । अथवा यह जहरीला फल मेरे किसी शत्रुने ही मुझे मार डालनेके अभिप्रायसे मेरे पास इस तरह धोखाधड़ीसे पहुँचाया दिया होगा । इसलिये यद्यपि मैंने इस वृक्षको भागही रोपा और इस तरह इसकी रक्षा की है, तथापि इसे जहाँतक जल्द हो सके, कटवा डालना चाहिये, जिसमें बहुतसे लोग न मरने पायें ।” बस, फिर क्या था ! तुरन्तही उन्होंने पेड़ काट डालनेकी आज्ञा दे दी । तत्काल राजाके सेवकोंने तेज़ कुल्हाड़ोंसे उस उत्तम वृक्षको जड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया । उस समय कोढ़ वगैरह रोगोंसे दुःख पानेवाले मनुष्योंने उस बिग-वृक्षके काटे जानेका हाल सुन, जीवनसे ऊँचे हुए होनेके कारण सोचा, कि खलो उम्मी बिग-वृक्षको खाकर लुशी लुशी हम मरसारसे कुष कर जायें । यही सोचकर ये लोग वहाँ भाये । उनमेंसे किसीने उस वृक्षका पका हुआ, किसीने अघातका फल—ओहो जिसके हाथ भाया, वही खा गया । किसीने पत्तेही खाये, किसीने मोंजरे ही मरसार हुए । इसका परिणाम यह हुआ, कि सबके सब निरोग और अतिशय स्वस्थवाले हो गये । इस प्रकार उन कुष्ठरोगोंसे पीड़ित धनियोंके दिव्यरक्षणवाले हो जानेका हाल सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने सोचा,—“ये ! यह तो बड़ेही अचम्बेकी बात है, कि सामान्य मनुष्य, जो इसके फल खाकर सामान्यतः हुए और देवता देव देवतामें निजुन ब्राह्मण मुझही मारा गया ।”

ऐसा विचार कर राजाने स्वयंवालोंको बुलाकर पूछा,—“तुम लोग हम दिन यह फल देवदरमें ताड़ लाये थे या जमीनपर गिरा देवदर टटा लाये थे ?” उन्होंने सब-सब बयान कर दिया । यह सुन, राजाने

इसके बाद वह शुमङ्कर, राजाको उद्धारताके कारण, मन्तःपुर आदि स्थानोंमें भी आने-जाने लगा । एक दिन उस नगरके पास एक सिंह कहींसे चला आया, एक व्याधने आकर इसकी सूचना राजाको दी ।

यह सुनते ही राजाने उसी समय चतुरंगिणी सेना, और शुमङ्कर बटुकको साथ ले, उसी समय उस सिंहको मार गिरानेके लिये नगरसे प्रस्थान किया । व्याधके बतलाये हुए रास्तेसे चलकर राजा उसी उद्यानमें चले आये, जहाँ वह सिंह मौजूद था । घनके बाहरही सारी सेनाको छोड़कर, राजा एक हाथी पर सवार हो, शुमङ्करको अपने आगे बैठाये हुए सिंहके पास आये । यह देख, वह सिंह, मुँह बाये, उछलकर राजाके पास पहुँचनेके इरादेसे आसमानमें उड़ा । उस समय यह सोचकर, कि कहीं यह सिंह मेरे स्वामीपर हमला न कर बैठे, शुमङ्करने उस सिंहके पास पहुँचते-न-पहुँचते उसके मुँहमें बर्छा डालकर उसे मार गिराया । यह देख, राजाने कहा,—“शुमङ्कर ! तुमने यह बड़ा बुरा काम किया । यह सिंह मेरा शिकार था, तुमने जल्दयात्री के मारे इसे बीचमें ही मार डाला । यात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है, कि तुमने इस सिंहको मार गिराया है, बल्कि सब राजाओंके बीच मेरा जो यश छाया हुआ था, उसे भी तुमने छीन लिया ।” यह सुन, बटुकने कहा,—“हे देव ! मैंने यही सोचकर इस सिंहको मार डाला, कि कहीं आपके शरीरको इसके द्वारा पीड़ा न पहुँचे । मैंने कुछ अपनी थड़ाईके लिये आपके हाथसे शिकारको नहीं छीना । मैंने जो इसे मारा है, वह भी आपके ही प्रतापसे, नहीं तो मझ बल्लेकी छोटसे कहीं सिंह मारा जाता है ? लीजिये, मैं सब सैनिकोंसे यही कहूँगा, कि राजाने इस मृगेन्द्रको मारा है । हे स्वामी ! आप इस मामलेमें मेरे ऊपर क्रोध न करें । इस बातको सिर्फ़ हमीं दोनों जानते हैं, तीसरे किसीको इसकी खबर नहीं है । चार कानोंकी बातका भण्डा नहीं फूटता । कहा भी है,—

“पट्टक्यों भिद्यने मंत्र-अनुष्क्यों न भिद्यने ।

त्रिकर्षोस्य च मन्त्रस्य, ब्रह्माऽप्यन्ते न गच्छन्ति ॥ १ ॥”

अर्थात्—“छः कानोंमें पड़े हुए मन्त्रका भेद सुल्ल जाता है ; पर चार कानोंवाली बातका भेद धिया रहता है और दो कानोंवाले मन्त्रका भेद तो ब्रह्मा भी नहीं जान पाते ।”

यह सुन, राजाने कहा,—“हे शुमङ्कुर ! यदि इस बातका भयदा फूटा तो मैं संसारमें झूठा कहलाऊँगा और मेरी बड़ी भारी बदनामी होगी ।” शुमङ्कुरने कहा,—“हे प्रभु ! क्या आपने यह नहीं सुना है, कि सत्पुरुषोंके पेटकी बात उनके साथ ही चितापर जल जाती है ।” यह सुनकर राजाको दिलजमर्ह हुई और वे शुमङ्कुरके साथ अपनी सेनामें चले आये । यहाँ पहुँचकर शुमङ्कुरने इस प्रकार अपने प्रभुका प्रताप वर्णन करना आरम्भ किया,—“ओह ! जिसके नाइसे मशून्मल होपीका भी मद उतर जाता है, उस सिंहको मेरे स्वामीने किस तरह जिलौनेके समान मार गिराया ।” यह सुनकर, सामन्तों और माण्डलिक राजाओंको आश्चर्यके साथ-साथ आनन्द भी हुआ । इसके बाद खूब बाजे-गाजेके साथ, बड़ी धूम-धामसे राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया । जहाँ-तहाँ लोग इकट्ठे होकर राजाके बल-विक्रमकी बड़ाई करने लगे । यह महोत्सवमय-दिवस क्षणकी तरह देखते-देखते बीत गया । जब राजा समा-विसर्जन कर, रानीके महलमें आये, तब उन्होंने पूछा,—“स्वामी ! आज नगरमें ऐसी चहल-पहल किस लिये है ? क्योंकि बार-बार बाजे बजनेका शब्द सुनाई दे रहा है ।” इसपर राजाने कहा,—“आज मैंने एक सिंहका शिकार किया है, उसीकी बर्धाईमें नगरके लोग उत्सव कर रहे हैं ।” यह सुन, रानीने फिर कहा,—“हे नाथ ! उत्तम वंशमें जन्म ग्रहण करके भी अपनी झूठी प्रशंसा कराते हुए आपको लज्जा नहीं आती ?” राजाने कहा,—“झूठी प्रशंसा कैसे है ?” रानीने कहा,—“सिंह तो मारा शुमङ्कुरने और आपको बर्धाई मिल रही है । यह कैसी बात है ?” यह सुन, मन-ही-मन क्रोधित होकर राजाने सोचा,—

“उस दुरात्माने मुझसे तो ऐसा कहा, कि मैं यह गुप्त बात किसीसे न कहूँगा और इधर आजके आजर्ही रानीके पास आकर अपनी बड़ाई हाँक गया । इसलिये इस रहस्यका भेद कहनेवाले इस बटुकको किसी तरह गुप्त रीतिसे मरवा डालनाही ठीक है ।” यही सोचकर राजाने एक सिपाहीको हुक्म दिया, कि इस बटुकको गुप्त रीतिसे मार डालो । राजाके आज्ञानुसार उसने बटुकको तत्काल मार डाला और राजासे साकर कहा, कि मैंने आपके हुक्मकी तामील कर डाली । यह सुन, राजा बड़े प्रसन्न हुए । दूसरे दिन रानीने राजासे पूछा,—“स्वामिन् ! आज यह बटुक आपके साथ नहीं दिखाई देता । यह कहाँ गया ?” राजाने कहा,—“प्रिये ! तुम उस दुष्टका नाम भी न लो ।” रानीने कहा,—“स्वामी ! उसने आपका क्या बिगाड़ा है ? यह तो बड़ाही गुपी और कीतुकी है ।” तब राजाने उसका सारा कथा बिछा वह सुनाया । तब सुनकर रानीने कहा,—“नाथ ! सिंहके मारनेकी बात उस बेचारेने मुझसे नहीं कही थी । मैंने तो स्वयंही अपने महलके सातवें बरत-पर बैठकर तमारा देखते-देखते यह हाल अपनी आँखों देखा था । इस मामलेमें उस बेचारेका कुछ भी अपराध नहीं है ।” इतना कह रानीने फिर पूछा,—“स्वामी ! सब कहिये यह जीता है या मर गया ?” यह सुन, राजाने बड़े अफसोसके साथ कहा,—“रानी ! मुझसे तो बड़ा भारी पाप हो गया । मैंने तो उस गुप्त-रसोके समुद्रको मरवा डाला ।” इस प्रकार राजाने बड़ी देरतक उसके लिये शोक मनाया और मन-ही-मन दुखी हुए, पर अब क्या हो सकता था ! बेचारा बटुक तो चल बसा ! इसलिये जो बौरा दिना बिचारे काम करता है, वह बड़े पाप बढ़ोत्तरी है, और दुनियाँने उसकी बदनामी भी सुरू होगी है ।”

दुर्लभराजके कथा सुनते-सुनते रातका तीसरा घण्टा बीत गया यह घण्टीसे उठकर अपने ऊँचेपर चला गया और उसकी आदर उसका घोंघा भाई कीर्तिराज भाई पुरखा । राजाने हमसे भी कहा,—
देवीर्तिराज ! क्या तुमसे मेरा एक बात हो सकेगी ?” उसने कहा,—

“स्वामी ! यदि मैं आपका कामही न कर सका, तो फिर आपका सेवक किसलिये कहलाया ?” तब राजाने कहा,—“हे कीर्तिराज ! यदि तुम मेरे साथे सेवक हो, तो अपने भाई देवराजका सिर उतार लामो । यह सुन, “बहुत अच्छा,” कह कर वह राजमन्दिरसे बाहर हुआ और कुछ देर तक टालमटोल कर, लौट आया । तदनन्तर उस धीरे पुरुषने राजासे कहा ‘हे नाथ ! रात बीत चली है, इसलिये सभी पहरेदारोंके साथ-साथ मेरे तीनों भाई भी जगे हुए हैं । इसलिये मैं भीका पाकर किसी और समय आपका काम कर दूंगा ।’ यह कह उसने भी समय बितानेके इरादेसे राजाको एक कथा सुनायी । यह इस प्रकार है,—

“इसी भरतक्षेत्रमें महापुर नामक नगरमें शत्रुजय नामके एक राजा रहते थे । उनकी रानीका नाम प्रियङ्गु था । एक बार किसी विदेशीने राजाको एक अच्छी नसलका घोड़ा मेंटमें दिया । उस घोड़ेको देखकर राजाने विचार किया,—“रूपसे तो यह घोड़ा बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है, परन्तु इसकी बाल कैसे हैं, यह भी देखना चाहिये ।” कहा है, कि—

“जगोव्यक्तेः परमं विभूयन्त्रं त्रयांगनायाः कृतता तपस्विनः ।

विज्ञान्य विद्येय मुनेरपि क्षमा, पराक्रमः शस्त्रबोधर्मीनाम् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“भगवन्की शक्तिका श्रेष्ठ भूषण उसकी चाल है, सी-का भूषण लग्ना है । तपस्वीका भूषण कृशता (दुर्बलता) है, वाक्पण-का भूषण प्रिया है । मुनिका भूषण क्षमा है । शस्त्रके बजने जीविका उपार्जन करनेवालोंका भूषण पराक्रम है ।”

ऐसा विचार कर, राजाने उस घोड़ेकी पीठपर जीन कसवाया और उस पर सवार हो, उसकी बाल देखनेकी इच्छासे उसे खलाया । तुरतही वह घोड़ा हवासे घातें करता हुआ ऐसा दौड़ा, कि सारी सेना पीछे रह गयी । घोड़े पर सवार राजा सबकी आँखोंके परे हो गये । उस समय उस घोड़ेके व्यापारीने सामन्तोंसे कहा,— “मैं उस समय यह कहना भूल गया था, कि इस घोड़ेको फिरतीन शिक्षा दी गयी है ।”

यह सुन, राजाके सेवक तेज़ घोड़ोंपर सवार हो, भोजन और पानी साथ लिये हुए, राजाके पीछे-पीछे दौड़े । इधर राजा, उस घोड़ेकी चालको बच्छी तरह मालूम कर, उसे रोकनेके लिये ज्यों-ज्यों लगाम खींचने लगे, त्यों-त्यों वह और भी अधिक बेगसे चलने लगा । इस तरह उल्टी शिक्षा पाये हुए उस घोड़ेने बड़ी दूरकी मंज़िल मारी । लगाम खींचते-खींचते राजाके हाथसे खून निकल पड़ा, पर वह खड़ा नहीं हुआ । इसके बाद जब राजाने धक कर उसकी लगाम ढीली कर दी, तब वह आपसे आप खड़ा हो गया । अब राजाको मालूम हो गया, कि इस घोड़ेको उल्टी शिक्षा मिली है । इसके बाद राजाने घोड़े से नीचे उतर, उसके ज़ीन-साज़ उतार दिये । इतनेमें अर्धे निकल पड़नेके कारण वह घोड़ा तत्काल पृथ्वी पर गिरकर मर गया । तद्-न्तर उस भयंकर वनमें, जो दावाग्निसे जल रहा था, वे राजा, भूख और प्यासके मारे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगे । इतनेमें राजाने उस जंगलमें एक लम्बी-लम्बी शाखाओंवाले बड़े भारी बट-वृक्षको देखा । यके-भादे होनेके कारण राजा उस बड़ेके नीचे जाकर छायामें बैठ रहे । इसके बाद पानीकी तलाशमें चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए उन्होंने देखा, कि उसी वृक्षकी एक शाखापरसे पानीकी धूँद टपक रही है । यह देखकर राजाने अपने मनमें विचार किया—“इस वृक्षके खस्रोडरमें बरसातका जल जमा है । वही इस समय गिर रहा है । ” ऐसा विचार कर, खदिर-वृक्षके पत्तोंका प्यालासा बनाकर, प्याससे मरे जाते हुए राजाने उस पानीको नीचे गिराना शुरू किया । क्रमशः वह पत्तोंका प्याला श्याम-जलसे लबालब भर गया । उसे हाथमें लिये हुए राजाने ज्योंही उसका जल पीना चाहा, त्योंही एक पक्षीने वृक्षसे नीचे आकर उनके हाथसे वह प्याला नीचे गिरा दिया और फिर वृक्षकी डालपर जा बैठा । यह देख, मन-ही-मन क्रोधित हो, राजाने फिर उसी तरह एक पात्रमें जल भर कर उसे पीना चाहा । इतनेमें फिर उस पक्षीने आकर वह पात्र उसी तरह नीचे गिरा दिया । तब बड़े क्रोधित होकर

राजाने अपने मनमें विचार किया,— “ययकी बार यदि यह हुए पक्षी फिर आया, तो मैं उसे मारकर टेर कर दूँगा । ” इसी विचारसे उन्होंने एक हाथसे चाबुक पकड़े हुए, दूसरे हाथसे फिर उस पात्रमें पानी भरा । यह देख, उस पक्षीने सोचा,— “यह राजा क्रोधमें आ गया है । इसलिये यदि मैं इस बार इसके हाथसे जल नीचे गिराऊँगा, तो यह ज़रूर मुझे मार डालेगा । और यदि मैं इस जलको नहीं गिरा देता, तो इस ज़हरीले पानीके पीनेसे राजा ज़रूरही मर जायेगा । अन-एय मैं भले ही मर जाऊँ, पर इस राजाको तो जिला ही देना अच्छा है । ” ऐसा विचार कर उसने फिर राजाके हाथका पत्र-पुट नीचे गिरा दिया । राजाने भी तत्कालही चाबुक मारकर उसकी जान ले ली । इसके बाद राजाने फिर हर्षित-चित्तसे उस पात्रमें जल भरना शुरू किया । इसबार जल बड़ी देर-देर पर टपकने लगा । यह देख, विस्मित हो, राजाने उचक कर पेड़ पर चढ़कर देखा, कि उस पेड़के तल्लोडमें एक भज्जगर सोया हुआ है । यह देख, राजाने अपने मनमें विचार किया,— “भरे ! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए भज्जगरके मुँहसे निकलता हुआ पिय है । इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कभीका मर चुका होता । ओह ! उस पक्षीने मुझे बार-बार मने किया, पर मैं मूर्ख उसका मतलब नहीं समझा । हा ! मेरीही मूर्खतासे यह बेचारा परोपकारी पक्षी मेरे ही हाथों मारा गया । ” राजा इसी प्रकार पश्चात्ताप कर रहे थे, कि इतनेमें उनके सिपाही आ पहुँचे और अपने स्वामीको देख, बड़े प्रसन्न हुए । इसके बाद राजा भोजन कर, जलपान करनेके अनन्तर उस मरे हुए पक्षीके साथ-साथ अपने नगरमें चले आये । वहाँ नगरके बाहरही एक बागीचेमें उस पक्षीका चन्दनको लकड़ियोंसे शय-संस्कार करा, राजाने उसे जलाँजलि दी और अपने घर आकर शोक मनाने लगे । यह देख, सय मन्त्रियों और सामन्तों आदिने उनसे पूछा,— “हे नाथ ! आपने इस पक्षीका मरण संस्कार किस लिये किया ? ” यह सुन, राजाने सारा हाल अपने आदमियों



हम ! यह तो जय नहीं बलिष्ठ मेरे हुए मज्जाते मुझे निजाना मुना
 फिर है । ऐसे यह मैंने ही जलना होता, हा अब तक बनीए कर
 हुआ होता । (५८ १५६)

राजाने अपने मनमें विचार किया,— “अबकी बार यदि वह हुए पक्षी फिर आया, तो मैं उसे मारकर ढेर कर दूँगा । ” इसी विचारसे उन्होंने एक हाथसे चाबुक पकड़े हुए, दूसरे हाथसे फिर उस पात्रमें पानी भरा । यह देख, उस पक्षीने सोचा,— “यह राजा क्रोधमें आ गया है । इसलिये यदि मैं इस बार इसके हाथसे जल नीचे गिराऊँगा, तो यह ज़रूर मुझे मार डालेगा । और यदि मैं इस जलको नहीं गिरा देता, तो इस ज़हरीले पानीके पीनेसे राजा ज़रूरही मर जायेगा । अतः एव मैं मले ही मर जाऊँ, पर इस राजाको तो जिला ही देना अच्छा है । ” ऐसा विचार कर उसने फिर राजाके हाथका पत्र-पुट नीचे गिरा दिया । राजाने भी तत्कालही चाबुक मारकर उसकी जान ले ली । इसके बाद राजाने फिर हर्षित-चिन्तसे उस पात्रमें जल भरना शुरू किया । इसबार जल बड़ी देर-देर पर टपकने लगा । यह देख, विस्मित हो, राजाने उचक कर पेड़ पर चढ़कर देखा, कि उस पेड़के लखोडरमें एक भजगर सोया हुआ है । यह देख, राजाने अपने मनमें विचार किया,— “भरे ! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए भजगरके मुँहसे निकलता हुआ पिय है । इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कभीका मर चुका होता । ओह ! उस पक्षीने मुझे बार-बार मने किया, पर मैं मूर्ख उसका मतलब नहीं समझा । हा ! मेरीही मूर्खतासे यह बेचारा परोपकारी पक्षी मेरे ही हाथों मारा गया । ” राजा इसी प्रकार पश्चात्ताप कर रहे थे, कि इतनेमें उनके सिपाही आ पहुँचे और अपने स्वामीको देख, बड़े प्रसन्न हुए । इसके बाद राजा भोजन कर, जलपान करनेके अनन्तर उस मरे हुए पक्षीके साथ-साथ अपने नगरमें चले आये । वहाँ नगरके बाहरही एक बाग़ीचेमें उस पक्षीका धम्मकी लकड़ियोंसे शय-संस्कार करा, राजाने उसे जलाँजलि दी और धर आकर शोक मनाने लगे । यह देख, सब मन्त्रियों आदिने उनसे पूछा,— “हे नाथ ! आपने इस पक्षीका मरण किस लिये किया ? ” यह सुन, राजाने सारा हाल अपने

जो इसे नहीं मारा, यह बहुत ही अच्छा काम किया," इसके बाद आनन्दित होकर राजाने सारी समाके धामने ही कहा,—“इन चारों भाइयोंमें सब गुण भरे हुए हैं। मुझ निपुणको मेरे कुलदेवनाने मानों चार पुत्र ही दे दिये हैं। इस लिये मैं देवराजको गद्दीपर बैठाकर वटसराजको युवराज बनाये देता हूँ और आप वीक्षा लेने जाता हैं।” यह सुन, राजाके परिवारवालोंने कहा,—“महाराज ! कुछ दिन और ठहर जाइये, फिर जैसी इच्छाहो, वैसा कीजियेगा।” राजाने कहा,—“मेरे पूर्वजोंने भी बाल पकनेके पहले ही मग्न अंगीकार कर तपस्या करते हुए सद्गति पायी है; परन्तु राज्यधुराको धारण करनेवाला कोई न होनेके कारण मैं अथक संसारमें फँसा रह गया, इस लिये अब तो मैं अपना यह मनोरथ अवश्य ही पूरा करूँगा।” यह कह, राजाने ज्योतिषीके बतलाये हुए शुभ मुहूर्तमें देवराजको राज्यका मार सौंप दिया और वटसराजको युवराजकी पदवी प्रदान की।

इसके बाद एक दिन नगरके बाहर मन्दन नामक उद्यानमें धीरुक्ष नामके सूरि बहुतसे परिवार साथ लिये हुए आ पहुँचे। उसी समय उद्यानके रक्षकोंने राजाके पास आकर उन्हें गुरुके आगमनका समाचार कह सुनाया। यह सुनते ही राजा बड़ी भक्तिके साथ वहाँ गये और गुरुको प्रणाम कर यथा स्थान बैठकर सत्संग-वेशना सुनने लगे। इसके बाद उन्होंने अक्सर पाकर दोनों हाथ जोड़े हुए पूछा,—“हे प्रभो ! पिशाचने जिस प्रकार मेरी मृत्यु होना बतलाया था, उस प्रकार मेरी मृत्यु क्यों नहीं हुई ? देवकी कही हुई बात क्यों झूठी हो गयी ?” यह सुन, सूरि महाराजने कहा,—“हे राजन् ! वह कथा सुनोः—

“वैश्य-वंशमें उत्पन्न गौरी नामकी जो तुम्हारी सुन्दरी स्त्री थी, वह दुर्भाग्यवश किसी कर्मके दोषसे दूषित हो गयी और तुम्हें फूटी आँखों भी नहीं सुझाने लगी। उसे देखते ही तुम्हें कुढ़न पैदा होती थी, इसीलिये वह उदास होकर पीहर चली गयी और वहीं रहने लगी। वहाँ अज्ञान-तपसे अपने शरीरको घुला-घुलाकर वह मर गयी और

तो जाने पर सोती है, उनके सोकर उठनेके पहलेही जग जाती है, वह ग्रहिणी नहीं, ग्रह-सदमी है ।

इसीलिये सेठने विचार किया, कि इन चारों बहुमोंमें कौन घरका भार समझालने योग्य है, इसकी परीक्षा लूँ, तो ठीक समयमें आ जाये। इसके बाद सवेरा होते ही सेठने रसोयोंको बुलवा दिया; कि आज सबसे बढ़िया रसोई बनाओ । यह कह, उसने अपने सभी स्वजनों और पुरजनोंको ग्योता देकर अपने घर जमाया । इसके बाद उसने सब स्वजनादिकको घल्ल, ताम्बूल आदिसे सम्मानित कर उन लोगोंके सामने ही पाँच शालि-कण लेकर बड़ी बहूको देते हुए कहा,—“बेटी ! मैं तुम्हें ये पाँच शालि-कण देता हूँ । जब मैं माँगू, तब फिर मुझे दे देना ।” यह कह उसने बहूको बिदा कर दिया । उसने बाहर आतेही विचार किया,—“मेरे ससुरका सिर बुढ़ापेके कारण फिर गया मालूम पड़ता है, तभी तो इतने इतने आदमियोंको इकट्ठा कर मुझे पाँच चावलके दाने दिये । अब मैं इन्हें कहाँ लिपा रखूँ ! अच्छा, जब यह भगिना, तब मैं दूसरे पाँच चावल लेकर दे दूँगी ।” यही सोचकर उसने वे पाँचों दाने फेंक दिये । इसके बाद सेठने दूसरी बहूको भी इसी तरह बुलवा कर पाँच दाने शालि-धानके दिये । उसने भी अपने मनमें विचार किया,—“अब मैं इन चावलोंको कहाँ उठा रखूँ । जब वे माँगेंगे, तब दूसरे चावलके दाने दे दूँगी । पर इन्हें भी क्यों फेंक ?” यह सोचकर उसने मुँह खोल कर उन दानोंको चबा लिया । इसी प्रकार सेठने तीसरी और चौथी बहूको भी चावलके दाने दिये । तीसरीने तो उन्हें एक अच्छे से घल्लमें बाँधकर जवाहरातके हज्जेमें रख दिया और चौथीने अपने माइयोंको बुलाकर दे दिया । उसके माइयोंने उसके कहे अनुसार उन दानोंको घरसातके दिनोंमें खी दिया । क्रमसे उन दानोंके बहुतसे दाने हुए । दूसरे वर्ष वे फिर बोये गये । उसके पहले से भी अधिक चावल उपजे । इसी तरह क्रमसे पाँच वर्षतक बोये जानेपर उन्हीं पाँच कणोंके हज़ारों

पहली षट्की तरह घतको त्याग दिया और इस लोक तथा परलोकमें बड़े-बड़े दुःख उठाये । कितनोंहीने जीविकाके लिये घेरा बना लिया । इन्हें दूसरी षट्की तरह समझना । कितनोंने स्वयं तो घतका पालन किया, पर औरोंको उपदेश देकर उसी तरह धर्ममें प्रवृत्त नहीं किया । इन्हें तीसरी षट्के समान जानना । और कितनेहीघत ग्रहण कर उनका स्वयं पालन करते हैं और अन्य अनेक मध्य जीवोंको प्रतिबोध देकर उनसे भी घत-पालन कराते हैं । इन्हें चौथी षट्के समान जानना । इस लिये हे राजर्षि ! तुम भी चौथी षट्की तरह घतका विस्तार करनेवाले बनो । यह कथानक श्रीमहावीर स्वामीके शासनमें हुआ है ।”

इस प्रकार कथा सुनाकर श्रीदत्त गुरुने राजर्षिको संयममें विशेष निश्चल कर दिया । इसके बाद राजर्षि संयमका पालन करते हुए क्रमशः सद्गुणिको प्राप्त हुए ।

श्रीक्षेमद्वार जितेन्द्रके कहे हुए बहिर्सादिक धर्मको परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये । इनमें धर्मका पहला लक्षण है प्राणि-दया, दूसरा सत्यवादिता, तीसरा अद्वेष का त्याग, चौथा श्लाघ्यका पालन और पाँचवाँ नौ प्रकारके परिग्रहका परित्याग । इन पाँचों धर्म-लक्षणोंको जानकर हे मय्यजीयो ! तुम निम्नतर धर्म-कर्ममें अपनी चेष्टा रखो ।” श्रीक्षेमद्वार जितेन्द्रकी यह वेशना सुनकर बहुतसे मध्य प्राणियोंने प्रतिबोध प्राप्त किया । श्रीजितेन्द्रने पहले गणधर्मे तथा अनुविध संघकी स्थापना की और इसके बाद यज्ञायुध राजाने श्रावक-धर्म मङ्गीकार कर, प्रभुको प्रणाम कर, अपनी पुरीकी राहली ।

एक दिन यज्ञायुध राजाके पुत्रके प्रभावसे हजार वर्षोंसे अधिष्ठित मति निर्मल चक्ररत्न उनकी अलखशालामें उलटत हुआ । राजाने अष्टाहिका-महोत्सव करके उनकी पूजा और आराधना की । तब यह अलखशालासे निकल कर आसमानमें उड़ चला । उसके पीछे-पीछे यज्ञायुध भी अपनी सेना सहित चल पड़े और उन्होंने क्रमशः मङ्गलाशती-विन्नयन्त्रे छः अण्ड जीत लिये । इसके बाद वे अपनी नगरीमें आकर

आश्चर्यमें आकर बड़ी दिलचस्पीके साथ सुनने लगे । चक्रवर्त्तनि कहा,—

“इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत-क्षेत्रमें घन्ध्यपुर नामका एक नगर है । उसमें घन्ध्यदत्त नामके राजा राज्य करते थे । उनकी रानीका नाम मुलक्षणा था, जिसके गर्भसे उत्पन्न नलिनीकेतु नामका एक पुत्र भी था । उसी नगरमें धर्म-मित्र नामका एक सार्वपाह रहता था । उसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था और उसीके गर्भसे उत्पन्न दत्त नामका एक पुत्र भी उसके था । उस लड़केकी स्त्री प्रमद्वरा बड़ी ही मनोहर रूपवती थी । एक दिन वसन्त-ऋतुमें यही दत्त नामका धनिक-पुत्र अपनी भार्याके साथ क्रीड़ा करनेके इरादेसे बागोचेमें गया । वहीं राजकुमार नलिनीकेतु भी क्रीड़ा करनेके लिये आ पहुँचे । राजकुमार उस परमा सुन्दरी प्रमद्वराको देखतेही कामातुर हो गये । फिर क्या था ? ऐश्वर्य और यौवनके मदसे घूर राजकुमारने अपने कुल और शीलमें कलङ्क लगानेका कुछ भी विचार न कर, उस स्त्रीका हरण किया और उसके साथ मनमानी मौज उड़ाने लगे । एक दिन दत्त अपनी स्त्रीके पिरहसे व्याकुल होकर उद्यानमें आया । वहाँ उसने सुमन नामके एक साधुको देखा । उसको तत्काल केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ था, इसलिये बहुतसे देव, दानव और मनुष्य उनकी धन्दना करनेके निमित्त आये हुए थे । केवलीको देखकर दत्तने भी शुद्ध भावसे उनकी धन्दना की । उस समय केवलीने दत्तको धर्मदेशना सुनायी । सुनकर उसे प्रतिशोध हुआ और उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया । इसके बाद वह दान-पुण्य आदि करता हुआ, आयु पूरी होनेपर, मृत्युको प्राप्त हुआ और सुकच्छ-विजय के घेताट्य-पर्यन्त पर महेन्द्रविजय नामक विद्याधरोंके राजाका पुत्र भजिनसेन हुआ । उसकी स्त्रीका नाम कमला था । इधर राजकुमार नलिनीकेतु पिताका राज्य पाकर प्रमद्वराके साथ गृहधर्मका पालन करने लगे । एक दिन अपने महलकी भातखी मंजिल पर बैठे हुए उन्होंने आसमानको पँख रंगे बादलोंसे घिरता हुआ पाया । थोड़ीही देर

बाहू जोरकर हवा बली और हवा बाहू के दृक्-दृक् होकर उड़ गयी । यह देख, उनके लम्बाय में समान तुल्यता हो गयी और उन्होंने विचार किया,— “हम हमसारायें धन, जीवन आदि सभी सम्पत्तियाँ, इन्हीं बाहूनी की मार बँधली हैं । मैंने आत्ममार्ग पर मार्ग बदला हुआ देखा, इस पर केवल के लिये, बहुत बड़ा पाप बसाया । अन्ततः अब मैं प्रवचन श्रुति-कारणों और मर नियमकारी शक्तियों कापकी मूल्यों को छोड़ कर अपनी आत्माको निर्मल कर दूँ, गो दीक हो । ” इस प्रकार विचार कर बाहू शक्तिनिर्वाहने अपने पुत्रको दायाँ पर बैठकर बाहू-शक्तियों का त्याग कर दिया और होमद्वारा जितेन्द्रियों के पास जाकर प्रवचन श्रुति-कारण कर ली । इसके बाद त्रितिक्षात्वं, साध उपरका प्राप्त करके, हुए, वेद-ज्ञान प्राप्त कर, स्वयं का स्वयं प्रसादन कर, उन्होंने मोक्षार्थ प्राप्त किया । यही प्रवचन श्रुति का मार्ग श्रुति-शक्तियों के पास जा, बाहू-शक्तियों पर कर, आयु पूरी होने पर मर कर सुन्दारी पुत्री शान्तिमती हुई है । इसके पूर्व जन्मके पनि इस विद्याधरने इसे विद्याकी साधना करते देखा और पिछली प्रीति के कारण इसे दर राया । इसलिये हे पवनयोग ! तुम इस पर नाराज मत हो और हे शान्तिमती ! तुम अपना मोक्ष त्याग कर । ”

पञ्चायुध धर्मधर्मोंकी यह बात सुन, दोनों विद्याधर और बालिका शान्तिमतीने परस्पर एक दूसरेसे अग्रगण्य हुआ कराया और चित्तको शान्त किया । तदनन्तर धर्मधर्मोंने सभासदोंकी ओर देखकर कहा,— “मैंने इन तीनोंके पूर्व भयकी बात बही, अब इनके भावी स्वरूपकी बात कहता हूँ, सुनो । इन दोनों विद्याधरोंके साथ यह शान्तिमती दीक्षा-ग्रहण करेगी और इत्यादि तप कर अन्तमें अनशन द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर दोसे अधिक सागरोपमकी आयुधला और वृद्धम घाहन इशानेन्द्र होगी । पवनयोग और अजितसेन साधु इसी भयमें घाती-कर्मोंका नाश कर, उत्तम वेद-ज्ञानको प्राप्त करेंगे । उस समय ईशानेन्द्र यहाँ आकर उनके वेद-ज्ञानकी महिमा बखानेंगे और अपने शरीरकी पूजाकर, अपने स्थानको खले जायेंगे । ये ईशानेन्द्र भी आयुष्य क्षय होनेपर यहाँसे

ज्युत होकर मनुष्य-मय प्राप्त करेंगे और दीक्षा लेकर, कर्मका क्षय कर, मोक्ष-सुख लाभ करेंगे । ”

यह भाषी वृत्तान्त श्रवणकर सब समासदोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले,— “अहा ! हमारे स्वामीका ज्ञान तो पदार्थोंके भूत, मविष्यन् और वर्तमान रूप यतलानेके लिये दीपकके समान है । ” इसके बाद शान्तिमती, पद्मनवग और अजिमसेन, तीनोंही चक्रवर्त्तीको प्रणाम कर, अपने अपने स्थानको चले गये ।

सहस्रायुध कुमारको जय सेनाके गर्भसे कनक शक्ति नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ । यह जब युवायस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसकी शादी कनकमाला और यसन्तसेना नामकी दो अच्छे कुलकी राजकुमारियोंके साथ कर दी । एक बार कुमार क्रोड़ा करनेके लिये एक घने जंगलमें चला गया । वहाँ कुमारने एक मनुष्यको कुछ ऊँचे उड़कर नीचेकी ओर गिरते देख कर उसके पास आकर इसका कारण पूछा । उसने कहा, “मैं घैताढ्य-पर्यन्त पर रहनेवाला विद्याधर हूँ । मैं चाहे जहाँ भाऊँ—जाऊँ, पर मेरे गिरने-पड़नेका डर नहीं रहता । आज यहाँ आकर मैं यड़ी देर तक रुका रह गया । मैं पीछे लौट रहा था, कि इतनेमें मैं आकाश-गामिनी विद्याका एक पद भूल गया, इसीलिये ऊपर नहीं उड़ पाता और इस प्रकार बार-बार चेष्टा कर रहा हूँ । ” यह सुन, कुमारने उससे कहा, — “हे विद्याधर ! तुम मुझे यह विद्या बतला दो । ” विद्याधरने उसे भला आदमी जानकर उसको यह विद्या बतला दी । उसी समय कुमारने पदानुसारी लब्धिके-प्रमाणसे उसका भूला हुआ पद उसे बतला दिया । इससे सन्तुष्ट होकर आकाशचारीने अपनी सारी विद्या कुमारको बतला दी । कुमारने उसके कहे अनुसार विधि-पूर्वक उस विद्याकी साधना की । इसके बाद यह स्वेष्टर (आकाशचारी) अपने स्थानको चला गया । एक दिन कुमार, इसी विद्याके प्रमाणसे, अपनी दोनों प्रियाओंके साथ, स्वेच्छा पूर्वक विहार करने हुए, हिमाद्रि-पर्यन्त पर भा पहुँचा । वहाँ विपुलमति नामक विद्याधर मुनिको देख,

उनके घरणों में प्रणाम कर, कुमार अपनी प्रियतमानों के साथ उचित स्थान पर बैठ रहा । इसके बाद उसने मुनि से इस प्रकार की धर्मदेशना सुनी:—

“कुपं रूपं कलाम्यासं, विद्यातन्नीर्वीरांगना ।

देवपं सप्रभुत्वं व, धर्मदेव प्रजापते ॥ १ ॥”

अर्थात्— “कुल, रूप, कलाओं का अभ्यास, विद्या, लक्ष्मी, सुन्दरी नारी, देव्य और प्रभुता—ये सब वस्तुएँ धर्म से ही प्राप्त होती हैं ।”

“जिस मनुष्य ने पूर्व जन्म में दानादि चार प्रकार के धर्मों की आराधना की है, वही पुण्यसार की भाँति समस्त मनोवाँछित सुखों को प्राप्त करता है । जैसे पुण्यसार के सारे मनोरथ पूरे हुए, वैसे ही जीरो के भी मनोरथ पूरे होंगे ।” यह सुन दोनों प्रियतमानों के साथ कनकशक्ति कुमार ने पूछा,— “हे प्रभो ! वह पुण्यसार कौन था ? ” यह सुन, मुनि ने उसे प्रबोध देने के निमित्त इस प्रकार कथा कह सुनायी:—

पुण्य-सार की कथा ।

इसी भरत-क्षेत्र में बड़े-बड़े नाभय-जनक पद्यों से भरा हुआ गोपालन नाम का एक नगर है । वहाँ धर्म का अर्षी, राजा से सम्मानित और महाजनो में मुख्य, पुरन्दर नाम का एक सेठ रहता था । उसकी स्त्री पुण्यध्री माताँ सबभ्रेष्ठगुणों का आश्रय थी । वह पतिकी प्यारी, सौभाग्यवती, भाग्यशालिनी और सुन्दर रूपवती थी । परन्तु उसमें एक ही दोष था और वह यह, कि उसकी गोद भरी पूरी नहीं थी । सेठ को पुत्र की बड़ी लालसा थी और उसके नात्मीय-स्वजन उससे दूसरा विवाह कर लेने की बार-बार कहा करते थे, तो भी उसने पुण्यध्री पर गाढ़ा स्नेह होने के कारण दूसरी स्त्री से विवाह नहीं

किया । एक समयकी बात है, कि उस सेठने पुत्रकी इच्छासे अपनी स्त्रीके साथ ही कुलदेवीकी पूजा की और उनसे इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन किया,—“हे कुलदेवी ! मेरे पूर्वजोंने और मैंने भी बराबर इस लोकके सुखके निमित्त तुम्हारी आराधना की है । मर यदि मैं निपुत्र ही मर जाऊँगा, तो फिर तुम्हारी पूजा कौन करेगा ! अतएव तुम कृपाकर अपने अवधि-ज्ञानसे घतलामो, कि मेरे सन्तान होगी या नहीं !” यह सुन, कुलदेवीने उपयोग देकर कहा,—“सेठजी ! पुण्य-कार्य करते हुए कुछ दिन धीत जाने पर तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा ।” कुलदेवीकी यह बात सुन, हर्षित होते हुए सेठने कुल-पर्यायसे चले भाते हुए धर्मोंका विशेष रूपसे पालन करना शुरू किया ।

कुछ दिन बाद एक बड़ा ही पुण्यात्मा जीव पुण्यभूमीकी कोखमें आया । उस समय उसने स्वप्नमें चन्द्रमा देखा । सचेरे ही उसने अपने पतिको इस स्वप्नकी बात कह सुनायी । सेठने अपनी बुद्धिसे इस स्वप्नका विचार करके अपनी स्त्रीसे कहा,—“तुम्हें बड़ा ही उत्तम पुत्र प्राप्त होगा ।” यह सुन, यह बड़ी प्रसन्न हुई । इसके बाद क्रमसे समय पूरा होने पर शुभ दिन—मक्षत्रकी उसके गर्मसे एक उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ । उसकी पैदायशकी सुश्रीमें पिताने बड़ी धूमधाम की और दीन-हीन जनोंको तथा याचकोंको सोना, चाँदी और वस्त्रादिका दान किया । इसके बाद पुण्यसे प्राप्त होनेके कारण सेठने अपने समस्त स्वजनोके सम्मुख, उस पुत्रका नाम पुण्य-सार रखा । यह पुत्र क्रमशः धार्त्रियोंसे पाला-पोसा जाता हुआ पाँच वर्षका हुआ । तब पिताने बड़ी धूमधामका उत्सव कर उसे एक बड़े भच्छे पण्डितके पास कलाम्यास करनेके लिये पाठशालामें भेज दिया ।

उसी नगरमें रत्नसार नामका एक सेठ रहता था, जिसके एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या थी । उसका नाम रत्नसुन्दरी था । यह भी उन्हीं पण्डितजीसे पुण्यसारके साथ-ही-साथ कलाम्यास करती थी । कभी-कभी स्त्री-स्वमायश घञलनाके कारण रत्नसुन्दरी पुण्यसारके

साथ विवाद कर बैठी थी। एक दिन इसी तरहका विवाद होते-होते पुण्य-
सारने क्रोधमें आकर उससे कहा,—“अरी बालिके ! यदि तू अपनेको
बड़ी पण्डिता और कलावती मानती हो, तो भी तुझे मेरे साथ विवाद
नहीं करना चाहिये; क्योंकि तू किसी पुरुषके घर दासी होकर ही
जानेवाली है ।” इसपर उसने कहा,—“यदि मैं दासी भी हूँगी, तो
किसी बड़े भारी भाग्यशाली पुरुषकी हूँगी, तुम्हारी तो न हूँगी !” यह
सुन, पुण्यसारने कहा,—“अरी क्या अभिमान करनेवाली ! यदि मैंने
तुझे ज़बरदस्ती अपनी दस्ती नहीं बनाया, तो मैं पुरुष ही नहीं ।” यह सुन,
यह फिर बोली,—“रे मूर्ख ! ज़बरदस्तीसे भी कहीं किसीका स्नेह
प्राप्त होता है !” फिर दूसरीको इस तरह स्नेह कैसे हो सकता है ।”
इस प्रकार परस्पर विवाद कर पुण्यसार पाश्चात्यासे अपने घर चला
आया और उद्दाम मुँह बनाये, क्रोध सूषक शब्दापर आकर सो रहा ।
इतनेमें पुरन्दर सेठ, भोजनका समय हो जानेके कारण, सन्नेके लिये
घर आया । पुत्रकी हालत सुनकर वह उसके पास आया और उससे
पूछा,—“बेटा ! आज मेरा चेहरा ऐसा उद्दाम क्यों हो रहा है ! इस
भसमयमें ही तू क्यों सोया पड़ा है ! इसका कारण बता ।” जब
सेठने इस प्रकार आग्रहसे पूछा, तब उसने कहा,—“जिजाऊ ! यदि
आप मेरा विवाह सेठ रत्नसारकी पुत्री रत्नमुन्दरीके साथ कर दें, तब
तो मुझे खैर आयेगा, नहीं तो मुझे किसी तरह शक्ति नहीं मिलने
की ।” यह सुन, सेठने कहा,—“बेटा ! अनी तेरी बच्ची इतर है ।
अनी पठनापढ़ने रह कर विद्याका अध्ययन कर, ऐसे जब व्याहृत
समय आयेगा, तब व्याहृत कर दिया जायेगा ।” यह सुन, पुत्रने फिर
कहा,—“जिजाऊ ! यदि आज उसके जिजासे मेरे लिये उसकी मंगनी
करा दें, तब तो मैं भोजन बर्हंगा, नगी की हाथिड़ नहीं खाऊँगा ।”
यह सुन, सेठने उसकी बात मान ली और उसे समझादुखा कर मोहन
कराया । इसके बाद वह मरद अपने स्वयंकीई साथ रत्नसार सेठके
घर गया । उसे माने देख, रत्नसार सेठ यह कहता हुआ, उसे देखते

लिये आसन दिया और स्वागत-प्रभके साथ बड़ी नम्रतासे बोला,—
 “भला यह तो कहिये, आज आपने किस लिये मेरे घर आनेकी कृपा की ?” पुरन्दर सेठने कहा,—“सेठजी ! मैं आज अपने पुत्रके लिये आपकी पुत्री रत्नसुन्दरीकी मंगनी करने आया हूँ ।” यह सुन, रत्नसारने कहा,—“यह बात तो मेरे मनकी सी ही है । यह कन्या आपकी ही पुत्रकी सौपूँगा, इसमें कहनेको क्या बात है ? आपकी इशारा ही काफी है । कन्या तो आज़िर किसी-न-किसीको देनी है फिर जब स्वयं ही आप उसकी मंगनीके लिये आये हैं, तब भी क्या चाहिये ? मैं आपकी बात मानता हूँ ।” जब रत्नसार सेठने इतना कह डाला, तब उसके पासही बैठी हुई वह बालिका चटपट बोल उठी,—
 “पिताजी ! मैं कदापि पुण्यसारकी पत्नी न बनूँगी ।” उसकी यह बात सुन, पुरन्दर सेठने अपने मनमें विचार किया,—“ओह ! मेरे पुत्रने क्या ही इस कन्याके साथ ब्याह करनेकी इच्छा की । बचपनमें ही जिसकी धाणी इतनी कठोर है, वह जब जयानीकी मस्तीमें आयेगी, तब भल पतिको कौनका सुख देगी ?” वह ऐसा सोच हो रहा था, कि रत्नसार सेठने कहा,—“मेरी लड़की अभी निरी नादान बच्ची है । क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये, इसकी समझ इसको नहीं है । इसलिये आप इसके कहेका कुछ खयाल मनमें न आने दें । सेठजी ! मैं इसे समझा-बुझा कर आपके ही पुत्रके साथ विवाह करनेको राज़ी कर लूँगा ।” यह सुन, पुरन्दर सेठ अपने स्वजनोंके साथ घड़से उठ कर अपने घर भाया और पुत्रसे सारा हाल सुनाकर कहा,—“बेटा ! वह लड़की तेरे लायक नहीं है, क्योंकि—

‘कुंरुदां विगतचंदां, समार्गीलकुमोभिताम् ।

अतिप्रचण्डां दुस्तुयुषां, गृहिणीं परिवर्जयेत् ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘कुरूप, सेह-रहिता, लज्जा, शील और कुलसे हीना अतिप्रचण्डा और दुर्भाषिणी भार्याका सदा त्याग करना चाहिये ।’

“येसा शास्त्रमें कहा हुआ है ।” यह सुन, पुण्यसारने कहा,—

“पिताजी ! आप जो कहते हैं, वह ठीक है; पर यदि मैं उसके साथ ब्याह करूँगा, तभी तो मेरी प्रतिष्ठा पूरी होगी, नहीं तो झूठी पड़ जायेगी ।” पिताजी यह उत्तर देकर पुण्यसार उत्तकी प्राप्ति के लिये दूसरा उपाय सोचने लगा ।

एक दिन पिताजी यादसे उसे मालूम हुआ, कि उत्तकी कुलदेवी बड़ी जागती देवी हैं । इसलिये उसने एक शुभ दिवसको पुण्य, नैवेद्य, धूप और विलेपन आदि उत्तमोत्तम सामग्रियोंसे उनका पूजाकर, उसने प्रार्थना की,—“हे कुलदेवी ! जैसे तुमने सन्तुष्ट होकर मेरे पिताको मुझे पुत्र-रूपमें दान किया है, वैसेही मेरे स्त्री-सम्बन्धों मनोरथको भी पूरा कर दो । हे देवी ! यदि तुमने मेरा मनोरथ ही पूर्ण नहीं किया, तो फिर जन्म काहेको दिया ? हे देवी ! अब जबतक तुम मेरा मनोरथ नहीं पूरा करोगी, तबतक मैं बिना खाये-पिये यहाँ खड़ा रहूँगा ।” यह कह, वह देवीके सामने घरना देकर बैठ रहा । एकही दिनके उपवाससे देवी उत्तर प्रसन्न हो गयी और बोली,—“बेटा ! जामो—घीरे-घीरे सबकुछ तुम्हारे मनके मुझाड़िके ही हो जायेगा । विन्ता न करो ।” यह सुन, पुण्यसारको बड़ा आनन्द हुआ और उसने पारम्पा कर, पिताकी आज्ञा ले, पात्रमालाको शेर मिठा पूरी करनी शुरू की । कन्धा कलाम्याल सन्तूर्ण होनेपर वह अब पुत्रावस्थाको प्राप्त हुआ, तब उसे डुरका चसका लग गया । स्नेहके कारण उत्तके माता-पिताने उसे कितनीही बार रोका-टोका, तभी वह डुरकी चट नहीं छोड़ सका । एक दिन पुण्य-सार लाख स्पर्धा डुरमें हार गया । उसने घर भाकर लाख रुपये कर्मतका एक गहना, जो राजाका था और सेठके घर रखा हुआ था, लेकर जिते हुए जुमाड़ियोंको दे दिया । कुछ दिनों बाद जब राजने करना वह गहना सेठसे निरता मंगा, तब सेठने उसे उस स्थानमें नहीं पाया, जहाँ उसने रख छोड़ा था । तब उसने अपने मनमें सोचा,—“डुर ही पुण्यसार वह गहना ले गया है । गुन स्थानमें रखी हुई चीज-का दूसरेको क्या पता है ?” इस तरह सोच कर वह सन्नग गया । कि

अब तो यह गहना हाथसे गया ! यह देखकर उसके जीमें यह बात आयी, कि—

“यदर्थं लिखते लोके-वदनत्र कियते महान् ।

तेऽपि सन्तापदा पथं, दुष्पुत्रा हा भवन्त्यहो ॥ १ ॥”

अर्थात्—“ओह ! जिनके न होनेसे लोग सदा त्रिप्त रहा करते हैं और जिनकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े यत्न किया करते हैं, वे पुत्र भी कुपून हो कर इस प्रकार दुःख देते हैं ।”

फिर सेठने सोचा,—“इस दुष्टने राजाका गहना छुपमें गोपा दिया, इसलिये येमे पुत्रको तो घरसे निकाल देनाही ठीक है ; क्योंकि यह पुत्रके काममें मेरा दुश्मन् ठिका है ।” ऐसा विचार कर यह दूकानपर चला गया । जब पुत्र वहाँ आया, तब उसने उससे गहनेकी बात पूछ-ताँछ की । इसपर बेटेने बापसे सच्चा-सच्चा हाल बयान कर दिया । यह सुन, सेठने क्रोधमें आकर कहा,—“रे दुष्ट ! जा, तू यह गहना ले जा । बिना लाये मेरे घर न आना ।” यह कह, उसने उसको नुप फटकारा और गलेमें हाथ डाल भुँकायाते हुए, उसे अपने घरसे निकाल दिया ।

उस समय रात हो गयी थी, इसलिये वह कहीं और तो नहीं जा सकता था, इसीमे गाँवके बाहर जा, एक बड़के पेड़के लगेडालमें घुस गया । सेठ जब घर आया, तब उसकी स्त्रीने पूछा,—“आज पुण्य-सार अमीनक घर क्यों नहीं आया ?” यह सुन, पुरन्दर सेठने कहा,—“यह कुपून राजाका गहना छुपमें दार आया, इसी लिये मैंने उसे सीक देनदे लिये क्रोधमें आकर घरसे निकाल दिया है । इसीमे यह घर नहीं आया है ।” यह सुन, सेठनीने कहा,—“जब तुमने इसकी राजकी पुत्र-को घरसे बाहर निकाल दिया, तब कैसे मेरे पाम आना मुँह दिखाने आये हो ? ब्यामी ! इस बीघेरी राजमें उस बालकको घरसे निकालने तुम्हें कष्टा नहीं आयी ? इसलिये त्रापी, अब पुत्रकी लेकर ही मेरे घरमें आना ।” सेठनीकी यह फटकार सुन, बेटेकी याद कर, सेठ बहुत

हो दुःखी हुआ और सारे शहरमें उसकी खोज कराने लगा । इधर सेठके चले जानेपर सेठानीने यह देखकर, कि घरमें कोई मर्द-मानस नहीं है, अपने मनमें विचार किया,—“ओह, मैंने क्रोधमें आकर पतिको घरसे दुतकार दिया, यह अच्छा नहीं किया । पहले तो सेठजीने ही मूर्खता की—पोछे में भी मूर्खता कर बेठी !” इस प्रकार सोचती हुई सेठानी रोते-रोते पति-पुत्रको राह देखती हुई, अपने घरके दरवाज़ेपर बैठ रही ।

इधर रातके समय बट-वृक्षके खण्डोलमें बैठे हुए पुण्यसारने दो देवियोंको, जिनके शरीरको कान्तिसे चारों ओर उज्ज्वला फैला हुआ था, इस प्रकार बातचीत करते सुना । पहलीने कहा,—“बलो बहन ! इस समय मनमाने ढंगसे पृथ्वीकी सैर की जाये । रातका समय है । यह अपने लिये और भी अच्छा है ।” इसपर दूसरी बोली,—“सखी ! व्यर्थ ही इधरसे उधर चक्कर लगाकर आत्माको कष्ट किस लिये देना ? इस लिये अगर कहीं कोई कौतुक हो रहा हो, तो उसे चलकर देखना चाहिये ।” उसके फिर पहलीने कहा,—“अगर कौतुक देखना हो, तो घट्टमी नामक नगरमें चलो । वहाँ धन नामका सेठ रहता है । उसकी स्त्रीका नाम धनयती है, जिसके गर्मसे उसे सात लड़कियाँ पैदा हुई हैं । उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—“पहलीका नाम धर्मसुन्दरी, दूसरीका धनसुन्दरी, तीसरीका कामसुन्दरी, चौथीका मुक्तिसुन्दरी, पाँचवींका भाग्यसुन्दरी, छठीका सौभाग्यसुन्दरी और सातवींका गुणसुन्दरी है । इन कन्याओंके लिये अच्छे घर मिलनेके लिये उस घना सेठने लड़ू वगैरह प्रसाद चढ़ाकर लम्बोदर-देवकी पूजा की । देवताने सन्तुष्ट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा,—“सेठजी ! आजके सातवें दिन रातके समय बड़ा ही शुभ लग्न है । उस समय तुम विवाहका कुल सामग्रियाँ तैयार रखना । उस दिन उस समय दो सुन्दर वेश्याली स्त्रियोंके पोछे-पोछे जो कोई पुरुष आवेगा, वही तुम्हारी कन्याओंका पति होगा ।” यह कह, लम्बोदरदेव सन्तर्जान हो गये । आज ही वह सातवीं रात

है । इसलिये चलो, यहीका तमाशा देखा जाये और अपने निवास-रूप इस वृक्षको भी साथ ले चलो ।”

देवियोंकी यह बात सुन, वृक्षके कोटरमें बैठे हुए पुण्यसारने सोचा,—“चलो, इसी सिलसिलेमें मैं भी यह तमाशा देख लूँगा ।” वह यह सोचही रहा था, कि उन देवियोंने हुंकार कर, छटपट उस वृक्षको उखाड़ डाला और क्षणभरमें उसे लिये हुई पलमीपुरके बागमें उतर पड़ी । इसके बाद दोनों देवियाँ, साधारण ओका घेरा बना, गाँवमें घुस पड़ी । वृक्षके कोटरसे निकलकर पुण्यसार भी उनके पीछे-पीछे चला । इधर लम्बोदरके मन्दिरके द्वारपर विवाह-मण्डप तैयार कर, उसके अन्दर वेदिका बनवाये और सब आरामीय-स्वजनोंको इकट्ठा किये हुए यह सेठ अपनी सातों कन्या-भोंके साथ बैठा हुआ था । इनमेंमें वे देवियाँ उस सेठके घर रसोई जीमने आयीं । सेठने उनके पीछे-पीछे पुण्यसारको जाते देखा । देखते ही उसका हाथ पकड़, उसे श्रेष्ठ आसन पर बैठाते हुए सेठने कहा,—“हे मय ! लम्बोदरने तुम्हें आज यहाँ मेरा जमाई होनेके लिये भेजा है, इसलिये तुम मेरी इन सातों कन्याभोंका पाणि-ग्रहण करो ।” यह कह, सेठने उसे घरके कपड़े पहनाये और लाख रुपये मूल्यके गहनोंसे भलसूजन कर दिया । इसके बाद घबल-मङ्गलके साथ भस्मिको साक्षी देकर शुभ-मुहूर्तमें पुरन्दरपुत्र पुण्यसारने उन सातों कन्याभोंका पाणिग्रहण किया । उस समय उसने अपने मनमें विचार किया,—“ओह ! दिनाने जो मुझे घरसे निकाल बाहर कर दिया, वह बहुत ही अच्छा किया, नहीं तो मेरे पुण्यका प्रभाव कैसे प्रकट होता !” इसके बाद विवाहकी सब रस्में पूरी होजाने पर सेठ, बड़ी धूमधामके साथ अपनी कन्याभोंके साथ साथ पुण्यसारको भी अपने घर ले आया और अपने मकान की सबसे ऊपर-वाली मंजिलपर उनका डेरा डाला ।

उन सातों कन्याभोंने पुण्य-गारको पलङ्ग पर बिठा, भाग नीचे रखे हुए आसनोंपर बैठकर पूछा,—“देनाथ ! आपने कितना कलाम्यास

किया है ?" उसने कहा,—“मुग्धाओ ! मुझे कलामोंसे प्रेम नहीं ; क्योंकि—

‘अत्यन्तविदुषां नैव, सुतं मूर्खतृषां न च

अजनीयाः कलाविद्भिः, सर्वथा नम्यमाः कलाः ॥ १ ॥

अर्थात्—“अत्यन्त विद्वान् ननुष्योंको सुत नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त मूर्ख ननुष्य भी सुत नहीं पाते । इसलिये कलाओंके जानने-वलोंको चाहिये, कि तदा तब प्रकारसे नम्यन कलाओंका ही उपासन करें।

वे बिचारी इस श्लोकका अर्थ नहीं समझ सकीं, इसलिये सोच-विचारमें पड़ गयीं । तब पुण्यसारने अपने मनमें सोचा,—“यदि वह बृह यहाँसे चला जायेगा, तो मैं वहीं पड़ा रह जाऊँगा; इसलिये अब यहाँ विलम्ब नहीं करना चाहिये ।” इस विचारके उत्पन्न होतेही वह चारों तरफ देखने लगा । यह देख, सबसे छोटी गुण सुन्दरीने पूछा,—“हे नाथ ! क्या आप शौचको आया चाहते हैं ?” उसने उत्तर दिया,—“हाँ” यह सुन, गुण सुन्दरी उसका हाथ पकड़े हुई नीचे ले आयी । यहाँ पहुँच कर उसने अपना परिचय देनेके लिये खड़ियासे यह श्लोक चौकट पर लिख दिया,—

“गोपालपुरादागां, बहुभ्यां देवयोगतः ।

परिचय बभूः सप्त, पुनस्तत्र गतो स्म्यहम् ॥ १ ॥

अर्थात्—“मैं देवयोग ने गोपालपुर में बहुनागरी में आ पहुँचा था और सात बहुओं से ब्याह कर फिर वहीं लौटा जा रहा हूँ ।

यह लिखकर वह उस घरके द्वारके पास पहुँचा, जिसमें उसकी सब बियाँ पढ़ते श्लोकका अर्थ समझने नहीं आनेके कारण शर्मायी हुई सोचमें पड़ी बैठी हुई थीं । वहाँ आकर उसने गुणसुन्दरीसे कहा,—“तुम भीतर चली जाओ, जिसमें मैं निश्चिन्त होकर शौचसे निवृत्त हो जाऊँ ।” यह सुनकर वह भी स्वामीको निश्चिन्ततासे शौचादिसे निवृत्त हो जानेके लिये छोड़कर घरके अन्दर चली आयी । इतनेमें पुण्यसार उस घरसे बाहर हो, नगरके बाहर हो गया और पूर्वोक्तवट-वृक्षके कोट-

हुँइ निकालूंगी । यदि ऐसा न कर सकी, तो आगमें जल मर्दगी ।” अपनी बेटीकी यह बात सुन, पिताने उसको उसी समय मर्दका बना पहना दिया । मर्दका जामा पहन, बहुतसे भाइमियोंको अपने साथ लिये हुए, गुणसुन्दरी कुछ दिनोंमें गोपालकपुरमें आ पहुँची ।

उस नगरमें पहुँच कर उसने अपनेको गुणसुन्दर नामसे प्रसिद्ध किया । जहाँ-तहाँ लोग आपसमें कहने लगे, कि “गुणसुन्दर नामका एक सौदागरका लड़का यहाँ आया हुआ है ।” इसके बाद वह सेठकी लड़की उसी पुरुष वेशमें मेंढके लिये तरह-तरहकी बहुत वस्तुएँ लिये हुई राजसभामें आयी । राजाने भी उसकी बड़ी स्तुतिरकी । इसके बाद वह वहीं रह कर मालकी खरीद-बिक्री करने लगी ।

धीरे-धीरे उसने पुण्यसारसे भी मैत्री कर ली । इससे सारे नगरमें उसकी प्रसिद्धि हो गयी और लोग जहाँ-तहाँ कहने लगे,—“बलभीपुरसे जो गुणसुन्दर नामका नौअवान सौदागर यहाँ आया है, वह बड़ा ही विद्वान्, रूपवान् और गुणवान् है । उसके समान रूप और गुणमें विलक्षण पुरुष दूसरा कोई नहीं दिखाई देता ।” उसकी ऐसी प्रशंसा सुनकर रत्नसार सेठकी पुत्री रत्नसुन्दरीने अपने पितासे कहा,—“पिता जी ! आप मेरा व्याह इसी गुणसुन्दर कुमारके साथ कर दीजिये ।” अपनी बेटीका यह अभिप्राय मालूम होतेही सेठने गुणसुन्दरीके पास भाकर कहा,—“हे कुमार ! मेरी पुत्री रत्नसुन्दरी तुम्हें ही अपना स्वामी बनाया चाहती है ।” यह सुन, उसने अपने मनमें विचार किया,—“उसकी यह इच्छा विलकुलअर्थ है, क्योंकि मला स्त्रीके साथ स्त्रीका प्रियाह कैसे हो सकता है ? इनकी गृहस्थी कैसे चलेगी ? इसलिए इसे कुछ अथाव देकर टाल दूँ, नहीं तो उस बेचारीकी भी मेरीही सौ दायित होगी ।” ऐसा विचार कर, उसने सेठसे कहा,—“ऐसी अवस्थामें कुलीन मनुष्योंको अपने माता-पिताकी आज्ञा ले लेनी परम आवश्यक है, और मेरे माँ-बाप यहाँसे बहुत दूरपर हैं, इसलिए आप तो अपनी पुत्रीका प्रियाह यहीं यहीं पासमें रहनेवाले किसी घरके साथ कर दीजिये ।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें धर्मदेशना द्वारा मध्य प्राणियोंको प्रतिबोध देनेके निमित्त श्री ज्ञानसागर नामक गुह्र था पहुँचे । पुरन्दर सेठ उनकी धन्दना करनेके लिये यड़ी भक्तिके साथ अपने पुत्र पुण्यसार को संग लिये हुए उद्यानमें था पहुँचा । और-और नगर-निवासी भी आये । देशनाके अन्तमें अचसर पाकर पुरन्दर सेठने गुह्रको नमस्कार कर पूछा,—“हे प्रभो ! मेरे पुत्र पुण्यसारने पूर्य जन्ममें कौनसा पुण्य किया था !” यह सुन, सखीभरने अधधि-ज्ञानके सहारे उसके पूर्व भवका वृत्तान्त जानकर कहा,—“सेठजी ! खूब मन लगाकर सुनो ।

“नीतिपुर नामक नगरमें एक कुलपुत्र रहने थे । उन्होंने वैराग्य के कारण सुधर्म नामक मुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली और गुह्रकी दी हुई शिक्षाकी सदा स्मरण किया करते थे । एक बार गुह्रने उनसे कहा,—“हे साधु ! तुम आवश्यक क्रियाका आह्वान क्यों करते हो ? मतमें अनिश्चार लानेसे बड़ा दोष होता है ।” यह सुन, भयभीत होकर वे मुनि कायगुप्ति पालन करनेमें असमर्थ होनेके कारण मुनियोंकी तरह पैया-वध करने लगे । क्रमशः समाधि-मरण प्राप्तकर, वे मुनि सौधर्म नामक देवलोकमें जाकर देवता हुए । आयुक्षय होनेपर वे ही वहाँसे प्युत होकर तुम्हारे पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए हैं । पाँच समितियों और दो गुप्तियोंकी—अर्थात् सातों प्रवचन-माताओंकी इन्होंने भली भाँति आराधना की थी, इसी लिये इन्हें सात नारियाँ अनायास ही मिल गयीं और आठवीं कायगुप्तिकी आराधना इन्होंने बड़ी मुश्किलसे की थी, इसीलिये आठवीं स्त्री ज़रा तरदुदसे मिली । इसी लिये बुद्धि-मानोंको भी धर्मके कामोंमें प्रमाद नहीं करना चाहिये ।” इस प्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तान्त सुन, विधेकी पुण्यसारने आधक-धर्म भूरीकार कर लिया और पुरन्दर सेठने वैराग्यके मारे चरित्र ग्रहण कर लिया । इसके बाद क्रमशः पुण्यसारको कितने ही बालवधे हुए । वृद्धावस्थामें पुण्यसारने भी दीक्षा ले ली और मरनेपर सद्गतिकी प्राप्ति हुआ ।

इस प्रकार बुज्जुसारकी कथा सुन, कनकशालि राजाने वंशान्तके मारे राजलक्ष्मीका त्याग कर दिया और चारित्र्य प्रदण कर लिया । उनकी दोनों स्त्रियोंने भी विमलमति नामक साध्वीसे संयम ले लिया और तपस्याकी साधनानें तत्पर हो गयीं । एक समयकी बात है, कि महा-मुनि कनकशालि पृथ्वीपर विहार करते हुए कमरा 'सिद्धि' नामक पर्वत पर रातभरके लिये रहे । उस समय उनके पूर्व भवके वैरो दिनचूल नामक देवने वहाँ आकर दड़े उपद्रव मचाये । यह देख, खेचरोंने उस देवकी रोका । इसके बाद प्रातःकाल कायोत्सर्ग करके मुनि रत्नसञ्चया नगरमें आकर सूरतिपात नामक उद्यानमें प्रतिभा करके रहे । वहाँ शुकृध्यान करते हुए उनके चारों धातों कर्मोंका क्षय हो गया और विश्व के दीपकके समान केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ । उस समय देवों, विद्या-धरों और असुरोंने आकर उनके केवल ज्ञान प्राप्त होनेके उपलक्षमें बड़ी धूमधामसे उत्सव किया । वज्रायुध चक्रवर्ती और अन्य भक्तियोंने भी उनकी बड़ी आदर-भक्ति की ।

एक समय क्षेमंकर जितेश्वर विहार करते हुए उस नगरमें आये और ईशान-दिशामें उनका सनवसरण बनाया गया । उस समय सेवकों ने चक्रवर्तीके पास आकर जितेश्वरके वागमनपर उन्हें बधाई दी । उन्हें इस बधाईके उपलक्षमें इनाम देकर, वज्रायुध चक्रवर्ती बड़ी धूमधाम और गात्रे-घात्रेके साथ अपने परिवारकी लिये हुए धीजितेन्द्रकी प्रणाम करने गये । वहाँ पहुँच, स्वामीकी तीन प्रदक्षिणा करते हुए उनकी वन्दना कर, वे धर्मदेरता ध्वज करनेके लिये उचित स्थानमें बैठ गये । देरताके अन्तमें चक्रवर्तीके पुत्र सहस्रायुधने दोनों हाथ जोड़, जितेश्वरकी प्रणाम कर पूछा,—“हे भगवन् ! पवनवेग आदिके पूर्व भवकी बात मेरे चित्तने कैसे जान ली ? मुझे यह जाननेके लिये बड़ा कौतुहल हो रहा है । इस लिये हुमाकर इसका मुझे नेद दत्तलाइये ।” यह सुन, भगवान्ने कहा,—“तुम्हारे पिता वज्रायुधने अवधि-काल द्वारा यह बात जान ली थी ।” तब सहस्रायुध कुमारने पूछा,—“हे प्रभु ! ज्ञान कितने प्रकारका है ?”

क्यों नाराज़ हो गये ?” इसी सोच-विचारमें तीन दिन बीत गये । एतनेमें उसे यह बात सूझ गयी, कि अथवाही इसी लड़केने मेरे पत्रिका मन मेरी तरफ़से फेंक दिया होगा, इसलिये अब मैं इसीकी खुशामद करूँ, जिससे मेरे पति मुझपर फिर प्रसन्न हो जायें । ऐसा विचारकर उसने एक दिन रोहकसे बड़ी मुद्दमन दिखलाते हुए कहा,—“बेटा ! तू अपने पिताको मेरे ऊपरसे क्रोध हटा देनेको कहो । मैं तुम्हारी दासी होकर रहूँगी, जो कहोगे, वही करूँगी ।” यह सुनकर बुद्धिमान् रोहक राज़ो होगया । इसके बाद फिर एक दिन चाँदनी रातको रोहकने पितासे कहा,—“पिताजी ! उठिये, उठिये, देखिये आज फिर वही पुरुष जाता नज़र आता है ।” यह सुन, पिताने कहा,—“कहाँ है, बेटा ! मुझे दिखाओ, तो सही ।” यह सुन, रोहकने उसे अपने शरीरकी छाया दिखा दी । यह देख, उसके पिताने कहा,—“अरे, यह तो आदमी नहीं, शरीरकी छाया है ।” रोहकने कहा,—“पिताजी ! मैंने तो उस दिन भी ऐसा ही पुरुष देखा था !” यह सुनकर, रंगशूरने मनमें सोचा,—“ओह ! मैं नाहक एक लड़केकी बातमें आकर अपनी लीके विषयमें शङ्का रखने लगा और व्यर्थमें उसका अपमान किया !” यह विचार मनमें उत्पन्न होते ही उसका क्रोध शान्त हो गया और वह फिर पहलेकी तरह रुबिमणीके साथ प्रीतिका घत्ताव करने लगा ।

रोहक सदा अपने पिताके साथही भोजन किया करता था । यद्यपि उसकी माता उसपर भक्ति रखती थी, तथापि वह उसका विश्राम नहीं करता था ।

एक दिन रंगशूर उज्जयिनी-नगरीको चला गया । उसके साथही रोहकने भी वहाँ जाकर सारी नगरीकी सैर की । जब ये दोनों शहरके बाहर चले आये, तब कोई काम याद आजानेसे रङ्गशूर फिर नगरमें चला गया । रोहक नगरीके बाहरही क्षिप्रानदीके तीरपर बैठ रहा । बैठे-बैठे उसने नदीकी रेतमें देव-मन्दिर आदिके सहित सारे नगरका चित्र अङ्कित कर डाला । इसके बाद राजमन्दिरकी रक्षा करनेकेलिये

आप द्वारपालको तरह दरवाजे पर खड़ा हो रहा । इनमेंमें कुछ आद-
मियोंको साथ लिये हुए उस नगरीका राजा घोड़ेपर सवार हो, उसी
रास्तेसे गुज़रने लगा । उसे देख, रोहकने बड़ी धृष्टताके साथ कहा,—
“हे राजकुमार ! क्या आप इस प्रासाद-श्रेणीसे सुशोभित नगरीको ध्वंस
कर देना चाहते हैं, जो इधरसे घोड़ा हटाकर नहीं ले जाने ?” यह सुन,
उसकी अङ्कित की हुई नगरीको देख, उसकी बुद्धिमानोंसे आश्चर्यमें आ-
कर राजाने कहा,—“यह लड़का बौन है ?” उनके पास बड़े सेवकोंने
कहा,—“महाराज ! यह रङ्गूर नटका पेटा रोहक है । हीनो जगसा
लड़का ही ; पर बड़ा ही होशियार है ।” यह सुन, राजाने अपने मनमें
विचार किया,—“अच्छा, मैं इस बालकको बुद्धिमानोंकी परीक्षा करूँगा ।”
तदनन्तर पिताके आनेपर रोहक उसके साथही अपने घर चला आया ।

एक दिन राजाने अपने सेवकोंको नट-ग्राममें भेजकर यहाँके लोगों-
पर यह फ़र्मान जारी किया, कि चाहे जितना खर्च हो जाय; लेकिन मेरे
रहनेके लिये एकही खीझका एक महल तैयार कर डालो । यह हुक्म-
नामा सुन, रङ्गूर घेरह सभी बड़े-बूढ़े लोग इकट्ठे होकर विचार करने
लगे और यह कार्य करनेमें असमर्थ होकर बड़ी देरतक विचार ही करने
रहे । इनमेंमें भोजनका समय होजानेके कारण गीता हुआ रोहक
आकर बोला, —“पिताजी ! चलो, मुझे भूख लगी है । मैं तुम्हारे बिना
भोजन नहीं करूँगा ।” यह सुन, रङ्गूराने कहा,—“पेटा ! थोड़ी देर
ठहरो । राजाका बड़ा दिव्य हुक्मनामा आया है । इस समय उसीका
विचार चल रहा है ।” रोहकने पूछा,—“बैसा हुक्मनामा आया है ?
सोनेके बरत, —“उन्होंने कहला भेजा है, कि मेरे लिये एकही खीझका
एक महल तैयार कराओ । इसलिये उनको हुक्मकी तामील तो कर-
नीसी होगी ।” यह सुन, रोहकने कहा “अनी चरकर आर महारोग
साँसे-सिँसे, सोँसे मैं आप लोगोंको इसका ज्ञास दूँगा । इसके लिये
इसी दिन की बजा आयाजबला है ।” यह सुन, सोँसे महारोग करने
बने गये । साँसेकर उर सद लोग फिर इकट्ठे हुए, यह उन्होंने रोहक-

लोग इस कुपे'को रवाना कर देंगे ।" यह सुनकर, राजाने सोचा, कि इसकी बुद्धि तो बड़ी ही तीव्र है । यह कोई मामूली बुद्धिमान नहीं है ।

तदनन्तर एक दिन राजाने कहला भेजा,—“हे प्रामवासियो ! तुम्हारे गाँवकी उत्तर दिशामें जो वन है, उसे गाँवके दक्षिण कर दो ।” इसपर रोहकने जवाब दिया, कि गाँवको वनके उत्तर बसा दीजिये, बस यह वन गाँवके दक्षिणमें आ जायगा ।” यह सुन, राजाने विचार किया, कि यह तो बड़ाही होशियार है ।

फिर एक दिन राजाने हुक्म दिया, कि बिना आगके सहारे खीर पकाकर मेरे पास भेज दो । यह सुन, रोहकने जङ्गलके कण्डोंके बीचमें बड़े-बूढ़से खीरका बर्तन रख दिया । उन कण्डोंकी गरमीसे खीर पककर तैयार हो गयी । रोहकने उसे ही राजाके पास भिजवा दिया । इस तरह राजाके इस हुक्मकी भी तामिल हो गयी ।

इसके बाद राजाने गाँवके लोगोंको कहला भेजा,—“तुम्हारे गाँवमें जो ऐसा बुद्धिमान मनुष्य है, उसे इस प्रकार परस्पर विरुद्ध व्यवस्था करके मेरे पास आनेको कहो । यह व्यवस्था इस प्रकार है:—यह स्नान करके नहीं आये, पर साधही शरीरको मलिन बनाये हुए भी नहीं आये । यह न तो किसी वाहन पर चढ़ा हुआ आये, न पैदल आये, न टेढ़ी राह आये, न सीधी राह ; न रातको न आये, न दिनको न शुक्ल पक्षमें आये, न शुक्ल-पक्षमें, न छायामें आये, न धूपमें । न कुछ भेटके लिये आये न खाली हाथ आये ।” इस प्रकारकी आज्ञा पाकर रोहकने जलसे शरीरको धोया सही, पर धूप-देह मलकर स्नान नहीं किया । यह एक बकरे पर सवार होकर चला, जिससे उसके पैर ज़मीनसे छू जाते थे । अमावास्याके उपरान्त प्रतिपदाके दिन, सन्ध्याके समय सिरपर चलनी रखे, गाड़ीको लीकके बीचसे चलना हुआ वह हाथमें एक मिट्टीका पिण्ड लिये हुए राजसमामें आ पहुँचा । राजाको प्रणाम कर वह उनके सामने बैठ गया और मिट्टीका वह पिण्ड उनके पास रख दिया । राजाने यह पूछा,—“यह क्या ? उसने कहा, यह इस जगत्की जननी

मृत्तिका है !” राजाने फिर पूछा,—“तुम यहाँ कैसे आये ?” उसने कहा,—
 “आपने जिस तरह आनेका हुक्म दिया था, वैसेही आया ।” यह कह
 उसने राजासे सब कुछ विस्तारके साथ कह सुनाया । उसने कहा,—
 महाराज ! मैंने शरीरको नहलाया तो सही ; पर उसका मेल नहीं
 घोया, इसलिये नहाया भी और मलौन भी बना रहा । एक नन्हेसे
 धकरे पर सवार होकर आया इसलिये मेरे पैर ज़मीनको छू रहे थे,
 अतएव मैं न तो सवारी पर था, न पैदल था । अमावस्याके ही दिन,
 शामको प्रतिपदा लगती थी, इसीलिये मैं आज आया ; क्योंकि यह न
 तो शूक्र-पक्ष हुआ न कृष्णपक्ष । साँझको आया इसलिये न तो यह
 दिन हुआ, न रात हुई । गाड़ीकी लीकके बीचो-बीच आया, इस-
 लिये न सीधो राह आया, न टेढ़ी राह । हाथमें मिट्टीका पिण्ड लेकर
 आया, इसलिये न खाली हाथ हूँ, न भेंट लिये साथ हूँ । सिरपर
 चलनी रखे आया हूँ । इसलिये न धूपमें रहा, न छाया में ।” यह
 सुनकर राजाको मालूम हो गया, कि इसने मेरे हुक्मकी पूरी-पूरी
 तामील कर डाली । तब राजाने उसे खुशीसे इनाम दिया और उसका
 आदर करते हुए समामें उसकी इस प्रकार बढ़ाई की,—“अहा ! इस
 महात्माका बुद्धि-वैभव देखकर तो चित्तमें यही विचार उत्पन्न होता है,
 कि यह सुभाषित बहुत ही ठीक है,

‘वाञ्छितारण लोहानां, काष्ठ-पापाद्य-वाससाम् ।

नारी-पुरुष-तोषानां, दृग्गते महदन्तरम् ॥ १ ॥

अर्थान्—घोड़े-घोड़ेमें, हाथी-हाथीमें, लोहे-लोहेमें, लकड़ी-लक-
 डीमें, पत्थर-पत्थरमें, वस्त्र-वस्त्रमें, नारी-नारीमें, पुरुष-पुरुषमें, और जल-
 जलमें, मैं बड़ा फर्क दिखाइ देता हूँ ।

इसके बाद राजाने उस दिनके लिये रोहकको पहरे पर नियुक्त किया
 और आप सोने चले गये । रातका पहला पहर बीत जानेपर राजाकी
 नींद टूटी और उन्होंने देखा, कि रोहक सोया हुआ है । यह देख, उन्होंने
 पूछा,—“क्यों रोहक ! तुम सोये हो, या जागे हुए हो !” यह सुन,

नींदसे जगकर रोहकने झटपट जवाब दिया,—“महाराज ! मैं जगा हूँ, पर जरा एक बातके विचारमें पड़गया हूँ ।” राजाने पूछा,—“तुम किस विचारमें पड़े हुए थे ?” उसने कहा,—“बकरियोंकी लेंड़ीको इस तरह गोल-गोल कौन बनाता है ? राजाने पूछा,—“तुम्हारे विचारसे इसका क्या निर्णय हुआ ?” उसने कहा,—“बकरीके पेटमें घाघु (संवर्धवायु) की कुछ ऐसी ही प्रबलता है, जिससे लेंड़ियाँ गोल हो जाती हैं ।” इसके बाद दूसरे पहर नींद टूटने पर भी राजाने रोहकसे पूछा,—“अरे ! क्या तुम्हें नींद आ गयी ?” यह सुन, उसने सावधान होकर कहा,—“स्वामी ! मुझे नींद तो आती ही नहीं ।” राजाने पूछा,—“तब मेरे पुकारनेके इतनी देर बाद तुम क्यों बोले ?” उसने कहा,—“महाराज ! मैं कुछ सोच-विचारमें पड़ा हुआ था ।” राजाने पूछा,—“क्या सोच रहे थे ?” उसने कहा,—“महाराज मैं यही सोच रहा था, कि पोपलके पत्तेका नीचे वाला हिस्सा मोटा होता है या ऊपरवाला ?” राजाने पूछा,—“तुमने इसका क्या निर्णय किया । उसने कहा,—“मेरे विचारसे ये दोनों ही भाग एकसे होते हैं ।” यह सुन, राजा फिर सो गये । तीसरे पहरमें फिर उग्होंने जागते ही पूछा,—“क्यों जी ! जगे हो या ऊँच रहे हो ?” उसने कहा,—“जगा हूँ, पर कुछ विचारमें पड़ा हुआ हूँ ।” राजाने पूछा,—“क्या विचार कर रहे हो ?” उसने कहा,—“मैं यही सोच रहा था, कि गिलहरीका शरीर बड़ा होता है या पूँछ बड़ी होती है ? और उसके शरीर पर श्यामता अधिक है या श्वेतता ?” राजाने पूछा, आश्चर्यकर, तुमने क्या निर्णय किया ?” उसने कहा मैंने यही निश्चय किया है, कि उसका शरीर और पूँछ, दोनों बराबर होते हैं और उसकी स्याही सफ़ेदी भी एकसी है ।” इसके बाद राजा फिर सो रहे । चौथे पहरके भस्त्रमें उनकी नींद टूटी । उस समय रोहक नींदमें बेसुच पड़ा था । यह देख, राजाने उसे एक कटिसे गोंद दिया । तुरत ही उसकी नींद छुल गयी । राजा ने कहा,—“क्यों ? छूय नींद आयी थी न ?” उसने कहा,—“हे स्वामी !

“दूसरी घेनयिकी बुद्धि है। यह गुरुकी विनय करनेसे प्राप्त होती है। निमित्तादिक शास्त्रोंमें जो सुन्दर विचार उत्पन्न होते हैं, उनमें गुरुकी विनयही प्रमाणभूत है। घट आदि पदार्थ बनाने और चित्र अङ्कित करने आदिके रहस्य-ज्ञानको तीसरी कार्मिकी बुद्धि कहते हैं। परिणामके घरा-घयके परिणामके-वस्तुका निश्चय करानेवाली जो बुद्धि होती है, वही चौथी परिणामिकी बुद्धि कही जाती है। इस बुद्धिके बहुतसे दृष्टान्त शास्त्रोंमें पाये जाते हैं; पर मन्त्र बड़ा हो जानेके ही मयसे, हमने उन्हें यहाँ नहीं लिखा। इन चार प्रकारकी बुद्धियोंको अधुन-निश्चित मतिज्ञान कहा जाता है। इस मतिज्ञानसे प्राणी सधम धुतज्ञानका अभ्यास कर सकते हैं और धुन-ज्ञानसे तीनों कालका ज्ञान प्राप्त होता है। इस विषयमें आगममें कहा हुआ है, कि—

“उद्भवमवतिरिप्लोप, ओइसरेमाशिषा य सिद्धा य ।

सञ्चो लोमाधोगो, सि (स) ज्ञापविउत्स पञ्चसो ॥ १ ॥”

अर्थात्—“उर्द-लोक, अधोलोक, तिष्ठेलोक, ज्योतिर्धा, वैज्ञानिक, सिद्ध और सर्व लोकालोक—यह सब स्वाध्याय (श्रुतज्ञान) जाननेवालेको प्रदत्त होजाता है। यह दूसरा श्रुतज्ञान कहलाता है।”

“जिसके द्वारा प्राणीको कितनेही जन्मोंका ज्ञान प्राप्त हो जाना है और जिससे वह सब दिशाओंकी अमुक अवधि-पर्यन्त जानता और देखता है, वह तीसरा अवधि-ज्ञान कहलाता है। जिसके द्वारा सभी-जीवोंके मनोगत परिणामका ज्ञान होता है, वह चौथा मनः पर्यवज्ञान कहा जाता है। और जिम ज्ञानसे किसी स्थानपर किसी तरहकी ठोकर नहीं लगती—किसी तरहकी भूल-धूक नहीं होती, वही सिद्धि-सुखका देनेवाला कैवल्यज्ञान कहलाता है।”

इस प्रकार पाँच प्रकारके ज्ञानकी व्याख्यासुन, जिनेश्वरको नमस्कार कर, अपने घर आकर यज्ञायुध चक्रयर्त्तनि अपने सहस्रायुध नामक पुत्र-को राज्यपर बैठा दिया और स्वयं चार हजार राजाओं और सात सौ पुत्रोंके साथ क्षेमदूर तीर्थदूरसे वीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद

गीतार्थ हो, पृथ्वीपर झकेले बिहार करने हुए ये यज्ञायुधमुनि मिट्टि-
पर्वत नामक छंद गिरिके ऊपर भाये । वहाँ रमणीय शिखातलपुत्र
पैरोवन-लम्हरके ऊपर ये एक सर्वतक मेरुकी तरह निम्नत्र प्रतिमामें रहे ।
इसी समय अश्वघोष प्रतिप्राप्तदेवके दोनों पुत्र, मणिबुद्ध और मणित्वज,
जो संसारमें परिभ्रमण कर, उन समय देवदत्तको प्राप्त हो गये थे, उन्हीं
स्थानपर भाये । पूज्य महर्षि यज्ञायुधको देख, उन्हें दाद पैदा हुआ, इस
लिये वे तरह-तरहके उपद्रव करने लगे । पहले तो उन्होंने नीचे दान-
पाले भदंकर और मोटी पूँछपाले सिंह तथा बाघबाहु बनकर महर्षि-
को डराया । इसके बाद हाथीका रूप बना उन्होंने मुनिपर दानसे भी
घोट की और पत फेलाये हुए भदंकर साँप और साँपिनका रूप धारण
कर उन्हें बाँ बाँ काट भी खाया । अन्तमें पिशाच-पिशाचिनीका मया-
पना रूप बना, उन हुए देवोंने मुनीश्वरको तरह-तरह उपद्रव करके
सताया, परन्तु उनकी किसी हरकतसे मुनिको तनिक भी क्षोभ
नहीं हुआ ।

इसी समय देवेन्द्रकी अप्रमद्विषयां, रश्मा और तिलोत्तमा, यज्ञायुध
मुनिको प्रणाम करने आयीं । उन्हें आते देखकरही ये हुए देव भाग
गये । उन्हें आगते देख, इन्द्रकी उन पत्नियोंने उन्हें डरानेके लिये खूब
डाँट-फटकार बताया । इसके बाद परिवार सहित देवाङ्गना रश्मा,
मुनिके निकट, बड़े भक्तिभावसे हाथ-आवादि घिलासके साथ मनोहर
नृत्य करने लगी और तिलोत्तमा अपने परिवारके साथ सातों स्वर्गों
और तीनों ग्रामोंसे युक्त उत्तम सङ्गीत गाने लगी । इसके बाद ये दोनों
देविण्यां परिवार-सहित मुनिको प्रणाम कर, अपने-अपने स्थान को
चली गईं । यज्ञायुध मुनीश्वर अति दुष्कर ऐसी वायिक प्रतिमाका
अङ्गोकार कर चारों ओर घूमते हुए पृथ्वी-मण्डलपर बिहार करने
लगे । एक दिन क्षेमदुर जिनेश्वरके मोक्षको प्राप्त हो जानेके बाद
ये मुनि, राजा सहस्रायुधके नगरमें भाये । यज्ञायुध मुनिके आगमन-
का वृत्तान्त ध्वजण कर, सहस्रायुध राजा बड़ी धूमधामके साथ उनके

पास भाये और उनकी घन्दना की । उनसे धर्मदेशना श्रवणकर उन्हें प्रतियोग प्राप्त हुआ और उन्होंने अपने शतबल नामक पुत्रको राज्यपर बैठाकर आप उन्हीं मुनिसं दीक्षा ले ली । क्रमशः वे भी गीतार्थ हो गये । इसके बाद वे अपने पिताके परिवारमें सम्मिलित हो गये और दोनों पिता-पुत्र विविध प्रकारकी तपस्याएँ करते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे । अन्तमें वे दोनों मुनि ईशान्तागमार नामक पर्वतपर आरोहण कर, वहीं पादपोगम-अनशन करने लगे । अनुक्रमसे शुभध्यानसे स्वयं कर्मोंका क्षय कर, यन्त्रायुध और सहस्रायुध—वे दोनों ही मुनीश्वर नयें प्रियेयकमें जाकर देव हुए ।



पाँचवाँ प्रस्ताव ।

इसी जन्मद्वीपके पूर्व, महाविदेह-क्षेत्रमें, पुष्कलावती नामक विजय में, पुलहरीकिणी नामकी नगरी है । उसमें नीति, कीर्ति और जयलक्ष्मीके मन्दिर-स्वरूप घनरथ नामके तीर्थङ्कर राजा रहते थे । उनके दो लियौ थीं । पहलीका नाम प्रीतिमती और दूसरीका नाम मनोहरी था । नवें प्रवैद्यकमें रहनेवाला वज्रायुधका जीव, इकतीस सागरोपमका आयुष्म पूज कर, वहाँसे च्युत हो, उनकी पहली रानी प्रीतिमतीकी कोखमें आया । उस समय उसको माताने मेघका स्वप्न देखा । सह-आयुधका जीव भी वहाँसे च्युत हो, दूसरी रानीकी कोखमें आया । उस समय रानीने भी रथका स्वप्न देखा । क्रमसे समय पूरा होने पर दोनों रानियोंके गर्भसे शुभलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुए । क्रमसे उनके नाम मेघरथ और हृदरथ रखे गये । दोनों राजकुमार शैलवायस्थाको पार कर, अपनी विनय शीलता और बुद्धिमत्ताके प्रभावसे कलाचार्यके निकट बहत्तर कलाओंकी शिक्षा प्राप्त की । सब कलाएँ सीखने पर वे दोनों राजकुमार युवायस्थाको प्राप्त हुए और अगली सुन्दरनाके आगे कामदेवको भी नीचा दिखाने लगे । इसी समय सुमन्दिर नामक नगरके स्वामी, राजा निहतारिका प्रियमिश्रा और मनोरमा नामकी दो पुत्रियोंसे मेघरथका ब्या हुआ और उन्होंने निहतारिराजाकी छोटी लड़की सुमति, कुमार हृदरथको ब्याहा गयी । मेघरथकी लियों-प्रियमिश्रा और मनोरमाके मन्दिरनेत्र और मेघसेन नामक दो पुत्र हुए

इसके बाद बड़े बेटेने प्रश्न किया:—

“विमार्गवंचनं राज्ञां ? वा गम्भोम्ननुमण्डमम् ?

कः कर्ता एष दुःखानां ? पात्रं च उष्ट्राम्पकिम् ? ”

अर्थात्—“राजाओंको क्या कहकर आशीर्वाद दिया जाता है ? महादेवके शरीरका शृंगार कौनसा है ? सुख—दुःखका कर्ता कौन है ? पुण्यका ठीक-ठीक निवास किसमें है ?”

यह सुन, और कोई उन्हें उत्तर नहीं दे सका, इसलिये मेघरथनेही धोल उठे,—“जीवरक्षाविधिः ।” [अर्थात्—राजाओंको ‘जीव’—तुम जिओ—ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया जाता है । महादेवके शरीरका भूषण ‘रक्षा’ यानी राख है । सुखदुःखको कर्ता विधि, यानी विधाता है । और पुण्यका स्थान ‘जीवरक्षाविधि’ यानी जीवोंकी रक्षाका उपाय करना है ।] ” फिर मेघरथनेही प्रश्न किया,—

“सुखदा का शेषांकस्य ? मध्ये च भुवनस्य कः ?

निषेधवाचकः को वा ? का संसार-विनाशिनी ?

अर्थात्—“चन्द्रमाकी कौनसी वस्तु सुखदायिनी है ? भुवनके मध्यमें क्या है ? निषेधवाचक शब्द कौनसा है ? और संसारका विनाश करनेवाली कौनसी वस्तु है ?”

इसका जवाब भी किसीसे देते न पना । तब राजा घनरथनेही कहा,— ‘भावना’ [अर्थात्—चन्द्रमाकी ‘भा’ यानी कान्ति सुख देने वाली है । ‘भुवन’ इस तीन अक्षरोंवाले शब्दके बीचमें ‘व’ है । निषेध-वाचक शब्द है ‘ना’ । और संसारका नाश ‘भावना’ ही करती है ।]

इस प्रकार उन लोगोंने कुछ देरतक प्रश्नोंचरोंसेही दिल बहलाया । इसी समय एक गणिका वहाँ आकर धोली,— “महाराज ! मेरे पास यह जो मुर्गा है, वह किसी दूसरे मुर्गेसे हरगिज़ नहीं हार सकता । यदि किसीके मनमें अपने मुर्गेकी ताकतका धमएड हो, वह अपना मुर्गा मेरे पास ले आये और मेरे मुर्गेके साथ लड़ाकर देख ले । जिस किसी

का मुर्गा मेरे मुर्गों को हरा देगा, उसे मैं लाख अशर्कियाँ इनाम दूंगी । साथही जिसका मुर्गा हार जायगा, उससे मैं भी लाख अशर्कियाँ ले लूँगी । ” यह सुनकर मनोरमा रानीने राजासे हुषम लेकर अपनी क्षामीने अपना मुर्गा मँगवा लिया और उस गणिकाकी शर्त कबूल कर ली । दोनों मुर्गों आमने सामने कर दिये गये— ‘दोनों एक दूसरेसे चुग गये । उस समय थोँव और पैरोंसे युद्ध करते हुए उन दोनों मुर्गों की सब समासर्दनि बड़ी प्रशंसा की । इतनेमें, तीर्थह्रार होनेके कारण गर्भयामके ही समयसे तीनों कालका ज्ञान रखनेवाले राजा धनरूपने अपने पुत्र मेघरथसे कहा,—“पुत्र ! ये दोनों मुर्गों चाहे जितनी देरतक लड़ते रहें, पर इनमेंसे कोई हार नहीं सकता । ” यह सुन मेघरथकुमार ने पूछा,— “इसका क्या कारण है ? ” तब तीनों ज्ञानके धारण करने वाले राजाने कहा,—

“इसी जम्बूद्वीपमें, भरतक्षेत्रकेही भन्वर, रहनपुर नामक नाममें धनदल और सुदल नामके दो बनिये रहते थे, जिनमें परस्पर बड़ी मित्रता थी । ये दोनों धैर्यों पर माल लादे, भुक्त-ध्यासकी मात्र गहने हुए, एकही साथ वणिज-व्यापार करने चलते थे, परन्तु दोनोंही मि ध्यात्मके कारण मूढ़ हो रहे थे, हमलिये कामनी माय-नील करके लोगों को लूब टगा करते थे । ऐसा करने पर और बहुत कोशिश करते हुए भी वे बहुत कम माल पैदा करते थे । एक समयकी बात है, कि उन दोनोंके दिलोंमें गर्जि पड़ गयी और वे परस्पर लड़ाई खड़ा करने, एक दूसरेको मारने कूटने हुए धार्मिकध्यातव्य शृंगुको प्राप्त होकर सुदर्भा-कूटा नदीके तीरे पर कान्दन-बल्ला और लाघबल्ला नामके दो जंगली हथी हुए और बल्ला बल्ला बल्लाहोंके मर्दान बन बैठे । वहाँ सीधे अपना बल्लर कूटनेके लिये लोभके मारे परस्पर युद्ध करने हुए मर गये और अयोध्यामें नन्दिमित्रके घर गये । मैत्रके बंधे हुए । उन्हें दो राज-कुमारोंने खरीदा और परस्पर लड़ा दिया । उनी युद्धमें मारकर वे इसी जगहमें बचने होकर पैदा हुए । इस समयमें भी उनका युद्ध जारी रहा

राजाकी आज्ञा लेकर रानीने प्रवृत्त्या अंगीकार कर ली । इसके बाद उद्यानकी शोभा देखते हुए राजा नगरमें आये ।”

“एक दिन छत्रस्थ वेशमें विहार करते हुए अनन्त नामक तीर्थङ्कर राजाके घर आये । उस समय राजाने उनकी प्रासुक भद्र-पान (बहराये) दिये, जैवोंने पाँच दिव्य प्रकट किये । इसके बाद हीनोर्थङ्करको केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ । तब राजा अमयघोषने उनके पास जाकर अपने दोनों पुत्रके साथ ही प्रवृत्त्या अंगीकार कर ली । इसके बाद अमयघोष राजर्षिने बीस स्थानकोंकी आराधना कर तीर्थङ्कर नाम-कर्म उपार्जन किया । अनुक्रमसे दोनों पुत्रोंके साथ कालधर्मको प्राप्त होकर वे अच्युत देवलोकमें जाकर देव हुए । वहाँसे च्युत होकर अमय घोष राजाका जीव तो हेमांगद राजाके पुत्र धनरथके रूपमें प्रकट हुआ और जय-विजयके जीव अच्युत कल्पसे च्युत होकर तुम दोनोंके शरीरमें आ टिके हैं ।” पिताजी ! मुनिने अब इस प्रकार चन्द्रतिलक और सूरति-लकको उनके पूर्ण भयकी कथा सुनायी, तब वे दोनों विद्याधर आपके दर्शनोंके लिये बड़े उत्सुक हुए और यहाँ आ पहुँचे । कुछ देर तक तो वे दोनों विद्याधर-कुमार इन मुर्गोंकी लड़ाईका तमाशा देखा किये, इसके बाद वे अपनी विद्याके प्रभावसे इन मुर्गोंके अन्दर प्रविष्ट हो, अपनेको छिपाये हुए, यही मौजूद हैं ।”

जय मेघरथने ऐसा कहा, तब वे दोनों विद्याधर बहपट उन मुर्गों के शरीरसे बाहर निकल आये और धनरथ राजाके पैरों पर गिर पड़े । इसके बाद अपने पूर्ण जन्मके पिताको प्रणाम कर, वे दोनों अपने स्थान को खले गये और वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण संयम ग्रहण कर, हुष्कर तप करते हुए मोक्षको प्राप्त हुए ।

इधर वे दोनों मुर्गों, अपने पूर्ण भयोंका हाल सुन, अपने पापोंके लिये मन-ही-मन अपनेको पिछार देते हुए, राजाके पैरोंपर गिर पड़े और अपनी भाषामें बोल उठे,—“प्रभो ! अब हमलोग क्या करें ?” तब राजाने उन्हें समस्ति-सदिन भद्रिभाषमका उपदेश किया । उन्होंने

सबसे दिलसे अहिंसा-धर्म स्वीकार कर लिया और उमीका पालन करते हुए मरकर भूतद्वीपमें जाकर ताम्रचूल और स्वर्णचूल नामक भूतदेव हुए । वहाँसे वे विमानपर चढ़कर अपने उगकार करनेवाले घनरथ राजाके पास आ, उनको घन्दना और स्तुति कर, उनकी आज्ञा पाकर अपने स्थानको चले गये ।

घनरथ राजाने बहुत दिनोंतक सुख-पूर्वक राजतलस्त्रीका भोग किया । एक दिन लोकान्तिक देवोंने आकर उनसे कहा,—“हे स्वामी ! अब धर्म-तीर्थका प्रवर्त्तन करो ।” यह सुन, अपने ज्ञानसे दीक्षाका समय आया जान, साँवत्सरिक दान कर, पुत्र मेघरथको राज्य पर बैठाकर उन्होंने दीक्षा ले ली और घाती कर्मोंका क्षय कर, केवल-ज्ञान प्राप्त किया । इसके बाद भय्य जीवोंको प्रतियोध देते हुए वे पृथ्वी-भरडल पर विचरण करने लगे ।

एक दिन राजा मेघरथ, अपने छोटे भाई दृढरथके साथ, अपनी दोनों स्त्रियोंको सङ्ग लिये हुए, देवग्राम नामक उद्यानमें आये । वहाँ वे लोग एक अशोक-वृक्षके नीचे बैठे हुए थे । इतनेमें बहुतसे भूत उनके पास आकर नाटक करने लगे । उन्होंने बहुतसे शास्त्र धारण कर, वर्मरूपी वस्त्र धारण किये हुए, सारे शरीरको रक्षाके लिये भूल पहन लिया । इसके बाद उन्होंने बड़ा ही अनोखा नृत्य किया । उनका नृत्य हो ही रहा था, कि किंकिणी और ध्वजाओंसे सुशोभित एक विमान आस्मानसे नीचे उतर कर मेघरथ राजाके पास आया । विमानमें सुन्दर स्त्री-पुरुषों एक जोड़ीको बैठे देख, राजाने राजासे पूछा,— “स्वामी ये कौन हैं ?” राजाने कहा,—

“देवी ! वैताल-पर्वतकी उत्तर धेणीमें अलका नामकी एक नगरी है । वहाँके विद्युत्तरथ नामक विद्याधरोंके राजाका यह पुत्र है । इसका नाम सिंहरथ है । यह स्त्री इसीकी पत्नी वेगवती है । यह खेचरेन्द्र अपनी स्त्रीके साथ घातकी छल-द्वीपमें जितेश्वरको घन्दना करने गया हुआ था । वहाँसे यहाँ आतेही-आते अकस्मात् इसका

शान्तिनाथ चरित्र



भाते ! ये हम अपनी गरबमें आये हुए पत्नीको मुर्ख
 देना इतिष नई समझता ।
 (पृष्ठ २०५)

हुआ और उसने अपने घर जा, पुत्रको राज्य पर बैठा, प्रिया सहित श्री धनरथ जिनेश्वरके पास आकर दीक्षा ले ली । इसके बाद हुप्कर तप कर निर्मल केवल-ज्ञान उपार्जन कर, कर्मरूपी मलका सर्वथा नाश कर, सिंहरथ मुनिने मोक्ष प्राप्त कर लिया ।

इधर मेघरथ राजा उद्यानसे लौटकर रानीके साथ-साथ घर आये। एक दिन वे सर्वाङ्ग-परित्याग-पूर्वक, बलद्वार आदिको दूर कर, पौ-पध-व्रत ग्रहण किये हुए पौन्ध्रशालामें योगासन मारे बैठे हुए राजाओं को धर्मदेशना कर रहे थे । इसी समय कहींसे उड़ता हुआ एक कबूतर जिसका शरीर काँप रहा था और जिसकी आँखोंसे भय और चंचलता टपक रही थी, मनुष्यकीसी घापीमें यह कहता हुआ, कि मैं आपकी शरणमें हूँ, राजाकी गोदमें आ गिरा । उस समय उस भयभीत पक्षी को देख, दयार्द्र होकर राजा मेघरथने कहा,— “भाई जब तुम मेरी शरणमें आ गये, तब तुम्हें कोई डर नहीं है । ” राजाको यह बात सुन, वह पक्षी निर्भय हो गया । इतनेमें उसके पीछे-पीछे एक महाभयंकर और निर्दय याज्ञ वहाँ आ पहुँचा और राजासे बोला,— “महाराज ! सुनिये । आपकी गोदमें जो कबूतर पड़ा है, वह मेरा आहार है, इस लिये उसे मेरे हवाले कीजिये— मुझे घेतरह भूख लग रही है । ” यह सुन, राजाने कहा,— “भाई ! मैं इस अपनी शरणमें आये हुए पक्षीको तुम्हें देना उचित नहीं समझता । क्योंकि पण्डितोंने कहा है, कि—

“गुरुस्य शरणागतोऽर्हन्लिंगं सदा हरेः ।

गृह्यन्ते जीवन्तं नैतैः श्मशानं सत्या उरस्तथा ॥ १ ॥”

अर्थात् — “शुश्रूषाकी शरणमें आये हुए प्राणीको दूसरा उतरी प्रकार जंति-जंति नहीं ग्रहण कर सकता, जैसे शरीरमें प्राण रहते, कोई मर्कटी नरि, सिंहका केसर और नती न्यौका हृदय नहीं पा सकता ।”

“साथ ही हे पक्षी ! तुम स्वयं ही इस बातका विचार करो, कि औरोंकी जान लेकर अपनी जान बचाना, कितना बड़ा पुण्य-नाशक है । यह प्राणीको स्वर्गमें जानेसे रोकता है और नरकका कारण है । इस

लिये तुम्हें भी इस कामसे हाथ बँधी लेना चाहिये । यदि कोई तुम्हारा एक ही पर मोघ ले, तो तुम्हें किन्तु कष्ट होगा ? घेरोही भीरोंको भी पीड़ा होती है, इसका भी तो विचार करो । और देखो, इस कबूतरका माँस खानेसे तुम्हें क्षण भरकीही तृप्ति होगी, पर यह विचार तो सदाके लिये जान जहानरो हाथ धो बैठेगा । मोघ देखो, पंचेन्द्रिय जीवों का वध करनेसे बुद्धात्मा प्राणियोंको नरकमें जाना पड़ता है । कहा है, कि—

“अथने जीवहिंसायाम्, निवारो नरकं गतः ।

द्वयाङ्गुलं संयुक्ता, कामरी त्रिदिवं गता ॥ २ ॥”

अर्थात्— “शाम्भवे कथा आयी है, कि जीवहिंसा करनेवाला निराद (ध्याध) नरकमें गया और दयादि गुणोंसे युक्त होनेके कारण बानरी (बँदरी) स्वर्गमें गयी ।”

यह सुन, उस बाज़ने मैथिल राजासे पूछा,—“हे राजन्! उस नि
वाह और यानकी क्या मुझे कह सुनाइये।” इसपर राजाने कहा,—

निषाद-वानरिका कहानी

इस दृष्टिकोण से चर्चों सम्दर्भोंमें मरी हुई 'हरिकाम्ना' नामकी एक नगरी है। उस पुरीमें सम्दर्भोंका वास्तव योग्य कार्त्तमें तथा 'हरि-
वास्तव' नामके राजा रहते थे। उसी नगरीमें एक निवास रहता था, जो
बड़ा ही शूर, समर्थ तथा निर्द्वय और हठमूर्खका मिश्रण था। वह
पत्नी मर्त्य पत्नीमें आकर बड़ा, शूर और हरिण आदि अनेक जीवों
का बध किया करता था। उसी पुरीके नाम एक वनमें राजाकी
छाये बहुतसे सम्दर्भ रहा करते थे। उनमें हरिकाम्ना नामकी एक
सम्दर्भ, (वर्णनी) भी रहती थी, जो बड़ी मर्त्य मरी जाती और दया-
शून्य आदि शूरोंमें सुप्रसिद्ध थी। वह दिन बड़ी निराद, दान्य

खड़ा लिये, मृगयाके निमित्त उसी वनमें आया । इसी समय उसने अपने सामनेसे एक भयंकर बाघको आते देखा । उसे देखते ही वह डर गया और पासके ही एक पेड़पर चढ़ गया । उसपर एक क्रूर स्वभाव वाली बन्दरी मुह फाड़े बैठी हुई थी । उसे देख, वह फिर डर गया । उसे बाघके डरसे भागकर आया हुआ जान, बन्दरीने अपना मुख प्रसन्नता-पूर्ण बना लिया । यह देख, निपादके जी-में-जी आया और वह दिलजमईके साथ उसके पास बैठ रहा । बंदरी उसे भाईसा मानकर उसके सिरके केश सहलाने लगी । वह भी उसकी गोदमें सिर रखकर सो गया । इसी समय वह बाघ उस वृक्षके नीचे आया और बन्दरीकी गोदमें सिर रखकर सोये हुए उस मनुष्यको देखकर बन्दरीसे कहने लगा,—‘अरी बावली ! इस संसारमें कोई किसीके किये हुए उपकारको नहीं मानता और मनुष्य तो खासकर ऐसे होते हैं । इस विषयमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ, सुनो,—

“किसी गाँवमें शिवस्वामी नामका एक ब्राह्मण रहता था । एक बार वह तीर्थयात्रा करनेके इरादेसे अपने घरसे याहर हुआ और देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ एक बड़े भारी जङ्गलमें आ पहुँचा । वहाँ प्याससे छटपटाता हुआ, वह पानीकी खोजमें इधर-उधर घूमता-फिरता एक कुएँके पास आ पहुँचा । यह देख, उसने घासकी रस्ती बट-कार उसीके सहारे कलसा (घड़ा) कुएँमें लटकाया । उसी समय उस रस्तीके सहारे उस कुएँमेंसे एक बन्दर याहर निकला । यह देख उस ब्राह्मणने सोचा, कि चलो, मेरी मिहनत सफल हो गयी । यही सोचकर उसने फिर रस्तीमें घड़ा बाँधकर नीचे लटकाया । इस बार कुएँमेंसे एक बाघ और एक साँप निकल पड़े । उन्होंने उस ब्राह्मण को अपना प्राणदाता समझकर प्रणाम किया । इसके बाद उन तीनोंमें से घानले, जो जाति-स्मरण-युक्त हुआ था, पृथ्वीपर बसरोमें लिखकर ब्राह्मणको दलवाया, कि—हे द्विजदेव ! मैं मथुरा-नगरीके पासका रहनेवाला हूँ । तुम कभी उधर मेरे पास आना, तो मैं तुम्हारी

जातिर करूँगा। लेकिन, देवना, अभी इस कुर्सेमें एक आदमी और पड़ा है, उसे तुम कदापि बाहर नहीं निकालना, क्योंकि यह बड़ा भारी कृत्तम है—किसीका अहसान नहीं मानता।” यह कह, ये तीनों अपने-अपने स्थानको चले गये ।

“इसके बाद उस ब्राह्मणने सोचा,—“उस बेचारे मनुष्यको ही क्यों कुर्सेमें पड़ा रहने दूँ ? यदि अपनेसे हो सके तो समीची भलाई करनी चाहिये । यही तो मनुष्यके घर जन्म लेनेका फल है !” ऐसा विचार कर, उस विघ्ने फिर कुर्सेमें डोरी डाली और उस मनुष्यको बाहर निकाला उसी देव, ब्राह्मणने पूछा,—“भाई ! तुम कौन हो और कहाँके रहने-वाले हो ?” उसने कहा,—“मैं मथुराका रहनेवाला—सुनार हूँ । एक झररी कामके लिये शहर आ पहुँचा था और व्यासके मारे व्याकुल हो कर इस कुर्सेमें गिर गया था । वहाँ कुर्सेमें उगे हुए एक वृद्धकी शांता एकड़ कर टिका रह गया । इसके बाद उसमें एक चन्दर, एक बाघ और एक साँप भी आ गिरे । वहाँ सत्वर समान विपद् थी, इसीलिये किसीका किसीने घेर विरोध नहीं रह गया था । हे उरकारी ! तुमने हम सबके प्राण बचाये हैं, इसलिये एकबार मथुरा नगरीमें अवश्य सन्देश आओ ।” यह कह, वह भी अपने स्थानपर चला गया, यह ब्राह्मण पृथ्वी-मण्डल पर घूमता-घूमता तीर्थ यात्रा करना हुआ किसी समय मथुरा-नगरीमें आ पहुँचा । वहाँ जंगलमें रहनेवाले उस चन्दरने उसे देव लिया और अपने उरकारीको पदचान कर बड़ी श्रुष्टीने मथ्ये-धच्छे पत्र लाकर उसे दिये और इस प्रकार उसकी जानिबूारी की । इसके बाद उस बाघने भी उसे देखा और पदचान कर अपने मनमें विचार किया,—‘इस मशगुलने मुझे मगनेने बचाया था, इसलिये उस उरकारका इसी कुछ-न-कुछ बदला झर देना चाहिये ।’ वह मोचकर वह बाघमें घुस पड़ा और वहाँ बेचित्रीके साथ भेलने हुए राजकुमारको माँकर उसके नमाम कीमती गहने उतार कर ले आया, और वह सब उस ब्राह्मणके हवाले कर उसे प्रणाम किया । ब्राह्मणने

उस दोघाघु होनेका आशीर्वाद दिया और मधुरा-नगरीके अन्दर आ, उस सुनारका घर पहुँचे-पहुँचे वहाँ आ पहुँचा । उस समय उसे दूरसे आते देख, वह सुनार कुछ देरतक तो उसको ओर देखता रहा; पर फिर तुरत ही नीची नज़र बिये हुए अपना काम करने लगा । ब्राह्मण ने उसके पास आकर पूछा,— ‘क्यों साहुजी ! क्या तुम मुझे पहचानते हो ? ’ उसने कहा,— ‘मैं तुम्हें एकदम नहीं पहचानता । ’ यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,— ‘अरे भाई ! मैं वही ब्राह्मण हूँ, जिसने तुम्हें उस जंगलमें कुपूँसे बाहर निकाला था । आज मैं तुम्हारे घर बतियि होकर आया हूँ । ’ यह सुन, उस सुनारने बैठेही बैठे ज़रा सिर हिला कर उसे प्रणाम किया और बैठनेके लिये आसन देते हुए कहा,— ‘विप्रजी ! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ’ इस पर उस ब्राह्मण ने पाषके दिये हुए गहनोंको उसे दिखा कर कहा,— ‘भाई मेरे एक यज्ञमानने ये गहने मुझे दिये हैं । तुम्हीं इनका ठीक-ठीक दाम लगा सकते हो । इसलिये तुम इन्हें ले लो और मुझे इनका उचित मूल्य दे दो । ’ यह कह, गहनोंको उसाँके पास रखकर वह ब्राह्मण नदीमें स्नान करने चला गया । इसी समय उस सुनारने वस्तीमें यह डपोड़ी फिरती हुई सुनी, कि—‘आज राजकुमारको मारकर कोई उनके सारे गहने चुरा ले गया है । जो कोई उस आदमीको कहीं देख पाये, वह राजाको उसका पता दे : क्योंकि राजा उस श्रेहीको प्राण दण्ड दिये पिना न रहेंगे । ’ यह सुनकर, उस सुनारके मनमें शङ्क हुई । उसने सोचा,—‘ये गहने तो मेरे ही गढ़े हुए हैं । ज़रूर इसी ब्राह्मणने गहनों के लोभसे राजकुमारको मार डाला है और उनके गहने लिये हुए मेरे पास आ पहुँचा है; पर यह न तो मेरा कोई भाई है, न नाता-भोता, फिर मैं इस के लिये अपनी जानको क्यों दलामें फँसाऊँ ! ’ ऐसा विचार कर उसने राजाके द्वार पर जा, नगाड़े पर चोट दी और फिर उनके पास पहुँच कर, गहनोंको उनके हवाले करते हुए कहा,— ‘महाराज ! इन गहनों का खोर एक ब्राह्मण है । ’ यह सुन, राजाने अपने सिपाहियोंको भेज

कर उस ब्राह्मणको लूब मज़पूतीसे बैध्या मेंगवाया और विद्वानोंको बुलाकर पूजा,—“हे परिहृतो ! इस मामलेमें मुझे क्या करना चाहिये ?” परिहृतोंने कहा,—“महाराज ! भलेही कोई जातिका ब्राह्मण और वैद्वैदाङ्गका जाननेवाला हो, पर उसने यदि मनुष्यकी हत्याकी हो, तो राजाको अवश्य उसका वध करना चाहिये । इससे राजाको पाप नहीं लग सकता ।” परिहृतोंकी यह बात सुन, राजाने अपने सेवकोंको उसका वध करनेका हुक्म दे दिया । राजसेवक उसे गयेपर बढ़ाये, उसके सारे शरीरमें रक्त चन्दनका लेप किये हुए, उसे वध्य भूमिकी ओर ले गये । उस समय वध्यस्थानको जाते हुए ब्राह्मणने अपने मनमें सोचा,—“ओह ! मेरे पूर्व कर्मोंके दोषरों यह मेरी कैसी अवस्था हुई ! ओह ! उस दुष्ट सुनारने मेरे साथ कैसी हताशता की ! इधर उस बानर और बाघने मेरे साथ कैसी हलहता प्रकट की !” ऐसा विचार करते और उस बन्दरकी बात याद आ जानेसे उस ब्राह्मणके मुँहसे मनज्जातमें ये दो श्लोक निकल पड़े:—

व्याघ्रवानरमर्षाब्दा, वनमया न कृतं वधः ।

ते नाहं दुर्विनीते न, कसादेन विनाशिनः ॥ १ ॥

वेण्याब्दाः छन्दुराजोरा, नीरमाज्जोरमर्षदाः ।

कालनेदाः कसादत्र, न विनाश्या इमे वधणि ॥ २ ॥

अर्थात्—“बाघ, बानर और लोवकी बात येने नहीं, मानी, इनकी त्रिवे में इस दुष्ट सुनारके करते मारा गया । तब दे- ऐसा ? इन्द्रिव टाकुर, चोर, बल, बिल्ली, बन्दर, भाग और सुनार—इन सबकी विश्वास करना ठीक नहीं है ।”

यह ब्राह्मण बार-बार इन दोनों श्लोकोंको बोल रहा था । इसप्रकार उसकी आवाज़से इमे पदचान कर कभी अगह रहनेवाले इस लालने जिसे ब्राह्मणने कुर्रसे बाहर निकाला था) अपने मनमें विचार किया, “ओह ! इस दिन जिस ब्राह्मणने मुझे कुर्रसे बाहर निकाला था, वही अवस्था आज मज्जुने बड़े हुए मज्जुने होने दी । शास्त्रमें क्या हुआ है—

उपकारिणि विज्यन्ते, मायुदने यः सनाधरानि पापन् ।

ते अनन्यमनस्यन्धे, भगवति वल्लभे ! कथं वहमि ! ॥ १ ॥

अर्थात्—“उपकार करनेवाले और विश्वासी सज्जनोंके साथ जो पापावरण करते हैं, उन भक्त्य प्रतिभावाले पुरुषोंके योग, हे पृथ्वी ! तू क्यों दोती है !”

यही विचार कर उस साँपने फिर अपने मनमें सोचा,— “इस समय इस ब्राह्मणके प्राणोंपर आ बनो है, इसलिये मैं इसके उपकारका कुछ बदला दूँ, तो इसके अण्डसे छुटकारा पा जाऊँगा ।” ऐसा सोच उसके उपकारोंको याद करता हुआ वह साँप दगीचेमें आया और वहाँ सखियोंके साथ खेलता हुई राजकुमारीको देख, बटावोंके गुच्छेके अन्दरसे उसे काट छाया । तुरतही वह राजकुमारी व्याकुल होकर छटपटाती हुई ज़मीन पर गिरकर बेहोश हो गयी । यह देख, सखियोंने जाकर राजाको खबर दी । इस खबरको पातेही राजा अत्यन्त शोका-तुर और दुःखसे अधीर होकर विलाप करने लगे,— ‘हाय ! यह क्या हुआ ! अभी तो एकही दुःखके समुद्रसे पार नहीं हुआ कि इतनेमें दूसरा आ पहुँचा ! मय मैं क्या करूँ !”

ऐसा विचारकर, राजाने तत्काल अनेक मन्त्रवादियोंको बुलाया । वे सब उसकी लड़कीको ब्याड़-फूँक करने लगे, पर किसोका कुछ असर नहीं हुआ । तब एक मन्त्र जाननेवालेने राजासे कहा,—“हे राजा ! मुझे निर्मल ज्ञान प्राप्त है । उसीके बलपर मैं यह समझ रहा हूँ, कि आपने जिस ब्राह्मणके बघको आज्ञा दी है, वह बिल्कुल निर्दोष है । उसका सच्चा-सच्चा हाल यों है—किसी समय इस दयालु ब्राह्मणने जङ्गलके कूपमेंसे साँप, बानर और बाघको बाहर निकाला । इसके बाद इसने एक सुनारको भी बाहर निकाला । उस समय साँप वगैरहने इस ब्राह्मणसे कहा था, कि तुमने हम लोगोंका बड़ा उपकार किया है, इसलिये किसी दिन मयुरानें आना । यह कह, वे अपने-अपने स्थानको चले गये और यह ब्राह्मण भी सब तौरोंसे धूमता-धामता इस बार मयुरानें आ

पहुँचा । आनेपर उस बन्दरने तो इमे उत्तमोत्तम फल देकर सम्मानित किया और बाघने आपके पुत्रको मारकर उसके कुन्ड गहने इसे लाकर दिये । उन्हें लिये हुए यह सीधा-सादा ब्राह्मण उस सुनारसे मिलने गया और उसे बाघके दिये हुए गहने दिखाये । गहनोंको देख, उन्हें पहचान कर, उस हताग्र सुनारने आपको खबर दे दी । इसी पर आपने ब्राह्मणको खोर और हत्यारा समझकर मार डालनेका हुक्म दे दिया । देव-योगसे जहादोंको, पध करनेके लिये उस ब्राह्मणको ले जाने देखकर, पूर्वोक्त सर्पने उसे पहचाना और उसकी मलाई की बात याद कर, उसे छुड़ानेके इरादेसे लताके बन्दरसे आपकी पुत्रीको ढँस दिया । इसलिये, हे महाराज ! यदि आप उस ब्राह्मणको छोड़ दें, तो आपकी लड़की अवश्य ही जी जायेगी ।”

यह सुन, राजाने कहा—“अच्छा, मुझे ऐसी कोई बात बनलाभो, जिससे मुझे इस बातकी सच्चाई का भरोसा हो ।” यह सुन, उस मन्त्रवादीने उस सर्पको राजपुत्रीके शरीरपर उतारा । उसने मन्त्रवादीकी कही हुई सब बातें स्वीकार कर लीं, जिससे राजाको पूरी दिल जमई हो गयी और उन्होंने उस ब्राह्मणको छुटकारा दे दिया । उसे झूटने देख, साँपने राजकुमारीके डंकपरका विष घूस कर खींच लिया, जिससे यह तुरत भली चढ़ी हो गयी । इसके बाद मन्त्रवादीने उस ब्राह्मणसे कहा,—“हे विप्र ! इसी साँपने आपकी जान बचा दी ।” यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,—“अहा ! इस संसारके प्राणियोंकी गति कैसी विविध है, ज़रा देखिये तो सही—जो बड़े ही क्रूर प्राणी कहे जाते हैं, उन्होंने तो हताशता दिखलायी और जो क्रूर नहीं कहा जाता, उसीने हर दर्जेकी हताशता—अहसानफ़रा मोशी—की ।” यह कह, उस ब्राह्मणने फिर कहा,—

“दो पुरिते घहं धरा, अइवा होहि वि धारिया धरणी ।

उपयारं जम्स मई, उपयारे जो न विमहरई ॥ १ ॥

अर्थात् “जिसकी माति उपकारमें होती है—जो उपकार करना

जङ्गलमें पहुँच गये । उस वनमें भूले-प्यासे और भकेले घूमते हुए राजाको एक बन्दर मिल गया । उसने राजाको खूब मीठे फल लाकर दिये और एकनिर्मल जलसे भरा हुआ सरोवर भी उन्हे दिखा ला दिया । राजाने वही फल खा, पानी पी, स्वस्थ होकर सुखी मन एक वृक्षके नीचे छायामें डेरा डाल दिया । इतनेमें उनकी तलाशमें पीछे-पीछे चले आने वाले उनके सभी सैनिक यहाँ आ पहुँचे । इसके बाद जब राजा उन सब सैनिकोंके साथ अपने नगरकी ओर चले, तब उन्होंने उस बन्दरको भी साथ ले लिया और उसे लिये हुए अपने नगरमें आये । यहाँ पहुँचकर, उस बन्दर पर बड़े प्रसन्न रहनेके कारण उसे सदा मिठाई और अच्छे-अच्छे पकवान खिलाते लगे तथा राजाकी आज्ञासे वह अपनी इच्छाके अनुसार आम और केले आदि फल भी खानेको पाने लगा । उस बन्दरके उपकारको याद कर, राजा उसे सदा अपने पास ही रखने लगे । एक दिन घसमत्प्रभुमें राजा बगीचेमें जाकर हिंडोला झूलने, जलक्रीड़ा करने और फूल चुनने आदिकी क्रीड़ाएँ करते हुए व्यक्त गये और वहीं सो रहे । अपनी शरीर-रक्षाका भार उन्होंने उसी बन्दरको सौंपा । इतनेमें राजाके मुँहके पास एक भौंरा मँड़राने लगा । यह देख, स्वामी पर भक्ति रखनेवाले उस मूर्ख बन्दरने उस भौंरेको तलवारसे मारना चाहा और इसी वहाने एक हाथ ऐसा जमाया, कि राजाका सिर कट गया । इसलिये हे निपाद ! तुम भी इस बँदरीके फेरमें न पड़ो, नहीं तो जैसे वे राजा अपने हितैषी घानरके करते संसार से उठ गये, वैसे ही तुम पर भी बला टूट पड़ेगी ।”

बाघकी यह बात सुनते ही उस निपादने उसी क्षण उस बन्दरीको उठाकर फेंक दिया । यह उस बाघके पास आ गिरा । उस समय बाघने उन घानरीसे कहा,—“बड़ी धीबी ! अफसोस न करना, क्योंकि जैसे पुरुषकी सेवा की जाती है, वैसे ही फल मिलता है ।” यह सुनते ही उस बन्दरीको तत्काल बुद्धि उत्पन्न हो गयी और उसने उसीके बल पर बाघसे कहा,—“माई ! अब तो तुम मुझे हरगि न छोड़ो—काह-

कहा,—“रे दुष्ट ! तूने यह क्या कर डाला ? रे पापी ! जिस बेचारी बन्दरीने तुझे अपने पुत्रकी तरह रखा था, उसीको मारते हुए क्या तेरा हाथ नहीं काँप उठा ? रे दुष्ट, पापी, वृत्तम ! जा, तू अपना काला मुँह यहाँसे द्वार कर । तेरा मुँह देखनेसे भी पाप लगता है । मैं तुझे मारकर अपना हाथ भी कलङ्कित नहीं कर सकता, क्योंकि उससे तेरा पाप मेरेको स्पर्श कर जायेगा ।” इस तरह उसको फटकारते हुए बाघने उसे छोड़ दिया और वह अपने घर चला गया । उस समय लोगों के मुँहसे यह सब हाल सुनकर राजाने अपने मनमें विचार किया,—“मैं तो बन्दरोंकी रक्षा करता हूँ और इस दुरात्माने बालबच्चों समेत उस बन्दरीको मार डाला । इसलिये उसे पकड़ कर सज़ा देनी चाहिये, क्योंकि उसने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर डाला है । कहा है, कि—

“आज्ञा-भंगो नरेन्द्राणां, गुरुणां मान-मर्दनम् ।

मृत्योपध्वं नारीणां-मण्डलवध उच्यते ॥ १ ॥”

अर्थात् “राजाकी आज्ञाका भंग, गुरुओंका मानमर्दन और स्त्रियों पर स्वामिका क्रोध होना, बिना शस्त्रके ही वध कइलाता है ।”

इस प्रकार विचार कर राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी और वे उसी दम उस निपाइको बाँधकर पकड़ लाये और धुँसों तथा लाठियों से मारते हुए वध्य स्थानको ले गये । इतनेमें उस बाघने वहाँ आकर कहा,—“भरे ! इसे न मारो, इसे मारना उचित नहीं ।” यह सुन, राजपुरुषोंने आश्चर्यमें पड़कर उस बाघकी बात राजासे जाकर कह सुनायी । इससे राजाको भी बड़ा कीतूहल हुआ और वे भी वहाँ जा पहुँचे । तब फिर बाघ बोला,—“हे राजन् ! इस पापीको मारकर आप भी इसके पापके हिस्सेदार बन जायेंगे । दुष्टात्मा प्राणी आपही अपने कर्मोंके दोषसे विपत्तिमें पड़ा करते है ।” यहो सुन, आश्चर्यमें पड़े हुए राजाने पूछा,—“हे बाघ ! तू जानवर होकर भी मनुष्यकी बोली कैसे बोलता है ? तुझमें ऐसी विवेक-भरी चतुराई कहाँसे आयी”

बापने कहा,—“इस उद्यानमें एक बड़े भारी बानी आचार्य आये हुए हैं। वे ही यह सब हाल बतलाते हैं। आप उन्हींसे जाकर यह प्रश्न करें।” यह कह, वह बाप चला गया। राजाने उस निषादको छुटकारा देकर अपने राज्यसे निकाल बाहर कर दिया।

इसके बाद राजा, गुरुके आगमनका हाल सुनकर, उद्यानमें आये। वहाँ बनेक साधुओंसे घिरे हुए आचार्य महाराजको देख, राजाने उन्हें बड़ी भक्तिसे साथ प्रणाम किया और उनके बाद बमरा और सब साधुओंकी भी घन्दता की। इसके बाद राजाने गुरुके सामने हाथ जोड़े हुए पूछा,—“आप अपने निर्मल ज्ञानचक्षुओंसे सब कुछ जानते हैं। इसीलिये मैं आपसे पूछना हूँ, कि वह घातरी मरकर क्या हुई?” गुरुने कहा,—“हे राजन्! वह शुभ ध्यानके वरा मृत्यु पाकर स्वर्गको गयी है। आगमशास्त्रमें कहा है :—

‘अमृतमनाहारको, एतत् आत्मा विहाय न।

गुह्यपदको निवे. नतिं देवेत आत्मा ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘जो मर, संयम और दासने निरत रहता है, शक्तिसे ही मर होता है, इतलु होता है और निरन्तर गुरुके वचनोंसे अनुगत रहता है, वह मरकर देवताओंके वहाँ जन्म लेता है।’

यह सुन राजाने कहा,—“हे भगवन्! जो ज्ञान और धर्म दोनों ही से महासंच और बड़ा भारी पारी है, वह निषाद मरकर वहाँ जायेगा?” सुनिये कहा,—“इस पदोंको मरके निषाद और वही और ठिकाना नहीं होगा। कहा भी है, कि—

‘अर्थात्—‘अमृतमनाहार—संयममनाहार’

एतत्पदको निवे. नतिं देवेत आत्मा ॥ १ ॥

इसमें निषाद, एतत्, एतत्पदको निवे.

एतत्पदको निवे. नतिं देवेत आत्मा ॥ १ ॥

इति— ‘अर्थात्, अमृतमनाहार, संयममनाहार, एतत्पदको निवे.

रसिगद, कताय और गिराये में बैठा हुआ, उतम, निर्दय, पापी, पराधीन, रौद्रध्यानमें तटार और २ मनुष्य मरकमें ही जाता है ।”

“इसके भिन्ना है राजन् ! प्रसंगतः मृगारी को मलिको कीन प्राप्त होता है उनके लक्षण भी तुमों ।

‘विगुणगोमतिभ्रैव, भिन्ने वाक्याना मया ।

चारु-व्यानेन भीषोऽने, तिर्यग्गतिमवाप्नुवान् ॥१॥

मार्कण्डेयवध्यात्मो, गतश्रेयस्कथायकः ।

व्यापवान् गुणगुणत्रय, मनुष्यगतिमागमेत् ॥ २ ॥

अर्थात्—“विगुण (गुणल्लोभ), पाप-मति, भिन्नके साथ मदा कष्ट करनेवाला और मार्कण्डेय करनेवाला मरकर तिर्यक्गति-वा शय होता है । जो मृगारी और मृगारीसे सम्बन्ध होता है, विमर्श के दोष और कथाय नष्ट हो चुके है तथा जो व्यापवान् और गुणवादी होता है, वह प्राणी मरकर तिर्यक्गतिमवाप्नुवान् होता है ।”

यह सुन, राजाने फिर पूछा,—“हे प्रभो ! उपर्युक्त बात मनुष्यकी भी बाकी क्यों बोलता था ? हमने व्यापारीकी ही बोलतीमें सुने वह निराश्रयों मार्कण्डेय बोलता था ।” मुनिने उत्तर दिया,—“हे राजन् ! इसका कारण यह है । मुनिने,—“सौम्य भावक देवलोके में शक्र-रत्न के एक सामानिक देवता है । उनकी प्राणप्रिया देवी, स्वर्गमें अगुन हाथर कहीं मनुष्य मगमें उलझन हुई । तब उस देवताकाके भाव-रत्न देवताओंने उस देवीके स्वर्गमें पूछा,— हे स्वामी ! इस विमान-में देवीके हाथों कौन उलझन हाता ? इस वर देवताओंने कहा,— ‘अप्यहं कर्मों एक बाधनी है । कहीं मरकर कहीं जायेगी ।’ यह सुनकर उस मनुष्यका देवीमें एक बाधनी का कारण का इस देवताकी वरदा करके देवी कहीं जाता हुआ था । इसीलिए वह निराश्रय मुनि-मनुष्य मार्कण्डेय मनुष्यका भी बोलता था । इस प्राणिके बाधनी और निराश्रय भाव का यह निराश्रय विना था और देवी का उलझन ही मनुष्य ने ।”

गुरुका सुनाया हुआ बाधका यह वृत्तान्त सुन राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया और उन्होंने अपने पुत्रको गद्दी पर बैठाकर गुरुसे दीक्षा ले ली । वे हरिपाल राजर्षि संयमका पालन करते हुए सौधर्म-कल्पमें देवत्वको प्राप्त हुए ।

निपाद-वानरी-कथा समाप्त ।

“जैसे वह निपाद जीवहिंसा करके नरकको प्राप्त हुआ, वैसेही और जीव भी, जो पाप करते हैं, पापके प्रभावसे नरकको प्राप्त होते हैं । इस लिये हे याज्ञ ! तुमको भी जीवहिंसासे एकदम बाज़ आना चाहिये ।

यह सुन, उस श्येन (बाज़) पक्षी ने मेघरथ राजासे कहा,—“हे राजन् ! आपही सुखी हैं; क्योंकि आप इस प्रकार धर्म और अधर्मका विचार कर सकते हैं । यह कबूतर तो मेरे डरसे भागा हुआ आपकी शरणमें चला आया । अब आपही कहिये, सुधारुपिणी राजसीका सताया हुआ मैं किसकी शरणमें जाऊँ ? हे राजन् यदि आप सत्पुरुष हैं और किसी प्राणीकी पुराई करना नहीं चाहते, तो मैं भी भूखसे पीड़ित हो रहा हूँ, इसलिये हे दयालु ! मेरी आत्माकी भी रक्षा कीजिये । मैं भी मले-सुरे कर्मोंकी पहचान कर सकता हूँ, पर इस समय भूखसे ये तरह सताया हुआ हूँ, इसलिये क्या कर सकता हूँ ? कहा भी है, कि—

‘या मा रूपविनाशिनो स्मृतिहरी पञ्चेन्द्रियाकर्षिणी ।

बहुः क्षोभप्रललाटशीतकरली वैराग्यनन्मादिनी ॥

बन्धुनो त्यजनी विदेहगमनी चारित्र्यदिष्यमिनी ।

मा मे तिष्ठति संभूतदमनी प्राणपरतारो दुधा ॥ १ ॥

विषको हींसा धर्मो, पिता संरक्ष सौम्यता ।

सत्त्वं च ज्ञाने नैव, दुधासंम्य रतीरितः ॥ २ ॥

प्रतिपन्ननापि प्राणो, सुप्यते दुर्निर्वादिनः ।

इत्यपि नीतिदाकोको, दृष्टान्तः धृपतां प्रभो ॥ ३ ॥”

अर्थात्—“ओ दुधा, नरका नाम करनेवाली, स्मृतिहा हार करनेवाली, पक्षी शत्रुको । चाकरत करनेवाली, पीस-हार कर

“भारहसने नत्थि मये, मुहा मगा वेपका नत्थि ।

पये सना नत्थि जरा, शालिह सनो परामबो नत्थि ॥ १ ॥”

अर्थात्—“मृत्युके समान मयकी वस्तु और कोई नहीं है । बुधा के समान दूसरी कोई वेदना भी नहीं है । दुःसाक्षियोंकी तरह तकलीफ़ बुझाने में नहीं होती और वरिष्ठताके समान दूसरा कोई परामर्श (राज्य संकट) नहीं है । ”

“इसलिये हे मित्र ! तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे मेरी यह तकलीफ़ दूर हो ।”

यह सुन, गङ्गदत्तने सोचा,—“इस दुष्टने इस कुरूपके सब जीवोंको तो खाही लिया, अबके मुझे भी खाया चाहता है । इसलिये चाहे जैसे हो अपनी जानकी तो इसके फन्देसे बचाना ही होगा ।” यही सोचकर गङ्गदत्तने प्रियदर्शनसे कहा,—“स्वामी ! मैं तुम्हारे लिये बड़ी-बड़ी नदियों-में जाकर अपनी जातिके जीवोंको ला दिया करूँगा; पर मुझमें ऐसी शक्ति नहीं, कि वहाँ तक जा सकूँ, इसलिये यदि यह चित्रलेखा मुझे अपनी चौबसे पकड़ कर वहाँ पहुँचा दिया करे, तो तुम्हारी खुराक आनन्दसे पहुँच जाया करे ।” यह सुन, प्रसन्न होकर, उस सर्पने, अपने स्वार्थके लिये चित्रलेखा नामक मैनाको बैसी ही आज्ञा दे दी । तदनुसार चित्रलेखा, उसे चौबमें दबाये हुए ले चली और एक बड़ी भारी झीलमें जाकर छोड़ आयी । वह मैदक तो उस झीलमें पहुँचकर चैनसे बैठ रहा । तब उसका अभिप्राय नहीं समझ कर चित्रलेखाने थोड़ी देर बाद आवाज़ लगायी,—“भाई गङ्गदत्त ! जल्दी चलो । स्वामी प्रियदर्शन बड़ी तकलीफ़में हैं । इसलिये तुम अपने प्रतिज्ञानुसार उनका मनोरथ पूरा करनेके लिये जल्दी चलो ।” यह सुन, गङ्गदत्तने कहा,—“अरे मैना ! सुन—भूखा हुआ प्राणी कितना पाप नहीं करता ! भूधाते क्षीण मनुष्योंके हृदयमें करुणा नहीं होती, इसलिये बहन ! तुम प्रियदर्शनसे जाकर कह देना, कि अब गङ्गदत्त उस कुरूपमें नहीं आनेका ।” इस प्रकार अपना अभिप्राय प्रकट कर उसने फिर कहा,—“बहन ! अब तुम भी

भाजसे उसका विश्वास न करना ।” यह सुन, यह मैना अपने खान-को लौट गयी ।”

“महाराज ! इस दृष्टान्तसे तो आप समझ ही गये होंगे, कि क्षुधार्तको हृत्य-वृत्यका विचार नहीं होता । इसलिये आप मेरे आहारका प्रबन्ध कर दोजिये, जिससे मैं मर न जाऊँ ।” बाज़की यह बात सुन, राजाने कहा,—“माई ! यदि तुम भूखे हो, तो मैं तुम्हें ज़रूर भण्डेसे भण्डा भोजन दूँगा ।” इसपर उस बाज़ने कहा,—“हे महाराज ! मुझे तो माँसके सिवा और कुछ खाना अच्छा नहीं लगता ।” राजाने कहा,—“भण्डा, मैं कम्बुआँके यहाँसे माँस मँगवाये देता हूँ ।” पक्षीने कहा,—“महाराज ! यदि मेरी आँखोंके सामनेही किसी प्राणीके शरीरका माँस काटा जाये, तो उसी माँससे मेरी वृत्ति हो सकती है, दूसरे किसी माँससे नहीं ।” राजाने कहा,—“भण्डा, इसी कबूतरको तराजूपर रखकर, मैं इसीके तोलके बराबर अपने शरीरका माँस काट कर तुमको दूँगा ।” बाज़ इस बातपर राज़ी हो गया ।

इसके बाद राजाने एक तराजू मँगवाकर उसके एक पलड़े पर उस कबूतरको रखा और दूसरे पलड़े पर एक तेज़ छुरीसे अपने शरीरका माँस काट-काट कर रखने लगे । इस प्रकार क्यों-क्यों वे अपने शरीरका माँस काट-काट कर पलड़े पर रखने लगे, क्यों-क्यों यह कबूतर भी अधिकाधिक तौल वाला होता गया । यह देख, वे सार्वभौमिक राजा यह जानकर, कि यह कबूतर बहुत ज़ियादा वज़नका है, छुरी उस पलड़े पर बैठ गये । यह देख, सभी लोग हाहाकार करने हुए विशादके मारे बहने लगे,—“हे माथ ! आप प्राण-त्याग करनेका साहस क्यों कर रहे हैं ? एक पक्षीके लिये आप हम सब लोगोंका भयमान क्यों कर रहे हैं ? यह तो कोई माया मायूम पड़ती है । नहीं ना आपने इतने बड़े शरीरका भार इस नन्हेंसे कबूतरके बराबर बँभे हो सकना है ?” लोगोंके इतना कहने पर भी, स्वयं जानी दाने हुए भी, राजाने, पराजयकार शिष्टांतके कारण—सरस्वतीके मारे—मर्त्ये जानका उन्मो

शान्तिनाथ चरित्र



इसके बाद राजाने एक तराजू मँगवाकर उसके एक पल्ले पर उस क
रखा और दूसरे पल्ले पर एक तेज़ दुरीने अपने घरीरका मोस क
कर रखने लगे ।

उतरते-उतरते दोनोंमें विवाद होने लगा। एकने कहा,—‘यह मनोहर रत्न मेरा उपार्जन किया हुआ है। दूसरेने कहा,—‘नहीं, मेरा उपार्जन किया हुआ है। तुम व्यर्थ ही लोभ क्यों करते हो ? इसी प्रकार विवाद करते हुए वे दोनों क्रोधमें आकर यहीं युद्ध करने लगे। लड़ते-लड़ते वे उसी नदीमें गिर पड़े और आर्चध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हुए। वे ही दोनों मरकर इस जंगलमें कबूतर और बाज़ हुए हैं। महाराज मैंने इन दोनोंको एक जगह इकट्ठे होकर लड़ते देखा, इसीसे इनपर अपना असर डाला।

यह कह, राजाकी प्रशंसा कर, यह देवता अपने स्थानकी चले गये। राजा भी बहुत शरीर घाले हो गये। इसके बाद समासर्शने राजा मेघरथसे पूछा,—‘हे स्वामी ! ये देवता कौन थे ? और इन्होंने बिना किसी प्रकारके अपराधके ही इतनी माया फैलाकर आपको प्राण-सङ्कटमें क्यों डाल रखा था ?’ राजा मेघरथने कहा,—‘हे समासर्श ! अगर तुम्हारे मनमें इस बातके जाननेका कौतूहल हो, तो जी लगाकर सुनो,—

‘‘इस भयके पूर्व, पाँचवें भवमें, मैं अनन्तरीय नामक वासुदेवका बड़ा भारी अपराजित नामक बलदेव था। उस भवमें दमितारि नामक प्रतिवासुदेव मेरा शत्रु था। मैंने उसकी पुत्रीका हरणकर उसे जानसे मार डाला था। इसके बाद यह संसार-रूपी भरप्यमें भ्रमण करता हुआ, इन्दी भरत-क्षेत्रके अष्टापद-पर्यंतके पास एक तपस्थीका पुत्र हुआ। यहाँ भ्रान्त-तप कर, आयुष्यका क्षय होने पर, मृत्युको प्राप्त हो कर, यह ईशान-देवलोकमें जा, सुरूप नामका देव हुआ है। अब इन्द्रे सभामें मेरी प्रशंसा की, तब पूर्व भयके घेरके कारण, इस देवको मेरी बड़ाई अच्छी न लगी और यह मेरी परीक्षा लेनेके लिये यहाँ आया। इसका जो कुछ गतीजा हुआ, यह तुम लोग देख ही चुके हो।’’

यह सुनकर सब समासर्शको बड़ा अचम्भा हुआ। उसी प्रकार उन दोनों पक्षियोंकी अपना और उस देवताका वृत्तान्त सुनकर जानि-

दीनों देवाङ्गनाथ हैं और तुमपर स्नेह हो जानेके कारण मोहित होकर तुम्हारे पास आ पहुँची है । इसलिये तुम हमारी इच्छा पूर्ण करो । हमारे पति देवेन्द्र हमारे यशमें हैं, तो भी हम तुम्हारे लावण्यसे मोहित हो, उन्हें छोड़कर तुम्हारे पास खली आयी हैं, इसलिये हे स्वामिन् ! आपको अवश्य हमारी प्रार्थना पूरी करनी चाहिये ।” यह कह, वे रात भर तरह-तरहके अनुकूल उपसर्ग कर, उनके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेकी चेष्टा करती रहीं, पर राजा जरा भी विचलित न हुए । वे मेद-वर्क-तकी भाँति भयल बने रहे । यह देख, द्वार मानकर उन दोनों देवाङ्गनाथोंने मेघराज राजाको ध्यानमें निश्चल जान, उनसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी और उन्हें प्रणाम कर, उनके गुणोंकी प्रशंसा करनी हुई अपने स्वामिन् की खोजी गयीं । प्रातः काल प्रतिमा और पौषधकी समाधि कर, राजा मेघराजने विधिके साथ पारणा किया ।

एक दिन राजा मेघराज, अपने सब सामन्तोंके साथ, परिवार-वर्गसे घिरे हुए समामे बैठे हुए थे । इसी समय उद्यान-पालकने आकर मन्त्रिपूर्वक निवेदन किया,—“हे महाराज ! मैं आपको बधाई देता हूँ । आज आपके नगरके उद्यानमें आपके पिता धीधनराज जिनेश्वरने समय-मरण किया है ।” यह सुन, राजाको बड़ा दर्द हुआ,—उनके रोम-रोम झिल गये । उन्होंने उसी समय बाणके रक्षककी इनाम दिया । इसके बाद वे कुमारी तथा दासी, घोड़ों, सामन्तों और माण्डलिकों आदिके साथ बड़ी धूमधामसे धीजिनेश्वरकी यज्ञना करने गये । वहाँ पहुँच, मेघराजकी यज्ञना कर, सब साधुओंको प्रणाम कर, मन्त्रियों विलकों सुवामित कर, वे उचित स्थानमें बैठ रहे । इसी समय धीजिनेश्वरने सबको समान रूपसे प्रतिबोध देनेवाली धर्मदेशना इस प्रकार सुनायी,—

“हे मम्य प्राणिनो ! धीजिनेश्वरकी पूजा करत, उनकी यज्ञना करत तथा लक्षित ज्ञान प्रद्वन करनेमें ऐश्वर्यात् भी प्रमाद नहीं करना । जो पुण्यवान् ज्ञान, धर्म-कार्यमें प्रमाद नहीं करते, उनका

यदि कष्ट भी आ पड़े, तो वह सूरराजकी तरह सुखका ही कारण हो जाता है ।”

जब प्रभुने ऐसी बात कही, तब गणधरने श्रीजिनेश्वरको नमस्कार कर विनयपूर्वक कहा,—“हे स्वामी ! वह सूरराज कौन था, जो धर्म-कार्यमें प्रमाद नहीं करता था ।” इस पर भगवान्ने कहा,—“हे भद्र ! यदि तुम्हें उसका चरित्र श्रवण करनेकी इच्छा हो, तो सावधान होकर सुनो ।

सूरराज (वत्सराज) की कथा

इसी जन्मद्वीपमें, भरतक्षेत्रके अन्तर्गत, क्षितिप्रतिष्ठित नामका एक नगर है । उसमें प्रजा-पालनमें तत्पर और गुण-रत्नोंके मन्दिर-स्वरूप वीरसिंह नामके राजा राज्य करते थे । इन राजाके शीलरूपी अलंकार-को धारण करनेवाली और इनके बाँये अङ्गकी अधिकारिणी धारिणी नामकी रत्नां थी । एक दिन रानी, स्वप्नमें अपने आगे-आगे देवेन्द्र-को जाते देख, जग पड़ी । प्रातः काल रानीने इस स्वप्नकी यात अपने स्वामीसे कही । राजाने अपने मनमें इस स्वप्नका विचार कर कहा,—“इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा; परन्तु चूँकि तुमने देवेन्द्रको जाते देखा है, इसलिये वह पुत्र कुछ चंचल चित्तवाला होगा ।” इसके बाद कर्मसे गर्भका समय पूरा होने पर रानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । माता पिताने स्वप्नके अनुसारही उसका नाम ‘देवराज’ रखा । वह कुमार धीरे-धीरे बड़ा हो चला । इसी समय रानीने एक दिन फिर स्वप्नमें शंखके समान उज्ज्वल, पुष्ट शरीरवाला और अपनी गोदमें बैठा हुआ एक कृष्णदेखा । तबरे ही उठकर रानीने इसका हाल राजाको सुनाया । रानीने कहा,—“हे स्वामी ! आज मैंने सुख-सेज पर सोते-सोते सपने-में कैलास-पर्वतकी तरह उज्ज्वल एक कृष्ण देखा है । मला इस स्वप्न-

के प्रभावसे मुझे कौनसा फल प्राप्त होगा ? ” राजाने विचार कर उत्तर दिया,—“दे देवी ! इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा और वह राज्यकी धुराधारण करनेवाला तथा परम भाग्यवान् होगा । ” इस प्रकार स्वप्नका फल सुनकर धारिणी देवी बड़ी प्रसन्न हुई । क्रमसे समय पूरा होने पर शुभ मुहूर्तमें रानीके पुत्र पैदा हुआ । बालक जब दस दिनोंका हुआ, तब राजाने अपने सय स्यजनोंको बुलवा कर, उन्हें भोजन तथा धन और ताम्बूल आदि दे, सम्मानित कर, उन लोगोंके सामनेही स्वप्नके अनुसार उस पुत्रका नाम वत्सराज रखा । यह भी धीरे-धीरे बढ़ता हुआ आठ वर्षका हो गया । तब राजाने उसको सूक्ष्म बुद्धिवाला जान कर, उसे कालाचार्यके पास पढ़नेके लिये भेजा । यही उसने सय कलाओंका अभ्यास कर लिया ।

एक बार राजा धीरमिह शरीरमें बाह ज्वरादि महाप्याधियाँ हो जानेके कारण बड़े दुःखित हुए । सारा राज-परिवार उन्हें इस प्रकार विषम रोगसे पीड़ित देख, परम दुःखित हो गया । उस समय सय भोग इकट्ठे होकर विचार करने लगे — ‘यद्यपि राजकुमार देवराज उमरमें बड़े हैं, तथापि गुणोंके कारण यह वत्सराजही बड़े हैं’ । इसलिये यदि वत्सराजही राजा हों तो बहुत अच्छा है । ” लोगोंकी यह बात सुन, देवराजने एक मन्त्रीको अपने मेलमें लाकर, हाथी घोड़े और पैल सैनिकोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया । लोगोंके मुँहसे यह वृत्तान्त सुन, धीमार होने पर भी, धीरमिह राजाने कहा,— “ओह ! उस मन्त्रीने बहुत बुरा किया, क्योंकि राज्य पर बैठनेके योग्य तो वत्सराज ही हैं— देवराज योग्य नहीं हैं । पर मैं ऐसी हालतमें पड़ा हूँ, इसलिये क्या करूँ, कुछ समयमें नहीं आता । ” यही कह कर राजा, मायु शय्य होनेके कारण मृत्युको प्राप्त हो गये । इसके बाद सय लोगोंकी मर्जीके खिलाफ देवराजने पिताकी गद्दीपर दण्ड जमा दिया । विनयादि गुणोंसे युक्त वत्सराज, देवराजको पिताकी तरह मानने हुए, उन्हें प्रणाम करते और तरह-तरहसे उनका आदर-सम्मान करते । देवराजके पक्ष-

जाना बड़ा ही कठिन है । इसके सिवा भैया देवराज भी तो तुम्हारे ही पुत्र हैं । इसलिये तुम इन्हींके पास सुखसे पड़ी रहो ।” रानीने कहा,— “बेटा ! मैं तो तेरे ही साथ चलूँगी । जो देवराज तेरी सुराई करता है, उससे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।” यह कह, धारिणादेवी भी वत्सराजके साथ जानेको तैयार हो गयी । देवराजने उन लोगोंके लिये रथ या भीर किसो सवारोका प्रयत्न नहीं किया । इसीलिये देवी भी वत्सराजके साथ-साथ पैदल ही चल पड़ी । उस समय राजाने लोगोंको बुझा दिया, कि जो कोई वत्सराजके साथ जायेगा वह मारा जायेगा । यह कह उन्होंने उनके परिवारका भी उनके साथ जानेसे रोक दिया । उस समय सारे नगरमें हाहाकार मच गया । सारे नगरमें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं था, जिसे वत्सराजको दूसरे देशमें जाते देख, दुःख नहीं हुआ हो । लोग वत्सराजके सीमावर्त्यके निमित्त कहने लगे,— “भाजही यह नगर भनाथ हो गया । मानों राजा वीरसिंहकी भाजही मृत्यु हुई है । अब ज़रूर यहाँकी प्रजापर आफत आयेगी ।” प्रजावर्गकी ऐसी-ही ऐसी बातें सुनते हुए वत्सराज नगरसे बाहर हो गये ।

अपनी माता और मासोंके साथ धीरे-धीरे भागे बढ़ते हुए वत्सराज मालवा-देशके उज्जयिनी नामक नगरीमें आ पहुँचे । यहाँ जितरावु राजा राज्य करते थे । उनकी पटरानीका नाम कमलध्री था । यहाँ नगरके बाहर, मार्गमें पैदल चलते-चलते यकी हुई । ॥ वृक्षकी छायामें बैठ रही और विचार करने यह क्या कर डाला ? मैं धीरसेन रा,

अवस्थामें क्यों पड़ गयी ;

उनकी बहन चिमला,

नगरमें गयी ।

सड़के घरका रास्ता देख,

पोंगवारी सेटकी बेटे

करी खून और

हमने

लिये

! मैं,

जाना बड़ा ही कठिन है । इसके सिवा भैया देवराज भी तो तुम्हारे ही पुत्र हैं । इसलिये तुम इन्हींके पास सुबसे पड़ी रहो ।” रानोने कहा,— “पेटा ! मैं तो तेरे ही साथ चलूँगी । जो देवराज तेरी बुराई करता है, उससे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।” यह कह, धारिणीदेवी भी यत्सराजके साथ जानको तैयार हो गयी । देवराजने उन लोगोंके लिये रथ या भीर किसी सवारीका प्रबन्ध नहीं किया । इसीलिये देवी भी यत्सराजके साथ-साथ पैदल ही चल पड़ी । उस समय राजाने लोगोंको बुझा दिया, कि जो कोई यत्सराजके साथ जायेगा, वह मारा जायेगा । यह कह, उन्होंने उनके परिवारको भी उनके साथ जानेसे रोक दिया । उस समय सारे नगरमें हाहाकार मच गया । सारे नगरमें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं था, जिसे यत्सराजको दूसरे देशमें जाते देख, दुःख नहीं हुआ हो । लोग यत्सराजके सौभाग्यके निमित्त कहने लगे,— “माजही यह नगर अनाथ हो गया — मानों राजा धीरसिंहकी माजही मृत्यु हुई है । अब ज़रूर यहाँकी प्रजापर आफ़त आयेगी ।” प्रजापरगकी ऐसी-ही ऐसी बातें सुनते हुए यत्सराज नगरसे बाहर हो गये ।

मयानी माता और मासीके साथ धीरे धीरे भागे बढ़ते हुए यत्सराज मालवा-देशके उज्जयिनी नामक नगरीमें आ पहुँचे । यहाँ जिनराजु राजा राज्य करते थे । उनकी पटरानीका नाम कमलश्री था । यहाँ नगरके बाहर, मार्गमें पैदल चलते-चलते यकी हुई धारिणी देवी, एक वृक्षको छायामें बैठ रही और विचार करने लगी,— “हा देव ! तुमने यह क्या कर डाला ! मैं धीरसेन राजाकी प्राणप्रिया होकर भी ऐसी कष्टायक भयान्तामें क्यों पड़ गयी ?” ये ऐसा ही विचार कर रही थीं, कि इन्हींमें उनकी बहन चिमला, धारिणीकी भाँडा जे, रहनेकी जगह ढूँढ़नेके लिये नगरमें गयी । नगरके लोगोंको देखने-देखने यह कमलश्री सोमदत्त नामक सेठके घरका रास्ता देख, उसीमें पुन पड़ी । यहाँ रात्मूर्ति और परांगनातो सेठकी बेटे देख, उन्होंने बदन-बकनोंसे कहा,— “सेठजी ! मैं, मेरा बहन और इसका पुत्र—ये तीनों परदेही यहाँ आ पहुँचे हैं । यदि

इसके बाद घटसराज संध्यातक वहीं रह गये । इसीलिये सब गोकु-बच्छक, कोई रखवाला न होनेके कारण, आपसे आप झुण्ड बांधे समयसे पहलेही घर चले आये । यह देख, सेठने विमला और धारिणीसे पूछा,—“भाज ये जानवर इतनी जल्दी घर कैसे चले आये ? इसका क्या कारण है ? तुम्हारा पुत्र अभी तक आया है या नहीं ?” यह सुन, विमलाने कहा,—“इन बछरोंके इतनी सिन्हीसी घर चले आनेका कारण तो मैं नहीं जानती ; पर घटसराज अभी तक घर नहीं आया है ।” इतनेमें सबको घटसराज घर लौटे । उनकी माता और मासीने पूछा,—“बेटा ! भाज तूने इतनी देर कहाँ लगायी ?” उन्होंने कहा,—“हे माता ! बछड़ोंको घरले छोड़कर मैं सा गया था । किसीने मुझे जगाया ही नहीं, इसलिये अब आपसे भाग नींद खुली, तब चला आया हूँ।” इसपर ये दोनों बहनें कुछ न बोलीं । इसके बाद दूसरे दिन भी यह कलान्यासमें ही भटके रह गये, इसलिये उस दिन भी गोकु-बच्छक जल्दसे घर आ गये । तीसरे दिन भी यही हाल हुआ । तब सेठने विमला और धारिणीको चेतावनी देते हुए कहा,—“घटसराज रोज़ इन गोकु-बच्छकोंका छोड़कर न जाने कहाँ चला जाता है । जानवर रोज़ समयसे पहले ही घर चले आते हैं।” यह सुनकर, ये उस दिन घटसराजके घर आतेही बीचके साथ बोल उठी,—“बेटा ! क्या तू यह भूल गया है, कि हम इन परदेशमें आकर परायेके घर नौकरों कर रहे हैं ? हमें भोजन भी बड़ी मुश्किलोंसे मिल रहा है । ऐसी अवस्थामें तू हम लोगोंको घातें क्यों सुनवाता है ?” यह सुन, घटसराजने अपनी मासीसे कहा,—“तुम लोग संछे कह देना, कि अब मैं बछड़ोंको घरानेके लिये नहीं ले जाऊँगा।” यह सुन, उसका मताने सेठने आकर कहा,—“मेरा पुत्र अभी चलच है, इसीलिये बछड़ोंके कारण जेल-दुख करने लगता है । ऐसे जानवरोंकी खरबाही मरती प्राणि नहीं बन सकती, हम दोनोंने उससे आज्ञा कहा, पर यह लड़कपनके मारे कुछ सुनबटाही नहीं।” उन दोनोंने अब यह बात रा रोकर कहा, तब दया

भा जानेके कारण उस सेठने उनसे कहा,—“बालक ऐसेही मनमौजी हुआ करते हैं।” यह सुनकर वे दोनों चुप हो रहीं ।

अब तो घट्सराज रोज़ सवेरे उठकर उन्हीं राजकुमारोंके पास पहुँच जाते और कलान्यास करते । उनका खाना-पीना भी वहीं होता । एक दिन उनको माताने उनसे पूछा,—“येटा ! तू आजकल रोज़ साँझ तक कहाँ रहता है ? कहाँ जाता है ? और क्या खाता है ?” इस बार उन्होंने कहा,—“मैं वहीं जाता हूँ, जहाँ राजाके लड़के हथियार चलाना सीखते हैं । मैं भी उन्हींके साथ कलान्यास करता हूँ और वहीं खाता-पीता हूँ ।” यह सुन, उनकी माता धारिणीने आँखोंमें आँसू भर कर कहा,—“पुत्र तू हम लोगोंको चिन्ता क्यों नहीं करता ? येटा ! इस समय अपने घरमें ईधन भी नहीं है, इसलिये कहाँसे ला दे, तो ठीक हो ।” माताकी यह बात सुन, घट्सराजने कहा,—“माता ! तुम सेठने यहाँसे कुल्हाड़ी और काँवर लाकर मुझे दो, तो मैं जङ्गलमें जाकर लकड़ी काट लाऊँ ।” यह सुन वह कुल्हाड़ी आदि माँग लायी । दूसरे दिन सवेरे बहुत जल्दी उठकर वह कुल्हाड़ी आदि लिये हुए घने जङ्गलमें चले गये । वहाँ तरह-तरहके वृक्षोंको देखकर उन्होंने विचार किया,—“यदि कहीं चन्दनका पेड़ मिल जाये, तो उसकी लकड़ी बेचकर मैं अपनी दरिद्रता दूर कर दूँ और माता तथा मासोंकी इच्छा पूरी करूँ ।” यही विचार कर वह उस जंगलमें चारों ओर घूमने लगे । घूमते-घूमते उन्होंने एक देवमन्दिर देखा, जिसमें एक प्रभावशाली यक्षकी प्रतिमा थी । उसे प्रणाम कर वह खड़े हो ये, कि इतनेमें दूरसे सुगन्ध आती मालूम पड़ी । तब उन्होंने सोचा,—“अवश्य ही इस वनमें कहीं चन्दनका पेड़ है ।” ऐसा विचार कर वह बड़े शौकसे उस वनके चारों ओर घूम-घूमकर देखने लगे । इतनेमें उन्हें एक स्थान पर सपोंसे घिरा हुआ एक चन्दनका पेड़ दिखाई पड़ा । यह देख, उन्होंने बड़े साहससे उस पेड़के पास जाकर उसे हिला-हिला कर सब सपोंको भगा दिया । यह वन एक यक्षका था, इसलिये पहले कोई यहाँ चन्दनका पेड़ नहीं काटता था । परन्तु चूँकि घट्सराज बड़े

ज़रा भी न डरा । ये विद्याधरियाँ भी यक्षके भयके मारे किवाड़ तोड़ कर भीतर नहीं जा सकती थीं, इसलिये बाहरसे बोलती रहीं । इसके बाद उन्होंने सोचा,—“मालूम होता है, कि यह रातभर यहाँ रहेगा, इसलिये नगरमें खलकर इसके नामादिका पता लगाना चाहिये; क्योंकि इसका कोई-न-कोई सगा-सम्बन्धी तो होगा ही, जो इसे रातको न भापा देख रो रहा होगा । तभी इसको बाहर बुला लानेमें आसानी होगी ।” यही सोचकर ये दोनों विद्याधरियाँ आकाशमार्गसे नगरमें खली भायीं और चारों ओर जोह-टोह लेने लगीं । इतनेमें उन्हें एक स्थान पर धारिणी और विमला घंठी हुई दुःखके साथ पुत्रका नाम ले-लेंकर रोती दिखाई पड़ीं । ये कह रही थीं,—“हाय ! वीरसेन राजाके पुत्र पवित्र-चरित्र-वाले कुमार यत्सराज तेरी यह क्या गति हुई ! पहले तो तेरा राज्य छीना गया, इसके बाद तू परदेशी बना, पराये घरमें आकर रहा, कष्टसे भोजन मिलता रहा, इतनेपर भी आज हम अमागिनिपोंने तुझे न जाने क्यों ईंधन लानेके लिये भेजा, आज तू अभी तक लौटकर क्यों नहीं आया !” इनकी यह बात सुन, ये विद्याधरियाँ फिर उसी देवमन्दिरमें खली भायीं और यत्सराजकी माता तथा मासीकी सी भाषाओंमें बोली—“हे यत्सराज ! हम दोनों तुझे सारे शहरमें खोजती-दुँदुती तेरे पियोगके दुःखसे दुःखी होकर यहाँ आ पहुँची हैं । इसलिये जल्द बाहर आ और हमें अपना मुखड़ा दिखा ।” यह सुन, मन्दिरके भीतर बैठे हुए यत्सराजने सोचा,—“इस समय मेरी माँ और मासीका यहाँ आना कदापि सम्भव नहीं है । यह उन्हीं विद्याधरियोंकी भाषा है । यह कपट-रचना उन्होंने भंगियाके ही लिये की है ।” ऐसा विचार कर, वे खजुरासे घुप रह गये । उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । कमसे कम्यो-दप हो भापा और ये विद्याधरियाँ बिस्वाते-बिस्वात हारकर घर खली गयीं ।

इसके बाद किवाड़की मध्यसे उज्ज्वल माता देख, यत्सराज किवाड़ खोलकर बाहर निकले और कन्दन-यक्षके कोटरमें उस कंधुकी (भंगिया)

उत्पन्न हुए हो ? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारी जन्मभूमि कहाँ है ?” यह सुन, वत्सराजने कहा,—“अभी आप मुझसे मेरा परिचय न पूछिये, समय आनेपर मैं स्वयं सब कुछ कह दूँगा ।” जब उन्होंने ऐसा कहा, तब राजकुमारोंने उनका मनलब समझकर, ऊपरसे कुछ भी जाहिर न करते हुए, वत्सराजका बड़े प्रेमसे भोजन-वस्त्र आदि देना आरम्भ किया ।

एक दिन आचार्य, उन सब राजकुमारोंको साथ ले, वत्सराजको भी अपनी मण्डलीमें शामिलकर, राजाके पास भाये । वहाँ आ, कुमार राजाको प्रणामकर, उचित स्थानपर बैठ रहे । राजाने वत्सराजको भजनकी समझकर कुमारोंसे पूछा,—“पुत्रो ! तुम्हारे साथ यह नया लड़का कौनसा है ?” उन्होंने कहा,—“इसको हमलोगोंने अपना बन्धु बना रखा है ।” इसके बाद राजाने कलाचार्यसे पूछा,—“यह किसका पुत्र है ? इसकी कला-कुशलता कैसी है ?” यह सुन, कलाचार्यने कहा,—“महाराज ! मुझे इस लड़केके कुल आदिका बिलकुल पता नहीं है ; परन्तु इसकी कला-कुशलता ऐसी है, कि कोई इसकी बराबरीका नहीं दिखलाई देता ।” यह सुन, राजाने पहले सब राजकुमारोंकी परीक्षा ली । इसके बाद उनकी आज्ञासे वत्सराजने भी अपनी कुशलता उनपर प्रकट की । राजाने उनकी विद्वानकला और चतुराईका चमत्कार देख, उनसे कहा,—“हे पुत्र ! तू अपने कुलका मुझे परिचय दो ; क्योंकि छिपे हुए मोतीका कुछ मूल्य नहीं होता । यह सुन, वत्सराजने सोचा,—“पूर्वाचार्यने कहा था, कि—

‘प्रस्तारे भाषितं वाक्यं, प्रस्तारे दानमांगितम् ।

प्रस्तारे वृष्टि रूपाऽपि, भवेत्कोटिधनप्रदा ॥ १ ॥’

अर्थात्—“समयपर बोला हुआ थोडासा वाक्य, समयपर किसीको दिया हुआ थोडासा दान और समयपर होनेवाली थोड़ीसी वर्षा भी करोड़गुना फल देनेवाली होती है ।”

‘घटयति घटितानि घटयति, घटयति घटितानि जर्जरीकुरुते ।

विधिरत्र तानि घटयति, यानि पुमान्नेत्र चिन्तयति ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘विधाता बनहोनीको होनी कर देता और होनीको बनहोनी कर देता है । वह ऐसेही काम किया करता है, जिनकी मनुष्य कभी कल्पना भी नहीं करता ।’

‘प्यारी बहनो ! तुम दोनों यहाँ भाकर भी क्यों छिपी रहों ? कहीं देषपोंगसे इस दुःखमें पड़ जानेके कारण लज्जाके मारे तो नहीं छिपी पड़ी रहों ? भयप्रा में ही भभागिनी हूँ, इसीसे तुम हमारे नगरमें पुत्र सहित भाकर रहों और मैंने ज़रा भी यह हाल नहीं जाना । अब अधिक कहनेसे क्या ?

‘यत्राभ्य तत्रवत्येव, नालिकरीकयाम्पुत्रम् ।

गन्तव्यं गमयत्येव, गत्रभुजकपित्थवत् ॥ २ ॥’

अर्थात्—‘वेसे नारियलके फलमें आपसे आप पानी भर जाता है, वेसेही जो होना होता है, वह तो होकर ही रहता है । और जो जानेवाला होता है, वह हाथीके लासे हुए रोथके फलकी तरह योंही चला जाता है—रहता नहीं ।’

‘यही समझ कर मनुष्यको मनमें चिन्ता नहीं आने देनी चाहिये । क्योंकि कहा है, कि—

‘यत्न-दुःखानां न कोऽपि, कर्ता हर्ता कर्मवन्नि पुनः ।

इति चिन्तय मनुष्या, गुराकृते भुग्वन्ते कर्म ॥ ३ ॥’

अर्थात्—‘इस ससारमें कोई किसीका मुल-दुल नहीं देता, न हाज कर सकता है । मुलमें वा दुःखमें मनुष्य अपने पूर्वजत् कर्मों का ही फल भोगता है । ऐसी सद्बुद्धि रखनी चाहिये ।’

‘अथा येन कृपाकवचिन्तयित्ते कथावदभावरोरं ।

विष्णुर्वच द्वाकनारायणे विप्र. महाभारत ॥

इतो वन करावताऽपिपुटं विहाय कालिः.

भूते प्रादुर्भूत विष्णवेऽ गन्ते कर्मे वसः कर्मवत् ॥ ४ ॥’

यत्सराज हाथमें धनु लिये, राजाके शयन-मन्दिरके बाहर भयसे खड़े हो रहे । आधी रातको राजाकी नींद टूट गयी । उसी समय उन्हें दूरसे भाती हुई किसी दुखिया स्त्रीके कण-स्वरसे रोनेकी आवाज़ सुनाई दी । सुनते ही राजाने पहरेदारोंको पुकारा, पर वे नींदमें बे-क़ाबर पड़े हुए थे, इसलिये किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया । यत्सराजने कहा,—“हे स्वामी ! जो कुछ हुआ हो, कहिये, मैं बजा लाऊँ ।” राजाने कहा,—“हे यत्सराज ! क्या आज मैं तुम्हें घर जानेकी छुट्टी देना भूल गया ?” उन्होंने कहा,—“हाँ ।” तब राजाने फिर कहा,—“यत्सराज ! इस समय मुझे तुमको भाषा नहीं देनी चाहिये ।” यत्सराजने कहा,—“स्वामी ! आपकी भाषाके अनुसार कार्य करनेमें मुझे कोई लज्जा छोड़े ही है ? जो कोई काम हो, कहिये, कर लाऊँ ।” तब राजाने कहा,—“बेटा ! सुनो—यह जो दलाई सुनाई दे रही है, यह किसकी है और वह क्यों रो रही है, इसे जाकर देख मामो और उससे पूछ कर मुझे खबर दो । साथही उस रोती हुई स्त्रीको इस तरह छाती फाड़ कर रोनेसे मना कर दो ।” यह सुन, राजाकी आज्ञा स्वीकार कर, यत्सराज उसी दलाईके शब्दकी सीध पर झिल्लेसे बाहर हो, नगरके बाहर स्मशान-भूमि तक चले गये । वहाँ एक स्थानमें उत्तम-वस्त्रों तथा भल्लारोंसे विभूषित एक स्त्रीको बैठे-बैठे रोते देख, उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—“हे मुण्डे ! तुम कीन हो ? इस स्मशानमें आकर क्यों रो रही हो । यदि बात छिपाने लायक न हो, तो अपने दुःखका कारण मुझसे कह सुनाओ ।” इसके उत्तरमें उस स्त्रीने कहा,—“माई ! तुम जहाँसे माये हो, वहीं चले आओ । तुमसे मेरा काम नहीं हो सकता । इसलिये तुम व्यर्थ ही क्यों मेरी धिन्नामें पड़ते हो ?” यत्सराजने कहा,—“तुम्हें दुःखी देखकर मो में क्योंकर वहाँ से चला आऊँ ? क्योंकि मले भाइसी पराये दुःखसे दुःखित होते हैं ।” यह सुन, उस स्त्रीने कहा,—“जियो-बिस्तीसे भगना दुःख कहना नहीं चाहिये ; क्योंकि कहा है,—

से अंकुशके बशमें रहता है । तो इससे क्या अंकुश हाथीके बराबर होगया ? जलता हुआ छोटासा चिराग घनी अंधियारीको दूरकर देता है । तो क्या दीपके बराबर ही अन्धकार होता है ? वज्रके मारमें बड़े-बड़े पर्वत भी गिर पड़ते हैं । तो क्या पर्वत वज्रकीही तरह छोटे-छोटे होते हैं ? नहीं—ऐसा नहीं है । जिसमें तेज विराजमान होता है वही बलवान् होता है । केवल मोटे-ताजे होनेसे ही उसके बलका नरोप नहीं करना चाहिये ।’

‘सिंहः विशुषि निपतति, मदमथितकपोलमिति तु गच्छेत् ।

प्रकृतित्वं मरुचवतां, न मसु वयस्तेजसो हेतुः ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘सिंह बालक होनेपर भी, कपोल-प्रदेशसे मद भुजाने-वाले हाथीपर ही पड़ता है । इससे सिद्ध होता है, कि पराक्रमी जीवों-की ऐसी प्रकृति ही होती है, इसलिये अवस्थातेजका कारण नहीं है ।’

“अतएव हे मुग्धे ! तुम मुझे बालक समझकर मेरी अथज्ञा न करो । तुम्हें जो दुःख हो, यह मुझसे कहो । मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, वहाँ तक मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेकी चेष्टा करूँगा ।”

यह सुन, यह स्त्री ज़रा मुस्कराकर बोली,—“हे पुरुष ! मेरे दुःखका कारण सुनो । मैं इसी नगरके रहनेवाले एक अच्छे भादमीकी स्त्री हूँ । मेरे उस युवा पतिको यहकि राजाने निरपराध सूलीपर चढ़ा दिया है । अभीतक वे सूलीपर लटकें हुए भी जी रहे हैं और घेयर जानकी बड़ी इच्छा प्रकट कर रहे हैं । इसलिये मैं उनके पास्तो परसे घेयर बना लायी हूँ, पर सूली इतनी ऊँची है, कि मैं यहाँतक पहुँच नहीं पाती । इसीलिये मैं अपने पतिको याद कर-करके रो रही हूँ, क्योंकि स्त्रियोंका बल तो रोनाही है ।”

यह सुन, वत्सराजने कहा,— “अत्र ! तुम मेरे चक्षुषर चढ़कर अपनी इच्छा पूरी कर लो ।” यह सुनतेही यह दुष्ट भविष्यापवाली स्त्री, वत्सराजके कंधे पर चढ़कर सूलीपर चढ़े हुए मनुष्यकी देहसे मँस

मासीको तो उसी मोढ़नीके मुकाबलेकी भंगिया भो चाहिये ।" यह सुन, यस्सराजने कहा,— 'स्वामिन् ! यदि भापकी कुरा होगी, तो वह भी मिल जायेगी ।" यह कह, वह नगरसे बाहर जा, उसी चन्दनके वृक्षके कोटरसे यह रत्न-जडित भंगिया निकाल लाये और राजाके हवाले करते हुए उसका भी वृत्तान्त उनसे कह दिया । राजाने भंगिया रानीको दे दी । उन्होंने हर्षित होकर उसे उसी समय पहन लिया । इसके बाद मोढ़नी और भंगियाके मुकाबलेका घाघरा न देखा, रानीका खिल वड़ा घेचैन होने लगा । शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है, कि ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है ।"

एक दिन राजाने रानीको चेहरा उद्घास किये देखकर पूछा,— "प्रिये ! अब तो तुम्हें मन लायक भंगिया मिलही गयी, फिर क्यों मुँह उदास किये हुए हो ?" रानीने कहा,— "इसीके मुकाबलेका घाघरा भो तो चाहिये ।" यह सुन, राजाने सोचा,— "भोह ! भगवन्तुष्टा स्त्रियोंको यस्त्रों तथा मलङ्कारोंसे कभी तृप्ति नहीं होती । कहा है, कि—

‘अप्रियं यमो राजा, समुद्र ररं स्त्रियः ।

अनुता नैव तृप्यन्ति, पाचयेन् च दिने दिने ॥ १ ॥’

- अर्थात्,— "अप्रिय, शासक, यम, राजा, समुद्र, उदर और प्रियी रुदायि तृप्त नहीं होती । वे दिन-दिन नयी-नयी कर्मायों करने ही रहते हैं ।"

स्त्रियोंका ऐसा ही स्वभाव होता है, यही मोक्ष कर राजाने कहा,— "प्रियेकहीन रानी ! जो भोजन मौजूद नहीं है, उसके लिये नये हाथ-हाथ न करो ।" यह सुन, रानीको हिंज और जोर पड़ गई । उन्होंने कहा,— "अब मुझे समी मोढ़नी और भंगियाके मुकाबलेका घाघरा मिलेगा, मजा में अब-उल प्रवेश करूँगी ।" यह कह, रानी अपने मर-त्ये चली गयी । इसके बाद राजाने यमराजको बुलाकर कहा,— "हे यमराज ! तुम्हें तो ही ज्ञान दिव्य कर्म ज्ञाकर बड़ा लब्धेष्ट कर दिया । अब तुम ही बिना तरह कर्मों कर्माको राजी करो । बिना मुन्दरे और

उसे देख, उसके सेवकके समान मालूम पड़नेवाले एक पुरुषसे वत्स-राजने पूछा,—“हे भाई ! यह कौनसा नगर है ? यहाँका राजा कौन है ?” उसने कहा,—“न तो यह कोई नगर है, न यहाँका कोई राजा है । परन्तु जो कुछ है, वह सुनो,—

“इस स्थानसे थोड़ी दूरपर भूतिलक नामका एक नगर है । उसमें घेरीसिंह नामका राजा राज्य करता है । उसमें दत्त नामका एक सेठ रहता है । उनकी पत्नीका नाम श्रीदेवी है । उसके गर्भसे उत्पन्न, रूप-सावय्यसे युक्त श्रीदत्ता नामकी एक पुत्री है । वह पुत्री युवावस्था-को प्राप्त हो गयी है, पर उसका शरीर भूत दीपसे प्रस्त हो रहा है, इस-लिये जो कुछ रातको उसके पास पहरे पर रहता है, वह मर जाता है और यदि उसके पास पहरेपर कोई नहीं रहता, तो नगरके सात भादमी मरते हैं । ऐसा होनेके कारण एक दिन राजाने उस सेठको बुलाकर पूछा,—“सेठजी ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कि यह नगर छोड़ कर जंग-लमें चले जाओ; क्योंकि तुम्हारी लड़कीके करते हमारे नगरके लोग मरते जाते हैं ।” राजाकी यह आज्ञा पाकर, सेठ अपने परिवारके साथ यहीं चला आया और घोर घोरसे अपनी रक्षा करनेके लिये किले सहित यह महल बनाकर यहाँ रहता है । उसीने ढेर-का-ढेर धन देकर ये पहरेदार रखे हैं । ये लोग महलके चारों ओर बने हुए छोटे छोटे घरोमें रहते हैं । इन पहरेदारोंके नामसे गोलिएया बनाकर रखी है । जिस दिन जिसके नामकी गोली निकलती है, उस दिन रातको वही पहरेदार सेठकी बेटीके पास रहता है और रातको मर जाता है । हे पणिक ! यदि यह हाल सुनकर तुम्हें डर मालूम होता हो, तो तुम अभी यहाँसे कहीं और चले जाओ ।”

यह बातें सुन, वत्सराज सेठके पास आये । उन्हें देख, दत्त सेठने उन्हें आसनपर बैठाते हुए गान दिया और भादरके साथ पूछा,—“वत्स ! तुम कहसि आ रहे हो ?” वत्सराजने कहा,—“मैं एक कामने उज्जयिनी-नगरीसे चला आ रहा हूँ ।” कुमार वत्सराज सेठके साथ

इसी प्रकार बतें कर रहे थे, कि इतनेमें एक धेनु अछड़ायेसे सुगो-
मित पुरुष जहां आया । उसके चेहरेका रंग उड़ा हुआ था । यह देख,
वत्सराजने बैठसे पूछा,—“तेज्जी ! इस आदमीका चेहरा इतना उदास
क्यों दिखाई देता है ?” यह सुन, तेज्जी लम्बी सांस लेकर कहा,—
“हे सुन्दर ! अत्यन्त गुप्त रहने लायक हो, तो नो यह वृत्तान्त मैं तुनसे
कह सुनाता हूं । मेरे एक पुत्रों हैं । उसके पास हर रातकी एक
पड़ोहार रहता है । वह अवश्य ही उस नृत्योपले उसी रातकी मारा
जाता है । आज इसी बेचारेके पड़ोहकी घाती है, इसलिये इसका चेहरा
उदास हो रहा है : क्योंकि नृत्यसे बढ़कर मरकी बात दूसरी नहीं
है ।” यह सुन, वत्सराजने कहा,—“तेज्जी ! आज इस आदमीकी
तत्पक्ष धर रहने झांजिये । आज मैं ही आपकी पुत्रों पर पड़पड़ूंगा ।”
यह सुन, तेज्जी कहा,—“हे वत्स ! तुम आज अतिथिकी तरह मेरे घर
आये हो । अनन्तक तुमने मेरे घर जीवन भी नहीं किया । फिर
बर्षाही नृत्यकी आलिंगन करने क्यों आ रहे हो ?” तेज्जी यह बात
सुन, वत्सराजने कहा,—“तेज्जी ! तुझे परीसफर करनेकी लगन ली
है । इसलिये मैं तो आज यह काम डकर बर्षाया : क्योंकि मनुष्य-
जनका सार परीसफर ही है : छलनें भी कहा है—

अन्तस्ते मये दन्तुस्त्वन्नि मे त्वय ।

तेरेसहान्त्यः त्विन्दुमन्तु जंकिन् ५ ? ॥

मेरे सन्ति वन्त्य, मेरे तंजित्यो क्या रहता :

दन्ताच्छं मयाद्, दंश कि विसर्गं ॥ ५ ॥”

इसमें—“हे मनुष्य है, जो अपने शरीरके वनडेले परीसफर करते
हैं; पर जो मनुष्य तेरेसफर नहीं करते हैं, उनके जीवनको विचार है ।
वन्त्य-मुल्ल (वन्त्य आदमी) , वेनकी रक्षा करता है, वन्त्य वन्त्य
का वन्त्य रक्षा करता है, उस क्योंकि रक्षा करता है और वन्त्य
वन्त्य मुल्ल वन्त्य मुल्लके वन्त्य रक्षा करता है; पर जो मनुष्य
तेरेसफर नहीं करते; वह मन्त्र किन वन्त्य !”

यह कह, वात्सराज महलके उस ऊपरी हिस्सेमें चले गये, जहाँ सैठ-पुत्री धीरता रहती थी । उस समय उस लड़कीने उस मलौकिक रूपवान कुमारको देखकर सोचा,—“अहा ! इसका केसा सुन्दर रूप है ! इसकी शरीरकी कान्ति कैसी मनोहर है ! इसके शरीरका कोई मनुष्य ऐसा नहीं, जो मनोहर नहीं हो । हाय ! देवने मुझे स्वर्गके रूपमें मृत्युकी देनेवाली क्यों बनाया ! मैं ऐसे-ऐसे मनुष्य-रत्नोंको मार कर जीती हूँ ।” यह ऐसा सोचही रहो थी, कि वात्सराजने उसकी सेजके पास जा, मधुर वचनोंसे उसे ऐसा प्रसन्न किया, कि वह फिर विचार करने लगी,—“चाहे जो हो, मैं अपनी जान देकर भी इसकी जान बचाऊँगी ।” यही सोचते-सोचते यह सो गयी । इसके बाद साहसी मनुष्योंमें शिरो-मणि कुमार वात्सराजने छिड़कीकी राह, नीचे उतरकर, ज़मीनपर पड़ी हुई एक लकड़ी उठा ली और फिर उसी राहसे ऊपर चढ़कर अपनी शय्यापर यह लकड़ी रखकर उसके ऊपर एक बेल्ट डाल, हाथमें कण्ट लिये, चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए, दीपोंके उँजालेसे हरकर भँधरेमें चढ़े हो रहे । इतनेमें उसी छिड़कीके बाहर किसीकी मुँह निकालते देखकर कुमार और भी सावधान हो रहे । इसके बाद उस मुकने उस घरके चारों ओर देखा । तदनन्तर मनोहर भँगुटियोंसे मोदती हुई भँगुलियोंवाला एक हाथ उसी छिड़कीमें नज़र आया । उस हाथमें दो भौपधियोंके कड़े पड़े थे । उन कड़ोंमेंसे एकमेंसे धुमा निकला । उस धुपसे सारा घर भर गया । इसके बाद अन्दर भाकर उस हाथने पहरेदारके पर्लगको छुआ । इसी समय वात्सराजने तलवारका एक हाथ ऐसे जोरसे उस हाथपर मारा, कि वह कट गया; परन्तु देवमलिके प्रभावसे वह हाथ कटनेपर भी ज़मीनपर नहीं गिरा । तथापि पीड़ाके कारण उस हाथके दोनों कड़े नीचे गिर पड़े । उसमें एक धूम्रौषधि और दूसरी संतोषिणी-भौपधि थी । इन दोनों महौषधियोंको कुमारने अपने पास रख लिया । इसके बाद वह हाथ उस घरसे बाहर निकला । उस समय “मर बापरे !” बुढ़ा

दगा हुआ । मैंने बड़ा शोक खाया ।" यह शब्द सुन, घटमराज यह कहने हुए उसके पीछे-पीछे दौड़े, कि मरी शम्मी ! तू कहाँ चली जा रही है ? हाथमें खट्टा लिये पुण्यमें चलवान् करने हुए घटमराजको पीछे-पीछे आते देख, उसे परास्न कारनमें अपनेको अममय समझ कर यह देखी उसी समय भाग गयी । इसके बाद पीछे लौटकर घटमराजने उस शम्मीपरसे यह लकड़ी हटा दी और भाग उसीपर बैठ रहे । इतनेमें रात बीत गयी और उद्यान-मध्यतः सूर्यका उदय हुआ । इसी समय कुमारीकी नींद खुली और उसने अक्षत शरीरसे बैठे हुए कुमारको देखकर हर्षित हो अपने मनमें विचार किया,--"अवश्य ही यह कोई बड़ा प्रभावशाली मनुष्य-रत्न मालूम पड़ता है । इसीसे यह नहीं मरा । मेरे सोये हुए भाग्य अब जगनेही वाले हैं और मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ ही चाहता है । अब यदि यह मनुष्य स्वामी हो तो मैं इसके साथ संसारके सुख भोगूँ, नहीं तो इस जन्ममें मेरा घेराम्य ही ठीक है ।" यही विचार कर उस लड़कीने मधुर वचनोंसे घटमराजसे कहा,--"हे नाथ ! आपने कैसे विपद्से छुटकारा पाया ? यह कहिये ।" उसके ऐसा पूछने पर घटमराजने उससे रातका सारा हाल कह सुनाया । यह सुनते ही धीदत्तके रोंगटे खड़े हो गये । साथ ही उसे बड़ा हर्ष भी हुआ । वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे, कि उस लड़कीकी सेविका दासो-उसके मुँह धोनेके लिये जल लिये हुए आयी । उसने भी कुमारको भला-बढ़ा देखकर अपने मनमें बड़ा हर्ष माना और उनको इस प्रकार क्षेमकुशलसे रहने पर ध्याई दी । यह समाचार सुन, सेठकी भी बड़ा अचम्भा हुआ और वह भी वहाँ आ पहुँचा । धीदत्ताने झटपट उठकर पिताको आसन दिया । उसपर बैठे हुए सेठने कुमारसे पूछा,--"हे धीर ! तुम रातको दुःखसागरके पार कैसे उतरे ?" इसपर कुमारने सेठकी भी राई-रत्तो सारा हाल कह । तब सेठने कुमारको कहा,--"हे कुमार ! मैं अपनी यह धी ।

सौंपता हूँ ।" यह सुन कुमारने

बिना मुझे अपनी कन्या क्यों दे रहे हैं ?" सेठने कहा,—“तुम्हारे गुणोंसे ही तुम्हारे कुलकी पहचान हो गयी । कहा भी है, कि—

‘आकृतिगुणसमृद्धिर्गमिनी, नम्रता कुल-विशुद्धि-सूचिका ।

वाक्यमः कथितयास्त्रयंक्रमः, संयमश्च भवनो वयोऽधिकः ॥ १ ॥’

अर्थात्—“तुम्हारी आकृतिसे ही यह मालूम हो जाता है, कि तुममें बहुतसे गुण भरे हैं, तुम्हारी नम्रता कुलकी शुद्धताकी सूचना दे रही है, तुम्हारी बातचीतका ढंग यह साफ़ बतलाये देता है, कि तुमने शास्त्रोंका अध्ययन किया है और तुम्हारा संयम तो तुम्हारी भवस्था देखते हुए बहुत बढ़ा-बढ़ा है । (छोटी उम्रके होनेपर भी तुममें वृद्ध पुरुषोंकीसी स्थिरता है)”

यह सुन कुमारने कहा,—“सेठजी ! अभी मुझे एक बहुत जरूरी कामके लिये दूर-देश जाना है । इसलिये भावका यह काम तो मैं पोछे लौटनेपर करूँगा ।” यह सुन, सेठने कहा,—“पुत्र ! पहले मैं तुम्हारे साथ इसका ब्याह कर दूँ, इसके बाद तुम्हारी जहाँ रुखा हो, चले जाना ।” यह सुन, कुमारने उसकी बात मान ली । इसके बाद उसीदिन उस कन्याके साथ विवाहकर, एक रात उसीके साथ बिताकर, दूसरे दिन उन्होंने यात्रा करनेके लिये बिदा माँगी । इसपर उस कन्याने अपने स्वामीसे कहा,—

‘विरहो वसन्तमामो, नवम्नहो, नव यय’ ।

यवमन्थं ज्वलिज्वलि, मद्या पचामितव कथम् ॥ २ ॥’

अर्थात्—“विरह, वसन्त-माम, नया म्नह, नयी उमर, कावचका पञ्चम म्मर-इन पाँचों अग्निवाँकी आँच नया केम मही जायगी ।”

यह सुन, कुमाराजने कहा, ‘ठोका समझ लो, जिये ! यदि मैं देशान्तर नहीं गया, तो मुझे भागमें जल मरना पड़ेगा । इसमें कोई सन्देह नहीं ।’ इसपर यह बालो,—‘हे नाथ ! देखो, मैं तुम्हारे सामने हा इन बालोंको बेचो खाँटा हूँ । अब यह तुम्हारे भोजन ही खुड़ेगा ।

तुम्हारी आज्ञासे मेरा शरीर तो यहीं रहेगा; पर बिना तुम्हारे साथ जायेगा । हे स्वामी ! और भी सुन लो कि—

“कुङ्कुमं कञ्जं चैव, कुडमानरयानि च ।

तगिष्मन्ति शरीरे मे, त्वयि कान्ते सनातने ॥ १ ॥”

अर्थात्—‘हे स्वामी ! अब जिस दिन तू लौटकर आओगे, उसी दिन मेरे शरीरको कुङ्कुम, अजड़, मूल और गहने लपका करे पावेगे ।’

इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेवाला अपनी स्त्रीको वहीं छोड़, सेठकी आज्ञा ले, बत्तराज उसी जङ्गलकी राह आगे बढ़े । उसी जङ्गलमें उन्होंने भीलोंका एक छोटासा गांव देखा । उसके पासही बहुतसी पहाड़ियाँ और पहाड़ी नदियाँ भी दिखाई दीं । इन सब प्राकृतिक दृश्योंको देखते हुए वे चले जा रहे थे, कि इतनेमें एक जगह उसी जंगलके सिलसिलेमें उन्हें बड़े-बड़े महलोंसे सुशोभित एक नगरी दिखाई दी । उसे देखकर कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ । उस नगरीके बाहर एक सुन्दर सरोवर था । उसीमें हाथ-मुँह धोकर उन्होंने उसीका पानी पिया और उसीके घाटपर एक वृक्षके नीचे पाटथी नारे बैठ रहे । इतने में उन्हें तालाबसे पानी लेकर आती हुई स्त्रियोंका झुण्ड दिखाई दिया । उन स्त्रियोंको देख, आश्चर्यमें आकर कुमारने एकसे पूछा,—“यह नगरी कौनसी है ? यहाँका राजा कौन है ? ” उसने जवाब दिया,—“यह नगरी अन्तर देवियों । एक प्रकारकी प्रेतिनी) की क्रीड़ाका स्थान है । यहाँका कोई राजा नहीं है । ” यह सुन, बत्तराजने फिर पूछा,—“यदि यह नगरी अन्तर-देवीकी है, तो फिर तू लौग इतना पानी कहाँ लिये आता हो ? ” वह बोली,—“हे सत्पुत्र ! हमारी स्वामिनी, जो एक देवी है, कहीं गयी हुई थी । वहाँ किसी पुरुषने उसके हाथपर तलवारका चार कर दिया है, जिससे वह बड़ी तकलीफ पा रही है । उसीकी पीड़ा दूर करनेके लिये हमलोग उसके हाथपर पानीके छोंटे डेती हैं । बहुतेरा सौचा गया, तो भी उसके हाथकी चोट अभी

तक अच्छी नहीं हुई । ” यह सुन, यत्सराजने कहा,—“क्या वह देवी स्वयं अपने शरीरकी पीड़ा दूर नहीं कर सकती ? ” यह बोली,—“हे पथिक ! उस तलवार चलानेवाले पुष्प पर किसी देवताकी छाया है, इसीसे उसका प्रभाव अधिक है । इसीलिये उसकी पीड़ा अभी तक शान्त नहीं हुई । इसके सिवा व्यस्तराजके राजाने दो महीपथियाँ उसे दे रखी थीं, जिन्हें वह हाथ पर बाँधे रहती थी । उनमें एकसे जो धुँआँ निकलता रहता था, उससे लोगोंके होशोहवास जाते रहते थे और दूसरी महीपथि हर तरफकी चोट और ज़ख्मोंकी दवा थी । ये दोनों महीपथि भी उसके हाथसे तलवारकी चोट लगतेही नीचे गिर पड़ी थीं । ” यह सुन, यत्सराजने कहा,—“भद्र ! मैं मनुष्यवैद्य हूँ । ” पर यदि मैं तुम्हारी स्वामिनीका ज़ख्म अच्छा कर दूँ तो मुझे क्या इनाम मिलेगा ? ” इसपर यह बोली,—“तुम जो कुछ माँगोगे, वही मिलेगा । ” यह कह, यह फिर बोली,—“भार ! अभी तो तुम यहीं रहो— पहले मैं अपनी स्वामिनीसे जाकर तुम्हारे भानेकी बात करती हूँ । ” यह कह, उसने अपनी स्वामिनीके पास जाकर यह सब हाल कहा । इसपर उसने ज़ख्म दिया, कि उस आदमीको जल्द मेरे पास ले आओ । मग तो वह लौ बाहर भाकर यत्सराजको अपने साथ ले चली । रास्तेमें वह यत्सराजसे कहने लगी,—“हे सत्पुरुष ! जब हमारी स्वामिनी तुमसे सन्तुष्ट होकर वरदान माँगनेको कहें, तो तुम महलके ऊपर रहनेवाली दोनों कमरानों, भस्वके कपड़े यस्त और इच्छित वस्तुओंको दिला देनेवाले पर्यट्टके सिवा और कुछ नहीं माँगना । ” यह सुन, उसकी बात स्वीकार कर, यत्सराज देवीके पास चले आये । यहाँ देखते उन्हें सुन्दर आसन बेन्चेको दिया ।

कुमार उसीपर बैठ रहे । देवी उनसे बड़े आदरके साथ बातें करती हुई बोली,—“नर ! यदि तुम सचमुच वैद्यक ज्ञानने हो, तो शीघ्र मेरी पीड़ा दूर कर दो । ” यह सुन, यत्सराजने उम्मी समय धूम्रापथिसे धुँआँ देनाकर, यत्सराजदेवी नामक महीपथिसे उसकी व्याध दूर कर दी ।

उसी क्षण उसके हाथका रुई दूर हो गया । उसने हसित होकर कहा,—
 “भाई ! तुझे ऐसा मान्य होना है, कि तुम्होंने मेरे ऊपर तनकार बजाया
 था ।” वत्सराजने यह बात स्वीकार की । इतने पर भी देवोंने सन्तुष्ट
 होकर कहा,—“भाई ! मैं तुम्हारी हिम्मत देख, यहाँ पुरा हूँ। इसलिये
 तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो ।” वत्सराजने कहा,—“यदि तुम सब-
 कुछ मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो इस महलके ऊपरी हिस्सेमें रहनेवाली
 दोनों कन्याएँ, भयङ्करों यह भीर सब कामका उपेक्षा करती खोजें
 मुझे दे डालें ।” यह सुन, देवोंने सोचा,—“यह मेरा घर फूटनेसे ही
 ये खोजें माँग रहा है, नहीं तो इसे इन खोजोंकी क्या जरूर थी ?” ऐसा
 विचार कर वह बोली,—“हे सत्पुरुष ! मैं ये सब खोजें तुम्हें दे चुकी :
 परन्तु ज़रा सावधान होकर उन दोनों कन्याओंकी उत्पत्ति का हाल सुनो,—

“वैताल-गर्भत पर चमरचञ्चा नामक नगरमें गन्धवाहयति नामका
 एक विद्याधर राजा रहता था । उसके सुवेगा और नदनवेगा नामकी
 दो स्त्रियाँ थीं । उनकी कोबसे कनका रत्नचूला और स्वर्णचूला नामकी
 दो कन्याएँ पैदा हुईं । जब ये दोनों पुत्रान्तराक्षों प्राप्त हुईं, तब
 राजाको उनके विवाहकी चिन्ता पड़ी—वे इसके लिये व्याकुल
 होने लगे । इसी समय वहाँ एक धानी मुनि पहुँच गये । उस
 समय राजाने उन्हें बड़ी भक्तिसे साथ एक मातनपर बैठ, प्रणाम कर
 पूछा,—“हे पूजनाथ ! मेरी इन दोनों पुत्रियोंके स्वामी कौन होंगे ?”
 इसपर मुनिने धानसे मालूम कर कहा,—“एक मनुष्य—राजकुमार,
 जिसका नाम वत्सराज है, इन दोनोंका स्वामी होगा; परन्तु हे राजन् !
 इनका विवाह तुम्हारे जोंटोंकी नहीं होगा; क्योंकि तुम्हारी मायु आजसे
 सिर्फ एक महिनेकी और बाकी है ।” यह सुन, राजाने पूछा,—“तो अब
 मैं क्या करूँ ?” मुनिने कहा,—“राजन् ! सुनो—वह वत्सराज कैसे इनका
 स्वामी होगा, वह भी मैं बतलाये देता हूँ । पड़ते तुम्हारे एक बहन थी ।
 उसे तुम्हारे पिताने अपने मित्र शूर नामक भूचर-राजाको ब्याह दिया था ।
 इसके बाद शूर राजाने एक दूसरी सुन्दर बचती—राजकुमारीसे विवाह

कर दिया । उसपर राजाका अधिक प्रेम हो गया और तुम्हारी कब्र तक ले चितामें उतर गयी । इसमें तुम्हारी बहुतकी बड़ा हाथ हुआ और वह भवान कष्ट द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर अन्तर-जातिकी देवी हुई है । उसीकी भील बहुत दान-पुण्यकर समय पर मृत्युको प्राप्त होकर वन नामक मठकी पुत्री प्राप्ता हुई है । इन दिनों पूर्वोक्तके द्वेषके कारण वह अन्तर देवी उस धीरिकाके गहरेशरीरका मार डालती है । मथलक बहुतसे मनुष्य मारे जा चुके हैं । इसलिये है राजन ! तुम अपनी इन दोनों पुत्रियोंका अभी अन्तर-देवीको दे डालो । इसके यही रहनेमें इतना भारी गति परम्पराज भागमें भाग यही जा गर्तुभगा ।" यही पुरुष देवाके द्वारा होन्त्याले मनुष्योंके लालका द्वार बन्द करेगा और इन दोनों लड़कियोंके भाग शायी करेगा ।" यह सब हाल सुनाकर मुनि अत्यन्त विहार करने लगे गये । इसीलिये है मरपुत्र ! यह विद्याधर-राजा मेरे पास इन दोनों लड़कियोंका छोड़ गया है । इसके बाद यह विद्याधर राजा कल्याणकर मृत्युको प्राप्त होकर अन्तरित्व हो गया । इसीने मुझे अन्तर-राजसरा एक पक्ष-सेवक भी दिया है और सर्व कामार्थ नामक गर्वहु भी इसका दिया हुआ है । इसीने मुझे व दोनों महोपधिवी भी दी थी । अन्तर व नर ! मैं अब वह सब आज्ञा पूर्ण दिव्य डालती हूँ ।"

इसके बाद इन दोनों कल्याणके भाग विद्याधर कर, कल्याण यही रह कर इनके भाग नाम-विलम्ब करने लगी ।

एक दिन कल्याणकी भवना अत्यन्त मोर अविश्वसा नामक राजी शिखाकी दुःसाधक इनसे अपनी प्रतिष्ठाकी बात कह सुनायी । इससे वह बाल इतने बड़ी । इसने वह कारण ज्ञान इसके विद्याधर पुत्री अन्तर भी राजा शिखाके भाग कल्याणकी ज्ञानकी भावा देती । यह कल्याण राजी शिखाके भाग इसी राजा पुत्र भवार ही, भावाजमानके अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त बाल की बातों को गुरुके । इस समय राजा कल्याणकी इस पुत्री अत्यन्त नामक मठकी मठ की पुत्री अत्यन्त राजा, "है वह कल्याण कल्याण के भाग भाग, -

“यह पर्यङ्क कहाँसे आया ! और यह घोड़ा इस महलकी सातवीं मंजिल पर कैसे चढ़ आया ?” इसी विस्मयमें पड़ी हुई वह भली भाँति चारों ओर देखने लगी । उसी समय वसने दोनों स्त्रियोंके साथ शय्यापर बैठे हुए अपने पतिको देखा । यह देख, धाँड़ताने परम प्रसन्नताके साथ अपने पिताके पास आकर कहा,—“महलके ऊपरवाले हिस्सेमें मेरे स्वामी आ पहुँचे हैं।” यह सुन, सेठने ज़रा सहमकर पूछा,—“पेटो ! वे इस तरह कैसे आये ?” तब उसने पर्यङ्क और अश्व आदि जो चीज़ें देखां थीं, उनकी बात बतलायी । यह सुन, सेठ भी घबराया हुआ तत्काल वहाँ आ पहुँचा । वत्सराजने अपने दोनों पत्नियोंके साथ सेठको प्रणाम किया । इसके बाद सेठके पूछनेपर कुमारने उससे सब कुछ कह दिया । यह सुन, आश्चर्यमें आकर सेठने सिर हिलाया । उस दिन वहाँ रह कर दूसरे दिन सवेरे ही वत्सराज अपनी तीनों प्रियानोंके साथ उसी पर्यङ्कपर बैठ, सेठकी आज्ञा ले, अपने घरकी राह नापी ।

उस समय धारिणी और विनलाने अपने घरमें आया हुआ पर्यङ्क देख, सोचा,—“यह शय्या किसकी है ! इसपर कौन सोया हुआ है ?” ऐसा विचार कर, उन्होंने ऊपरकी चढ़ाई कर देखा, तो उनका पुत्र वत्सराज, अपनी तीनों स्त्रियोंके साथ, सोया नज़र आया । यह देख, शर्माकर, वे दोनों धीरे-धीरे पाँछे लौट गयीं । उस समय उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ । थोड़ा देर बाद तीनों पत्नियोंके साथ वत्सराज अग पड़े और शय्या छोड़ कर उठ खड़े हुए । तब उन दोनोंने अत्यन्त हर्षित हो, उन्हें आशीर्वादोंकी बाँछारसे ढाँकते हुए, उनसे सारा वृत्तान्त पूछा, जिसके उत्तरमें वत्सराजने अपनी वह आश्चर्यजनक राम-कहानी कह सुनायी ।

इसके बाद उसी सर्व-कामन्द पर्यङ्कसे एक उत्तम घाँघरा माँगकर, उसे लिये हुए वत्सराज राजाके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर वह घाँघरा रानोंको देनेके लिये दे दिया । उसे देकर रानोंने परम सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दिया,—“वत्स ! तेरो लम्बी आयु हो ।” राजाने

लौट आकर राजासे कहा,—“हे स्वामी ! यत्सराजके घर तो रसोई की कुछ तैयारी ही नहीं है ।” यह सुन, राजाके मनमें बड़ा चिस्मय हुआ । उन्होंने एक दूसरे प्रतिहारीको बुला कर कहा,—“तुम जाकर देख भाग्यो, कि यत्सराजभयवा उसके किसी पड़ोसीके घर लोगोंके खिलाने-पिलाने की तैयारी हो रही है या नहीं ?” यह भी इधर-उधर चारों ओर देख-माल कर राजाके पास लौट आया और बोला,—“स्वामी ! जिसके घर पाँच सान भाइयोंका न्याता होता है, वह न जाने कितनी तैयारी करता है, पर यत्सराजके घर तो मैंने वैसी कुछ भी तैयारी नहीं देखी — यहाँ तो कोई बोलता-चालता भी नहीं ।” यह सुन, राजाने विचार किया,—“यत्सराजने मुझे न्याता दे रखा है, फिर ऐसी बात क्यों हो रही है ?” राजा यह सोच ही रहे थे, कि इनमें भोजनका समय हुआ देख, यत्सराजने यहाँ आकर उनसे भोजनके निमित्त पधारनेको कहा । तब राजाने कहा,—“हे यत्सराज ! क्या तुम मेरे साथ हँसी करते हो ? बिना रसोई-पानीका इन्तजाम कियेही मुझे बुलाने भाये हो ?” यह सुन, यत्सराजने कहा,—“स्वामी ! आप सब तरहसे मेरे पूज्य हैं, फिर मैं आपके साथ कैसे हँसी कर सकता हूँ ?” राजाने कहा,—“तुम्हारे घर मन्त्र-गानादिकका तो कुछ ठिकानाही नहीं है ।” यत्सराजने कहा,—“देख ! आप इसकी फ़िक्र क्यों करते हैं, कि मेरे घर रसोई तैयार है या नहीं ? यह फ़िक्र तो मुझे करना चाहिये । आपको तो हठाकर पधारनेकी ज़रूरत है ।”

यह सुन, उन्मादित हो, राजा अपने सब परिवार-परिजनोंके साथ, यत्सराजके घर भाये । यहाँ विशाल मनोहर मण्डप देख, राजाने सोचा,—“इसकी तो कुछ बातें भवम्मेसे मरी रहती हैं । यह मनोहर मण्डप तो अपनी तुरतका बनाया मालूम पड़ता है ।” इसके बाद कपा-योम्य मनोहर आसन बिछाये गये, तिनपर यत्सराजके कल्लाये अनुमार राजा आदि सब लोग बैठे । गान्-प्रभालन आदि क्रियाएँ की गयीं । इसके बाद यत्सराजके सेवकोंने रख, मुखर्ज और खाँदोंके बड़े बड़े पान

लगा दिये, जिनमें मिठाइयाँ, खाजे, दाल, भात, घी आदि मनोहर भोज्य-द्रव्य परोसे गये थे । तरह-तरहकी बघारसे खुशबूदार मालूम पड़ते हुए साग भी परोसे गये । हलवा, घेवर, खीर और दही आदि चीजें भी परोसी गयीं । ऐसा रसीला भोजन करते हुए राजाने सोचा,—“मैं सदा अपने घर भोजन करता हूँ ; पर ऐसा स्वादिष्ट भोजन कभी नहीं मालूम होता । यह तो साक्षात् अमृततुल्य भोजन मालूम पड़ता है ।” ऐसा सोचते और स्वादिष्ट भोजन होनेके कारण सिर हिलाते हुए राजा भोजन कर रहे थे । इसी समय वत्सराजने सोचा,—“यह उत्सव तो प्रियतमाओंके बिना अच्छा नहीं लगता ।” ऐसा विचार कर उन्होंने कोठेपर जाकर अपनी स्त्रियोंसे कहा,—“मेरी प्यारियो ! अब तुम लोग बाहर आकर राजाकी खातिरदारो करो ।” स्वामीकी यह बात सुन, उन्होंने मनमें सोचा,—“कुलवती स्त्रियोंके लिये पतिही गुरु और पूज्य होता है । कहा भी है, कि—

‘गुरुमित्रिद्विजातीनां, वयानां ग्राह्यो गुरुः ।

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां, सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘ब्राह्मणोंका गुरु अग्नि, वणोंका गुरु ब्राह्मण, स्त्रियोंका गुरु पति और सबका गुरु अतिथि है ।’

“इसलिये बुद्धाङ्गनाओंको हर हालतमें अपने स्वामीकी यात माननी चाहिये ।” यही सोचकर उन सयने अपने स्वामीकी यात मान लीं । फिर भी उन्होंने आपसमें सलाह की, कि स्वामाने जो हमें राजाके सामने भानेकी आज्ञा दी है, इसका नतीजा उनके हकमें अच्छा नहीं होगा ; पर किया क्या जाये ? पतिकी बात टाली भी तो नहीं जा सकती !” यह कह, ये तानों सुन्दर भट्टार किये, पतिकी आज्ञासे भोजन परोसने भायी । उस समय उन तानोंकी सुन्दरता देख, राजा कामानुर हो गये और अपने मनमें सोचने लगे,—“इस ससारमें वत्सराज ही धन्य है, जिसे ऐसा तानों जगत्में प्राप्तनीय मनोहर रूपवाली तीन स्त्रियाँ मिली हैं ।” ऐसा ही विचार करते हुए ये राजा धा-पोकर उठ गये । इसके

उनकी पहचान गयी और उनके कामका हाल मालूम कर, उसी समय एक कमरुदलमें जल भर लायी । उसे लेकर घटसराज नगरमें आये और राज सभामें जा, यह जल उन्हें दे दिया । उस समय देवताके प्रभावसे यह जल ऊँचे स्वरसे बोल उठा,—“क्यों राजा ! मैं तुम्हें खा जाऊँ ? अथवा तुम्हारे मन्त्रियोंको ही खा जाऊँ ? अथवा तुम्हें बुरी सलाह देनेवाले किसी और मनुष्यको ही खाऊँ ?” जलको इस प्रकार बोलते देख, सभी सभासद आश्चर्यमें पड़ गये । राजा तो अपना मतलब सिद्ध न हुआ देखकर भ्रंजने लगे, तो भी ऊपरसे दिखावेके लिये हँसकर बोले,—“अहा ! घटसराजके आगे कोई काम असाध्य नहीं है ।” यह कह, राजाने उन्हें बिदा किया और वे अपने घर चले आये ।

इसके बाद राजा फिर अपने मन्त्रियोंके साथ बैठे, और उसकी जान लेनेका उपाय सोचने लगे । उस समय चार मन्त्रियोंने राजासे कहा,—“हे देव ! आप अपनी कन्या श्रीसुन्दरीके विवाहके वहाने दक्षिण दिशामें यमराजका घर बनवाइये और उसीके भन्दर जाकर यमराजको निमन्त्रण देनेके लिये घटसराजको भेजिये, भागका काम बढ़ी भासानीसे बन जायेगा । उनकी बतलायी हुई तरकीब सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन मन्त्रियोंकी प्रशंसा करते हुए बोले, - “वाह ! तुम लोगोंने बढ़ी अच्छी तरकीब बतलायी !” इसके बाद उन कुछ मन्त्रियोंने नगरकी दक्षिण दिशामें एक गहरी खाई खुदवायी और उसमें लकड़ी भरकर आग लगा दी । इतना कर चुकनेपर उन्होंने राजाको सूचना दी । तब राजाने सब धीरोके साथ-साथ घटसराजको भी बुलावाया । पहले तो राजाने और-और धीरोंको बुलाकर कहा,—“हे धीरो ! मेरी पुत्री श्रीदेवीका विवाह है, इसलिये मुझे यमराजको निमन्त्रण देना है । इसलिये इस मन्त्रिसे भरी हुई खाईकी राहसे यमराजके घर जा, उन्हें न्योता दे आओ । यह सुन, और-और लोगोंने कहा,—“स्वामी ! यह काम हमलोगोंसे नहीं होगा ।” जब उन्होंने ऐसा टक्कासा जवाब दे दिया, तब राजाने घटसराजसे कहा । “सुनतेही घटसराजने यह काम करना स्वीकार कर लिया

और घर जाकर मरती पत्नियोंसे इसका हाल कह चुनाया । इसपर उन स्त्रियोंने कहा,—“इस निर्दयी और उग्र राजाको आज्ञा तुमने क्यों सोधार कर ली ? जैसे औरतें नहीं कर दी थीं, वैसेही तुम भी स्त-
कार कर देते ।” उनके ऐसा कहने पर भी बत्सरामने उस कामसे हाथ न धोखा । तब उन दोनों स्त्रियोंने बत्सरामको घरमें ही छिपाकर रख दिया और अपने बस करी शत्रुको आज्ञा दी,—“हे बस ! तुम मेरे पति का हर धारणकर, राजाके पास जाओ और वह जो काम करनेको कहें, उसे कर लो ।” यह सुन, उस बसने बत्सरामका उपधारण कर, राजाके पास जाकर कहा,—“नहापत्र ! जो काम हो, वह बतलाइये ।” राजाने कहा,—“बत्सराम ! तुम यमराजको बड़े आग्रहसे तिनखन देना और उन्हें लिये हुए एक नईनेके अन्दर यहाँ बसे जाना ।” यह सुन, नगरके बाहर जा, राजा, नन्दी और अन्त्या नगर-निवासियोंके सामने हो वह जगदली धारिने कूदकर क्षम करने अद्वैत हो गया । उस समय बत्सरामको आगने पुनर्त देख, सब लोगोंके मनमें बड़ा शोक हुआ और वे अकस्मात् कह उठे,—“ओह ! हमारे राजा भी कैसे निर्दय है, जो इन्होंने ऐसे गुन-छत्रोंसे मेरे हुए बत्सरामकुमारको मार डाला । इनका हागिज नला न होगा ।” यहाँ कह-कह कर येन शोक करने लगे । पर राजाको भी यहाँ सोच-सोचकर आनन्द होने लगा, कि नदके नेता काम बन गया ।

इसके बाद राजाने नत्नियोंसे कहा,—“नत्नियो ! अब तुम उसकी स्त्रियोंको मेरे घर ले जाओ—देर न करो ।” यह सुन नत्नियोंने कहा,—“हे नहापत्र ! तारा प्रजा इस समय बासे छिप्ट हो रही है, इस लिये नदी ऐसा करनेसे वह और भी विरक्त हो जायेगा । राजाको मोक्ष बिना संसति नहीं प्राप्त होती । कहा है कि—

‘किमेन नदीतु पुनराव, पुनरति नोकोपुनरुत्पन्ने वक्तु ।

अनुत्पन्ने नहाव, नहावो पुनरति नहाव ।’

बशन्—‘राजा तिनपसे पकड़ होता है, पुनरति न नहा

लोगोंका अनुराग होता है, अनुराग वालेको सहायक भी बहुत मिल जाते हैं और जिसके सहायक हैं, उसे लक्ष्मी प्राप्त होती ही है ।

“इसलिये हे राजन् ! एक महीने तक भाप उसके आनेकी राह देखिये—उतापलेपनसे काम नहीं बनेगा । यह कह, मन्त्रियोनि राजा-को रोक दिया । इसके बाद क्रमसे यह महीना बीत गया । तब कामसे अन्धे बने हुए राजाने अपने चार मन्त्रियोंको घट्सगराजकी क्लियोंको ले आनेकी आज्ञा दी । जब तक वे राजाके दुष्प्रभकी तामील करनेके लिये घट्सगराजके घर पहुँचें-पहुँचें, तबतक घट्सगराजकी दोनों क्लियोनि अपने यक्ष-रूपी किंकरको भेजकर पातालमेंसे अपने पिताको, जो व्यन्तरेन्द्र हो गये थे, बुलवा लिया । व्यन्तरेन्द्र, सारा हाल सुन, दामादके शत्रुओंका नाश करनेके इरादेसे, देवशक्तिके द्वारा मनोहर और बड़े दामोवाले आभूषणोंसे भूषित घट्सगराजका रूप धारण कर, घोड़े पर सवार हो, एक देव-रूपी सेवकको साथ ले, सवके सामने राजमार्गसे होते हुए राजद्वारमें आये । यह देख, राजा अचम्भेमें भाकर सोचने लगे,—‘यह घट्सगराज मेरी आँखोंके सामनेही अग्निमें प्रवेश कर, मृत्युको प्राप्त हुआ था, फिर यह कहाँसे आ टपका ? इस धीरे पुरुषने तो इस सुभाषितको भी झूठ साबित कर दिया, कि—

‘पुनरिवा पुनः रात्रिः, पुनः सूर्यः पुनः शर्मा ।

पुनः मजापते सर्वं, न कोऽप्येति पुनर्मृतः ॥१॥’

अथात्—‘फिर दिन होता है, फिर रात होती है, फिर सूर्य उदय होते हैं, चाँद उगता है, सब चीजें फिर होती हैं; पर मरा हुआ आदमी फिर नहीं लौटता ।’

ऐसा विचार कर राजाने बड़े आश्चर्यके साथ उनसे पूछा,—‘घट्सगराज ! यमराज कुशलसे हैं न ?’ इसपर उन्होंने कहा,—‘नाथ ! भापके मित्र यमराज स्वस्थ कुशलसे हैं । उन्होंने मुझसे पूछा, कि क्यों घट्सगराज ! तुम्हारे स्वामीके साथ मेरी इतनी गहरी दोस्ती है— तो भी

उन्होंने मुझे इतने लम्बे अर्सेके बाद याद किया, इसका क्या कारण है ? यह कह, उन्होंने मुझे कितने ही दिनोंतक बड़े आदरसे अपने पास रखा । स्वामी ! मुझे आपका सेवकही समझकर उन्होंने मेरी इतनी स्तुति की । आपके ही प्रेमके अनुरोधसे उन्होंने ये सब अलङ्कार, जो मेरे शरीर पर मौजूद हैं, मुझे दिये हैं । और आपके विश्वासकेही लिये उन्होंने मेरे साथ-साथ अपना यह द्वारपाल भेज दिया है ।” यह सुन, राजा ने उसके सामने दृष्टि की । उसकी पलकहीन दृष्टि देख, राजा को इस बातका विश्वास हो गया । इसके बाद अन्तरेन्द्र ने कहा,—“हे महाराज ! यमराज ने मेरी माफ़त आपको कहला भेजा है कि इसी तरह यरावर मेरे पास अपना आदर्श भेजा करेंगे—मैं आपसे मिलनेके लिये आना चाहता हूँ, पर इन्द्र पुष्टी नहीं देते, क्योंकि यहाँ मेरे बिना इन्द्रका घड़ोभर भी काम नहीं चल सकता । इसलिये आपको मुझसे मिलने आइये । सब पूछिये तो, आनेही जानेसे प्रीति बढ़ती है ।” यह सुन, सब राजपुरुष वहाँ आनेके लिये उत्कलित हो गये । तब यमराज के द्वारपाल ने कहा,—“तुमने तो जो लोग यहाँ चलना चाहें, वे मेरे साथ-साथ चलें ।” इसके बाद राजा आदि सभी लोग यमराज के घर आनेके लिये तैयार होकर उसी उलटें हुए यमगृहके पास आये । वहाँ पहुँचकर यमराज के द्वारपाल ने कहा,—“मेरे पाँछे-पाँछे सबलोग खड़े आओ ।” यह कह, वह आगसे भरी हुई छाईनें फूट पड़ा । इसके बाद राजा के हुक्मसे उनके चारों मुख्य मन्त्रों भी फूटे । फूटतेही सबके सब जल कर स्राक हो गये । अन्तमें जब राजा उसमें फूटनेके लिये तैयार हुए, तब अन्तराज ने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें रोक दिया और कहा, “हे राजा ! यह सब लोग जानते हैं, कि जो आगमें फूटता है, वह जलकर नर जाता है । पर मैं देवताके प्रभावसे जीता रह गया और उसीने मेरे शत्रुओंको धोखा देकर मौतके घाट उतार दिया है । अब लोगोंने आपको मुझे नार डालनेका सलाह दी थी, इसीसे मैंने भी इन्हें नार डाला । कहा भी है, कि—

कृते प्रतिहृतं कुपारं, लुंचितं प्रतिलुंचितम् ।

त्वया लुंचापिताः पन्नाः, मया मुण्डापितं शिरः ॥

अर्थात्—‘जैसेको तेसा करनाही चाहिये । जो, अपने सिरके बाल नोचे, उसके भी बाल नोच लेने चाहिये । यह बात और है, कि तुमने मेरे पंख नोच लिये और मैंने तुम्हारा सिर मुँडवा दिया, पर बदला तो लिया ।’

और भो कहा है, कि—

‘धुत्तह किज्जह् धुत्तह्, आलह् विज्जह् आल ।

मिच्छह् किज्जह् मिच्छह्, इम गमिज्जह् काल ॥१॥’

अर्थात्—‘धूर्त्तके साथ धूर्त्तता करनी, दोष लगाने वालेको दोष लगाना और मित्रके साथ मित्रता करनी चाहिये । मनुष्यको इसी तरह समय बिताना चाहिये ।’

यत्सराजको यह बातें सुन, राजा उसकी भक्ति और शक्तिसे बड़े प्रसन्न हुए और अपनी सारी चेष्टा विफल हो जानेसे लज्जित भी हुए । इसके बाद वे अपने घर जाकर विचार करने लगे,—“यत्सराजकी स्त्रियोंके साथ रमण करनेका विचार कर मैंने बड़ा पाप कमाया—साधही मेरी लोक-हंसाई भी हुई ।” ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी श्रीसुन्दरी नामक कन्या यत्सराजकी ग्याह दो और प्रजाकी सम्मति ले, उन्हींको राज्य देकर आप तपस्वी हो गये । इसके बाद यत्सराजने राज्यका पालन करते हुए बहुतसे देश जीत, पुण्यवान् और दृढ़-पराक्रमी होकर, महाराजकी पदवी पायी ।

एक बार एक पुरुषने समामें भा, राजा यत्सराजकी प्रणाम कर, उनके सामने एक लिखा हुआ पर्चा रखकर नियेदन किया,—“हे महाराज मैं क्षितिप्रतिष्ठित नगरसे आया हूँ । यह पर्चा यहाँके नगर-निवासियोंने भेजा है ।” यह सुन, राजाने यह पर्चा हाथमें लेकर पास बैठे हुए लेख-याचकको पढ़नेके लिये दे दिया । लेखयाचकने उसे खोल कर पढ़ा ।

धनवाये, अनेक जिनेश्वरोंकी प्रतिमार्प स्थापित करवायीं और जिन-
 चैत्योंमें अष्टाङ्गिका उत्सव आदि अनेक धर्म-कृत्य करवाये । इसी
 प्रकार वे निरन्तर धर्मकार्योंमें मग्न रहते थे । कुछ दिन बीतने पर फिर
 भाचार्य वहाँ आये । उस समय राजा-भो उनकी घन्दना करने गये ।
 उनके चरण-कमलोंको प्रणाम कर, धर्म-देशना सुन, उन्होंने गुहसे
 कहा, —“हे प्रभु ! मैंने पूर्व भवमें कौन ऐसा कर्म किया था, जिससे
 मुझे इतनी विपत्तियोंके बाध सम्पत्ति प्राप्त हुई ?” गुहने कहा,—“हे
 राजन् ! सुनो—

“इसी जम्बूद्वीपके भरक्षेत्रमें वसन्तपुर नामका एक नगर है । उसी
 नगरमें तुम शूर नामके राजा थे । राजा शूर बड़े ही सरल-स्वभाव,
 क्षमावान्, वाक्षिण्य-पूर्ण, निर्लोभी और देव-गुहकी पूजामें तत्पर थे ।
 इस प्रकार सब गुणोंके आधार, शीलवान् और दान-धर्ममें तत्पर है
 राजा पृथ्वीका पालन कर रहे थे । उनकी पटरानीका नाम शूरवेगा
 था और वह विद्याधर-कुलमें उत्पन्न हुई थी । राजाने रतिचूला नामकी
 एक और राजकुमारीके साथ विवाह किया था । उन पर आसक्त रहते
 हुए भी राजाने दोनों प्रियतमाओंका त्याग कर दिया । इसके बादका
 सारा वृत्तान्त व्यन्तरी-देवीने तुमसे कहा ही था और तुमसे गन्धयाह-
 गति राजाकी दोनों कन्याओंका विवाह करा दिया था । हे महा भाग्य-
 वान् ! वही तुम इस भवमें भी राजकुमार हुए । दानादि धर्म करनेके
 कारण ही तुम्हें भोगकी सारी सम्पत्तियाँ प्राप्त हुई हैं, पूर्व भवमें राज्य
 करते हुए तुमने कुछ धन्तराय-कर्म कर दिया था, इसीलिये इस भवमें
 पहले कुछ दिनों तक राज्य-भ्रष्ट होकर तरह-तरहके दुःख भोगने पड़े ।”

इस प्रकार गुहके मुखसे अपने पूर्व भवका हाल सुन, राजा वत्स-
 राजको जातिस्मरण हो भाया और उन्होंने गुहकी बातोंको सब
 समझ लिया । इसके बाद विशेष पुण्य उपाज्जन करनेके लिये उन्होंने
 दोक्षा लेनी चाही । इसीलिये घर भा, अपने पुत्र धीरोधरको राज्य
 दे, चारों स्त्रियोंके साथ उन्होंने चारित्र्य ग्रहण कर लिया । मली मूर्ति

चारित्र्यका पालन कर, विविध तपस्याएँ कर, अन्तर्ने समाधि-भरण पाकर वे देवलोकको चले गये । वहाँसे ज्युत हो, मनुष्य जन्म पा, समग्र कर्मोंका क्षय कर, वत्सराजका जीव मोक्षको प्राप्त होगा । हे मेघरथ राजा ! मैंने पहले जिस शूर राजाका नाम लिया था, वह यही वत्सराज था, जिसने विपत्तिके दिनोंमें भी पूर्व-पुण्यके प्रभावसे सुख पाया ।

वत्सराज-कथा समाप्त ।

इसके बाद मेघरथ राजाको चारित्र्य प्रवृत्त करनेकी इच्छा हुई । इसीलिये त्रिनेश्वरको प्रणाम कर, वे अपने घर गये और अपने भाई हृदयरथसे बोले,—‘भाई ! तूने अब इस राज्यको चलाओ—मैं चारित्र्य प्रवृत्त करूँगा ।’ यह सुन, हृदयरथने कहा,—‘मैं भी तुम्हारे साथही मत अङ्गीकार करूँगा ।’ तब मेघरथ राजाने अपने पुत्र मेघस्तेनको गद्दी पर बैठा दिया और हृदयरथके पुत्र रथस्तेनको युवराजकी पदवी प्रदान की । इसके बाद चार हज़ार राजाओं, सात सौ पुत्रों और अपने भाईके साथ उन्होंने श्री त्रिनेश्वरसे दांशा ले ली । इसके बाद राजर्षि मेघरथने अपने शरीरकी सारी ममता त्यागकर परिपक्व सहन करना आरम्भ किया । इसके बाद पाँच सन्मिति और तीन गुप्ति सहित धौघनरथ त्रिनेश्वर बहुतरे जीवोंका प्रतिबोध कर, पृथ्वी तलपर बिड़ार कर सर्व-कर्म रूपों मलका नाश कर, मोक्षको प्राप्त हुए ।

मेघरथ राजर्षिने दोस स्थानकोंको आराधनासे मनोहर तीर्थद्वारका नाम-कर्म उपाज्वन किया । दोस स्थानकोंको आराधना इस प्रकार है—अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन गुरु स्वविर, साधु, बहुधृत और तपस्वी-इन आठोंका वे निरन्तर वात्सल्य करते थे ज्ञान, दर्शन, विनय, आवश्यक और शालभ्रत - इन पाँचोंका निरन्तर उपयोग करते हुए वे अतिचार-रहित पालन करते थे । सुप्लव तप, शान, वैयावध्य और समाधिते वे युक्त रहते थे । अपूर्व ज्ञानको प्रवृत्त करनेमें वे सदा प्रयत्नशील रहते थे । वे धृतज्ञानको भक्ति करते थे और प्रवचनको

प्रभावना करते थे । अन्तमें वे सिंहनिकीड़ित नामक तपःकमे
आचरण करते थे ।

इसके बाद राजर्षि मेघरथ, पूरे एक लाख वर्ष तक निरतिव
चारित्रका पालन कर, अन्तमें अनशन करते हुए अपने छोटे भा
साथ, तिलकाचल पर्यंत पर जा, समाधि-पूर्वक इस मलिन देह
त्यागकर सर्वार्थसिद्धि नामक पाँचवें अनुत्तर विमानमें तैंतीस साग
रमके आयुष्यवाले देव हुए ।





छठा प्रस्ताव

आजसे बहुत पहले, भरत-क्षेत्रमें, युगादि त्रिनेश्वरके कुरु नामके एक पुत्र थे। उन्हींके नामसे कुरु नामका एक देश प्रतिष्ठ है। उन्हीं कुरु राजाके हस्ता नामका एक पुत्र हुआ, जिसने यड़ी यड़ी हवेलियों और हाट-यात्रारोंकी धेणोले शोभित, ऊँचे-ऊँचे सुन्दर नदलोंकी धेणोले मनोहर मालूम पड़ता हुआ, प्राकारों तथा गोपुरोंले (दरवाजोंले) अलंकृत, हस्तिनापुर नामका एक अपूर्व नगर बसाया था। उस नगरमें कमसे बहुतसे राजा हुए, जिनके पीछे विश्वसेन नामक एक राजा हुए। उनकी पवित्र लावण्यवती अचिरा नामकी पत्नी जगत् भरमें प्रतिष्ठ थी। उनके साथ रहकर राजा मनोवाञ्छित सुख भोग रहे थे।

एक दिन, भादों बड़ी सप्तमीको, चन्द्रमा जब भरणी नक्षत्रमें था और अन्य सभी ग्रह शुभ-स्थानमें थे, उसी समय रातको नैघरथका जीव आयुर्क्षय होने पर, सर्वार्थ-सिद्ध विमानसे च्युत हो, अचिरादेवोंकी कोषरूपी सरोवरमें राजहंसके समान अवतीर्ण हुआ। उसी समय सुख-सेज पर पड़ी, कुछ जगो और कुछ लोयो हुई अचिरादेवोंने हाथों, वृषभ, सिंह, लक्ष्मीका अग्निपेक, पुष्पनाला, चन्द्र-सूर्य, ध्वजा, पूर्ण-कुम्भ, सरोवर, सागर, विमान, रत्न-राशि और निर्धूम-अग्नि—ये चौदह स्वप्न देखे। उसी समय रानीकी नींद टूट गयी और वे हर्षसे व्याप्त हो, राजाके पास जा पहुँची तथा त्रय-विजय शब्दों द्वारा उन्हें यथादिया देने लगी। इसके बाद स्वामीकी आज्ञासे अच्छे-भले आसन

पर बैठकर उन्होंने कमसे अपने स्यन्नका सारा हाल राजाको कह सुनाया । यह सुन, हर्षसे छिलकर विश्वसेन राजाने उनसे कहा,—
“प्यारी ! तुमने यह बड़े ही अच्छे स्वप्न देखे । इनके प्रभावसे तुम्हें सब अच्छे लक्षणोंसे युक्त और अंग-अंगसे सुडील एक पुत्र उत्पन्न होगा ।”

यह सुन, रानीको बड़ा आनन्द हुआ और कहीं दूसरा कोई अशुभ स्वप्न न दीख पड़े, इसलिये जागती हुई देव, गुरु और धर्म-सम्बन्धी विचारोंमें ही उन्होंने बाक़ी रात बिता दी ।

इसके बाद प्रातःकाल राजाने अपने सेवकोंको भेजकर भद्राङ्ग-ग्योनिर्गम प्रणीत और स्वप्नके फल जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाया । राजपुरुषोंके बुलाये हुए ब्राह्मण मातृलिक उपचार कर, राजसमामें भा, क्रमशः रत्ने हुए भद्रासनों पर बंठ रहे । उस समय राजाने उनको पुण्यादिसे पूजा कर, उनसे रानीके स्वप्नका सारा हाल सुनाकर उसका फल पूछा । इसके उत्तरमें उन्होंने कहा,—“हे राजन् ! हमारे शास्त्रमें ४२ साधारण और ३० महास्वप्नोंका वर्णन है । सब मिलाकर ७२ स्वप्न होते हैं । इन ३० महास्वप्नोंमेंसे आपके बड़े अनुमार १४ महास्वप्न अचिरा दीप्तीने देखे हैं । मरिहृतो और चक्रवर्त्तियोंकी माता ही ये १४ स्वप्न देखती हैं । वासुदेवकी माता सात, कलदेव की माता चार, प्रतियामुदेवकी माता तीन और माण्डलिक राजाकी माता एकही महास्वप्न देखती हैं । अचिरादीप्तीने तो बीस महास्वप्न देखे हैं । इसलिये आपके पुत्र मरत क्षेत्रके उहाँ छहोंके राजा होंगे, अथवा तीनों लोकोंके द्वारा यश्वता करने योग्य क्रिन्दव होंगे ।” यह सुन राजा सहित राजाको बड़ा आनन्द हुआ । इसके बाद राजाने उन स्वप्न-विचारकोंको पुण्य, फल, धन, धान्य और वस्त्रादिसे सम्मानित कर, बिदा कर दिया ।

इसके बाद राजा बड़े यत्नसे गर्भका पालन करने लगी । गर्भको रक्षाके लिये उन्होंने धनि विजय, धनि मयूर, धनि क्षार, धनि

कटु, अति तोष्य और अति अमृ (खट्टे) पदार्थ खाना छोड़ दिया और गर्भको लाभ पहुँचाने वाले पथ्य और गुणकारक पदार्थ खाना शुरू किया । स्वामीके गर्भमें धानेके पहले उस नगरमें महामारी आदि उपद्रवसे बहुतरे लोग मर रहे थे । अब ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ने लगा, त्यों-त्यों महामारी आदि योमारियाँ नष्ट होती गयीं और सारे नगरमें शान्ति फैल गयी । इससे स्वामीके माता-पिताने सोचा,—‘यह जो महामारी आदिके उपद्रव शान्त होकर सर्वत्र शान्ति फैल गयी है, वह इसी गर्भस्थ बालकका प्रताप है ।’ इसके बाद गर्भके प्रभावसे जिन-जिन अच्छी-अच्छी चीजोंको चाहता रानीको हुई, उसको राजा विश्वसेनने भी भलो-भाँति पूर्तिकर दी । कमसे नौ महोने साढ़े सात दिन यातनेपर जेठ, महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीकी रातको, जिन समय चन्द्रमा भरपौ नक्षत्र और मेष राशिमें था, सूर्यादिक ग्रह उद्याति-उद्यतर स्थानोंमें थे, उसी शुभ लग्नमें, अनुकूल तथा धूलरहित वायुका जिस समय मन्द मन्द प्रवाह फैल रहा था, उसी शुभ मुहूर्तमें अचिरा देवाने, अपनी सुवर्ण-काँसी कान्तिसे भव-घ्ननको निवारण करनेवाला, पवित्र-चरित्रवाला और तानों लोकको सुख देनेवाला सुपुत्र सुखसे प्रसव किया ।

उसी समय उपरत दिक्कुमारियाँ, अवधिमानसे जिनेश्वरके जन्मके वृत्तान्त जानकर तत्काल वहाँ आ पहुँचीं । उनमें अधोलोकके गङ्गा-इन्तगिरिकी रुद्रामें रहनेवाली भाउ कुमारियाँ, जम्बूलोकके मेहरार्धत-पर नन्दन-वनमें रहनेवाली भाउ कुमारिकाएँ, रुचक-पर्वतकी चारों दिशाओंमें रहनेवाली भाउ-भाउ कुमारिकाएँ, रुचक-पर्वतकी चारों विदिशाओंमें रहनेवाली चार कुमारिकाएँ तथा मध्यम रुचक-ग्राममें रहने-वाली चार कुमारिकाएँ थीं । इस प्रकार सब मिलकर उपरत कुमारिकाएँ वहाँ आयीं । पूर्वोक्त अधोलोक-निवासिनी भाउ कुमारिकाओंने संवर्तक नामक वायु चलाकर भूमिको साफ़ कर दिया । नैऋत-पर्वतके नन्दन-वनमें रहनेवाली भाउ कुमारिकाओंने गन्धादिककी रथाँ

की और रुक्म-गिरिकी पूर्व दिशाकी आठों कुमारिकाएँ हाथों भारसी लिये जिनेश्वरकी माताके पास खड़ी रहीं । दक्षिण आठों कुमारिकाएँ पानोकी भारियाँ लिये खड़ी हो रहीं । पश्चिम दिशाकी आठों कुमारिकाएँ पंखे लिये खड़ी हो गयीं और उत्तर की आठों कुमारिकाएँ चेंबर ढलाने लगीं । रुक्म-गिरिकी रहनेवाली चारों कुमारिकाएँ द्वीपिकाएँ धारण किये खड़ी हो और रुक्म-द्वीपमें रहनेवाली चारों कुमारिकामें रक्षावन्धन आदि स्तुतिकाके कार्य किये ।

इसी समय शक्र-इन्द्रका निश्चल आसन चलायमान हो गया । उसी समय देवेन्द्रने, अधि-ज्ञानसे जिनेश्वरका जन्म हुआ जानकर, तत्क्षण पदातिसैन्यके अधिपति नैगमेयीदेवको आह्वा देकर सुधोया नामक ग्रंथ पञ्जाते हुए सब देवताओंको खबर दिलवायी । उसी समय सब देवता तैयार होकर देवराज इन्द्रके पास आये । इसके बाद इन्द्रने पालक देव से उत्तम विमान तैयार करवाया और परिवार सहित उस पर सवार हो, भ्रेष्ठ शृङ्गार किये हुए तीर्थङ्करके जन्म-गृहमें चले आये । वहाँ मा-स्वामीको प्रणाम कर, उनकी स्तुति कर, माताको विशेष रूपसे नमस्कार कर, उन्हें व्यवस्थापिनी निद्रा दे, प्रभुका मायामय प्रतिबिम्ब माताके समीप स्थापित किया । इसके बाद इन्द्रने अपने पाँच स्वरूप बनाये—एक स्वरूपसे उन्होंने जिनेश्वरको दोनों हाथमें लिया, दूसरे रूपसे छत्र धारण किया, तीसरे और चौथे रूपोंसे चेंबर ढलाने लगे और पाँचवें रूपसे ध्वज उछालते हुए आगे चले । इसी तरह चलते हुए वे मेरुपर्वतके शिखर पर पहुँचे । उसी समय अन्य तिरसठ इन्द्र भी अपने-अपने परिवारके साथ वहाँ आ पहुँचे । तदनन्तर मेरुपर्वतके शिखर पर अतिपाण्डुकयला नामकी शिलापर शाश्वत आसन मार बैठे हुए सौधर्म-इन्द्र श्रीजिनेश्वरको अपनी गोदमें लेकर बैठ रहे और मन्युतेन्द्र आदि देवेंद्रोंने सोने, चाँदी, मणि, काष्ठ और मिट्टीके अनेक-अनेक कस्त्रोंमें तीर्थोंके जल भर कर बड़े हर्षके साथ श्रीजिनेश्वरका

अभिषेक किया । इसके बाद सौधर्म इन्द्रने श्रीजिनेश्वरको अच्युतेन्द्रकी गोदमें रख दिया और त्रिभुवन-स्वामीको पवित्र स्नान करा, उनका समस्त शरीर उत्तमोत्तम घट्टोंसे पोंछ, चन्दनादिका विलेपन कर, हरि-चन्दन और पारिजातके सुगन्धित पुष्पोंसे उनकी पूजा कर, चक्षुदोषके निवारणके लिये राई-लोन घारकर, तीर्थङ्करको प्रणाम कर, भक्तिपूर्वक उनकी इस प्रकार स्तुति की,—

“हे अचिरादेवीकी कोख-रूपी पृथ्वीके कल्पवृक्षके समान, भव्य प्राणी रूपी कमलोंको खिलानेके लिये सूर्यके समान और कल्याणका समूह देनेवाले स्वामी ! तुम्हारी जय हो ।

इस प्रकार उदार घवनोंसे तीर्थङ्करकी स्तुति कर सौधर्म इन्द्रने प्रभुको उनके घर पहुँचा दिया और उन्हें माताके पास सुलाकर, सबके सामने ही कहा,—“जो कोई जिनेश्वर या इनकी माताकी धुराई करनेका विचार करेगा, उसका सिर-गर्भोंके दिनमें परण्डके फलकी तरह तत्काल कट जायेगा ।” इसके बाद इन्द्र नन्दीश्वर द्वीपको चले गये । वहाँ अन्यान्य इन्द्र भी मेरुपर्वतसे धूमते-धामते बिना बोलाये चले आये थे । वहाँ उन लोगोंने अष्टाहिक-उत्सव किया और उसके बाद अपनी-अपनी जगह पर चले गये । दिक्कुमारियाँ भी अपने-अपने घर चली गयीं ।

इधर अचिरादेवीकी नींद रातके पिछले पहर टूटी । उस समय उनके शरीरकी सेवा करनेवाली दासियाँ अपनी स्वामिनीकी पुत्र सहित देखकर हर्षित तथा विस्मित हुईं । “मेरी पहले पहुँचूँ !” यही सोचती हुई सब-की-सब जल्दी जल्दी राजाके पास बधाई देने आयीं और बोलीं,—“हे महाराज ! इस पुत्रकी दाईका काम दिक्कुमारियोंने आकर किया है और देवेन्द्रोंने स्वामीको मेरु-पर्वत पर ले जाकर वहाँ इनका जन्माभिषेक महोत्सव सम्पन्न किया है । हम लोगोंको यह बात देवताओंकी जुबानी मालूम हुई है ।” यह बात सुनते ही राजा विश्वसेन मेघकी धारासे सिंचे हुए कदम्य-वृक्षकी भाँति रोमाञ्चित हो गये और उन्होंने उन दासियोंको हर्षके मारे मुकुटके सिवा अपने सब अङ्गोंके गहने उतार-

कर दे डाले । इसके बाद दर्वकी उमड़में राजाने उन्हें इतनी सोना-चाँदी इनाममें दी, कि उनकी सात पीढ़ियों तक खर्च करनेसे भी न घटे । इसके बाद हर्षित राजाने, जिसने जो माँगा, उसे वही दे डाला, प्रजाका कर माफ़ कर दिया, माण्डवीमें लिया जाने वाला द्रव्य छोड़ दिया और सारे नगरमें गाना-यज्ञाना, धवल-मङ्गल और यथाइयोंके महोत्सव जारी करा दिये । इसी तरह मंगलाचार होते रहे । इतनेमें चारहवाँ दिन आ लगा । उस दिन राजाने अपने सब यन्त्रुओंको अपने यहाँ बुलवाया और उन्हें भाँति भाँतिके भोजन करा, उनके सामने ही कहा,—“हे सज्जनो ! जिस दिनसे मेरा यह पुत्र माताके गर्भमें आया, उसी दिनसे सारे नगरसे महमारी आदि उपद्रव दूर होकर शान्ति विराजमान हो गयी, इसलिये मैं इस पुत्रका नाम ‘शान्ति’ रखता हूँ ।” यह सुन, सबने यह नाम पसन्द किया । शक्रइन्द्रने भगवान्‌के अंगूठेमें अमृत डाल दिया था, उसीको पी-पी कर स्वामी, रूप-लाघव्यकी सम्पत्ति-सहित, वृद्धिको प्राप्त होने लगे ।

भय कर्ता स्वामीके शरीरका वर्णन करता है । वह इस प्रकार है—
 स्वामीके हाथ-पैरके तलुके लाल और शुभलक्षण-युक्त थे । उनके चिकने, लाल और ऊँचे-ऊँचे नख धारसी (दर्पण) की तरह मालूम पड़ते थे; दोनों पैर कछुएकी तरह ऊँचे जान पड़ते थे, जंघाएँ मृगकी जंघाके समान थी । दोनों जाँघें हाथीकी सूँड़की तरह गोल और पुष्ट थीं । उनकी कमर बड़ी चौड़ी थी । दक्षिणावर्त नामि बड़ी गम्भीर थी । उदर घञ्जकी तरह पनला था । उनका वक्षस्थल नगरके दरवाज़ेकी तरह विशाल और ढ़ड़ । था उनकी दोनों भुजाएँ नगरकी भर्गलाके समान लम्बी थीं । उनकी गरदन शङ्खकी तरह सुन्दर थी । उनके होंठ विम्बके-फलके समान लाल-लाल थे । उनके दाँत कुन्दकी फलियोंके समान थे । उनकी नासिका सज्जनोके आचरणकी भाँति ऊँची तथा सरल थी । उनके नेत्र कमल पत्रकी भाँति थे । उनका ललाट भट्ठीके चाँदिकासा दिखाई देता था । उनके दोनों कान हिडोलेके आकारके थे । उनका मस्तक उग्रसा शोभित हो रहा था । उनके पाल चिकने, मीरेकी तरह काँडे

भीर अत्यन्त मुल्यमय थे । उनकी साँससे कमलकीसी सुगन्ध आती थी भीर उनके सारे शरीरकी कान्ति बमकते हुए सोनेके समान थी । इस प्रकार श्रेष्ठ भूँवाले स्वामीके भङ्ग-अत्यङ्गने उत्तम लक्षण विराजमान थे ।

ऐसे लक्षणोंसे कुछ तीनों प्रकारके ज्ञानसे भरे हुए, समग्र ज्ञान-विज्ञानके पारगामी भीर सब मनुष्योंमें उत्तम भगवान् कमलाः बढ़ते हुए युवावस्थाको प्राप्त हुए, उस समय पिताने अनेक रूपवती तथा कुल-वती बालिकाओंसे उनका विवाह कर दिया । उन सब स्त्रियोंमें यशोमती नामकी पटरानी भगवान् की अतिशय प्रेम-पात्री भीर सारे अन्तःपुरने प्रधान हो गयी । पचास हजार वर्ष ध्वस्त होनेपर पिताने स्वामीकी राज्यपर बैठाया ।

इसके बाद दृढ़रथका जीव, सर्वार्थ-सिद्ध विमानसे च्युत हो, यशो-मतीके गर्भमें पुत्र-रूपसे अवतार्य हुआ । उस समय रानी यशोमतीने स्वयंसे चक्र देखा । कमलाः समय पूरा होनेपर शुभ मुद्राचर्चने उनके पुत्र उत्पन्न हुआ । पिताने सूख धूनधानसे उत्सव कर, पुत्रका नाम स्वयंसे अनुसारहो चक्रायुध रखा । कमलाः बढ़ता हुआ वह पुत्र, सब कलाओंका अभ्यास कर, युवावस्थाको प्राप्त हुआ । तब उन्होंने उसका विवाह अनेक राजकुमारियोंके साथ कर दिया ।

एक दिन राजा ह्यग्निनाथकी आयुधशालाने तुर्यकी सी कान्तिवाले हजार आयेवाला, और हजार यशोंसे अधिष्ठित बड़ा ही उत्तम चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । उस समय आयुधशालाके रक्षकोंने प्रभुको उस चक्र-रत्नकी उत्पत्तिका समाचार आ सुनाया । सुनकर स्वामीने उसके उपलक्ष्यमें भद्रार्थिका-मन्त्रोत्सव किया । इसके बाद वह चक्र आयुधशालासे बाहर निकलकर भास्करमार्गकी ओर चला । उसके पीछे-पीछे राजा ह्यग्निनाथ भी सैन्य सहित चल पड़े । चक्रके पीछे आगे-आगे चलते दूर दिग्गजों मारुत-गोर्खोंके दल समुद्रका किनारा निम्न ; वहाँ सेनाका पड़ाव डाक, मलय-गोर्खोंके सामनेही शुभ आसन नारदर चक्रवर्ती बैठ रहे । उसी समय उनके प्रभावसे उनके अन्तर अधोनाथने-बारह पोंडव पुंरर एनेकाडे

उस तीर्थके अधिष्ठाता देवता-मागधकुमारका आसन ढोले गया । यह देख, उन्होंने अवधि-ज्ञानका उपयोग कर, अपने आसन ढोलनेके कारण मालूम कर लिया, उन्हें मालूम हो गया, कि श्रीशान्ति नामक चक्रवर्ती उहाँ छद्मोंको जीतनेके लिये तैयार हुए हैं और यहाँ आ पहुँचे हैं । यह ज्ञानकर देवताने सोचा,—“यदि भीर कोई चक्रवर्ती होता, तो मुझे उसकी भी आराधना करनी ही पड़ती । फिर ये तो श्रीशान्तिनाथ चक्रवर्ती जिनेश्वर हैं । इसलिये ये तो मेरे लिये अधिक भाराध्य (पूजनीय) हैं । भला जिनकी भक्ति देवेन्द्र भी करते हैं, उनकी भक्ति मैं क्योंकर नहीं करूँगा ?” यही सोचकर मागधकुमार देव, उत्तमोत्तम यत्न तथा महामूल्यवान् अलङ्कार लिये हुए प्रभुके पास भाये और ये सब चीजें भेंट कर, कहा,—“हे स्वामी ! मैं पूर्ण विशाका पालक भीर आपका सेवक हूँ । आप जब जैसी आज्ञा चाहें, मुझे दे सकते हैं ।” यह सुन भगवान्ने उनको आज्ञाके साथ विशा किया ।

इसके बाद चक्रो चक्रके पीछे-पोछे चलते हुए दक्षिण-दिशामें भाये क्रमशः उन्होंने घर-दाम तीर्थमें आकर सेनाका पड़ाव किया और यहाँ अधिष्ठाता देवको भी मागधके देवताके ही समान अपने अधीन कर लिया । इसी प्रकार उन्होंने पश्चिम दिशाके प्रभासतीर्थके अधिष्ठाताको भी वशमें कर लिया और उत्तर-दिशामें सिन्धु-नदीके किनारे आ खड़े । यहाँ भी पहलेकी तरह उन्होंने सिन्धु-देवीको वशोभूत किया । देवीने प्रभुके पास आ, एक रत्नमय स्नान-पीठ, बहुतरे सोने, चाँदी और मिट्टीके कलश तथा अन्यान्य स्नानोपयोगी सामग्रियोंके साथ-साथ उत्तमोत्तम यत्नाभरण प्रभुकी भेंट करते हुए कहा,—“हे नाथ ! मैं सर्वदा आपकी आज्ञाके अधीन हूँ ।” यह सुन, स्वामीने उनको सम्मानके साथ विशा किया और वे अपने स्थानको चली गयीं ।

इसके बाद प्रभुकी आज्ञासे चर्म-रत्नसे सिन्धुनदी पारकर सेना पति पश्चिम-छापड़पर विजय प्राप्त कर, प्रभुके पास भाये । इसके बाद चक्ररत्न चैतान्य-पर्वतपर आया । उसी समय चैतान्यपर्वतके चैतान्यकुमार

देवता भी प्रभुके वशवर्त्तो हुए और खण्डप्रपाता नामक गुफाका द्वार आप-से-आप खुल गया । उसके अधिनायक हतमाल नामक देवने आप-से-आप प्रभुकी आज्ञा स्वीकार करली । उस गुफामें उन्मत्ता और निमग्नता नामकी दो अति दुस्तर नदियाँ हैं । उनके पार जानेके लिये मिश्रियोंने तत्काल उनपर पुल बँधवाये, जिनके सहारे प्रभु सारी सेनाके साथ उस गुफाके अन्दर चले गये । वहाँका अन्धकार दूर करनेके लिये, उस पचास योजन लम्बी गुफाकी दोनों तरफ़ उनचास मण्डल कांकि-पीरक्षके बनाये गये । तब प्रभु उसके बाहर निकले । वहाँ भरतचक्राकी समान प्रभुने तत्काल अपने बड़े पुण्योंके प्रतापसे आपात-चिलात नामक छेछोंकी अपने वशमें किया । इसके बाद सेनापतिके द्वारा सिन्धुके दूसरे पारका देश जीतकर, स्वामीने हिमाद्रिकुमार देवकी वशमें किया । इसके अनन्तर वृषभ-कूटके पास जा, चक्राके कांकिपीरक्षसे अपना नाम लिखा । तदनन्तर गङ्गानदीके उत्तर प्रदेश सेनापति द्वारा अपने अधीन कर, उन्होंने तमिस्रा-गुफाके नाट्यमाल देवकी वशवर्त्तो बनाया और उसी गुफाकी राहसे बाहर निकल कर गङ्गादेवीकी शासित कर, उन्हींके किनारे अपना सेनाका पड़ाव डाल दिया ।

गङ्गानदीके किनारे रहनेवाले, बारह योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े सन्धुके बकरवाले नौ नद्यानोंकी म्यामांने अपने पुण्य-प्रतापसे जलस्रोत कर लिया । उन नद्योके नाम इस प्रकार हैं :— १. नैसर्ग, २. पारसु-र, ३. सिन्धु, ४. सारवत्तक, ५. महा-रघ, ६. कण्ड, ७. महाकण्ड, ८. मागध, और ९. गन्धक । इन नद्यो विधियोंने क्या क्या होता है, क्या कर नी क्या चले होते हैं—इसे विचारने स्वयं-वार और नमके निवेद्यका मनुष्य होता है । इनमें सब प्रकारके जलस्रोतोंके बँडकों जलिन होता है । सोमके नद्यो, सिन्धु, इन्धुके जल अर्थात् अलङ्कारोंका मनुष्य होता है । सोमके बँडको रक्त जल होता है । सोमके बँडको रक्त जल दाहक मणों, जलों, को उत्पत्ति होता है । जल बलविधिसे जलवाले—भूत, नासिक, अन्तराका इत्येता है । अन्तर्गत अन्तर्निधिसे सोम,

चाँदी, लोहा, मणि और प्रयालोंको उत्पत्ति होती है । भाठवीं माणव्य निधिमें समस्त युद्ध-नीति, समग्र आयुध और वीरोंके योग्य वस्त्रआदि समूह होता है । और नवीं शंखक-निधिमें सब तरहके याजों और काव्य, नाट और नाटकोंकी विधि होती है । प्रत्येक निधिके एक फल्योपमकी आयुषाँ और उसी निधिके नामसे प्रसिद्ध हजार-हजार देवता अधिष्ठाता होते हैं । निधानोंको स्वाधीन कर, चक्रीने गङ्गाके पूर्वोप तटके प्रदेशको भी इसी तरह धरमें कर लिया । इस प्रकार स्वामीने भारतके छहों जण पर आधिपत्य विस्तार कर, सब दिशाओंको जीतकर अपने हस्तिनापुर नगरमें बड़ी धूम-धामसे प्रवेश किया । इसके बाद बत्तीस हजार मुकुटधारी राजाओंने चारह वर्ष पर्यन्त स्वामीके चक्रवर्त्तीके अभिषेकक महोत्सव मनाया । चारह वर्ष बाद महोत्सवकी समाप्ति होनेपर प्रत्येक राजाने स्वामीको बहुत सा धन दिया और साथ ही दो-दो कन्याएँ भी दीं । इस तरह स्वामीको रुप और लावण्यसे शोभित देवाङ्गनाके समान चौंसठ हजार पत्नियाँ हाँ गयीं । प्रभुके सेनापति आदि चौदहों रत्न हजार-हजार पक्षोंसे अधिष्ठित थे । उनके चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, और इतने ही शस्त्रोंसे भरे हुए ध्वजाङ्कित रथ भी थे । उनके परम समृद्धिशाली नगरोंकी संख्या बहत्तर हजार थी । उनके १६ करोड़ गाँव और इतनेही पैदल सिपाही थे पच्चीस हजार बैरा और इतनेही राजागण उनके अधीन थे । बीस हजार पच्चीस नाटक और रत्नोंको ज्ञानें और अङ्गतालीस हजार नगर उनके अधीन थे । इस प्रकार बहुत बड़ी समृद्धि पाकर, चक्रवर्त्तीकी उपाधि प्राप्त कर, सुख भोगते हुए स्वामीने पच्चीस हजार वर्ष पिता दिये ।

एक समयको बात है, कि ब्रह्मदेवलोकके अरिष्ट नामक प्रतरमें रहनेवाले सारस्वत आदि लोकान्तिक देवोंके आसन हिल गये । उसी समय भवविज्ञानसे प्रभुकी दीक्षाका समय आया जानकर वे मनुष्य-लोकमें आये और बन्धो-जनोंकी भाँति जप-जपकी ध्वनि करते हुए इन्होंने प्रभुकी इस प्रकार बिनती की,—“हे प्रभु ! क्रोध प्राप्तकर

धर्मका प्रवर्तन करो ।” यह सुनकर प्रभुने भी जान लिया कि मैत्रे
दोषाका समय आ गया । उसी समयसे एक वर्षतक उन्होंने याचकोंको
मुहमांगा दान दिया और चक्रायुध नामक अपने पुत्रको राज्यपर बैठा-
कर दोषा प्रहम करनेको उत्सुक हुए । उसी समय सब देवेंद्रोंके
भासन कांप उठे और वे भी श्रीशान्तिनाथके दोषा-कल्याणकरने आये ।
इसके बाद उग्र-चंवरसे सुशोभित प्रभु सूर्यार्थ नामकी शिविका (पालकी)
पर सवार हुए । उस शिविकाको पहले अनुष्मोनि, निरानुरेन्द्रोनि, अनुरेन्द्रोनि,
गरुडेंद्रोनि तथा नागेन्द्रोनि डोया । पूरपने देव, इक्ष्वाकुने अनुर, पद्मिनीने
गरुड और उत्तरने नागकुमार उस शिविकाको डोये चले गये ।
भगवानके आगे-आगे नट लोग नाटक करते चले गये, नागध लोग
जय-जय शब्द कर रहे थे, और कितनेही अनुष्म प्रभुके ऐश्वर्यादिक
सद्गुणोंको अनेक उन्धों और यत्न-प्रयत्नोंसे वर्णन करते चले जा रहे
थे । कितनेही लोग मृदङ्ग, सिंघा आदि बाजे ऊँचे स्वरसे बजा रहे
थे । हाहा और हुह नामके देव गन्धर्व सातों स्वरों, तानों म्रनों, तानों
मूर्च्छनाओं, लय और माशक सहित ध्रुव सङ्गीत गान कर रहे थे ।
रम्भा, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका और सुकेतिका प्रभुके आगे-आगे हाव-
भाव और विलासके साथ मनोहर नृत्य कर रही थीं । हाव-भावादि
लक्षण इस प्रकार होते हैं—हाव भङ्गको चेष्टाको कहते हैं और भाव
चित्तसे उत्पन्न होता है । विलास भाँषोसे उत्पन्न होता है और विघ्न
भृङ्गतिसे उत्पन्न होता है ।

इस प्रकारके साथ सामानके साथ मन्द-मन्द गतिसे बगरके बाहर
निकलकर, प्रभु सहस्रावतन बानक उद्यानमें आकर शिविकासे उतर
रहे और सब आनन्दियोंको उतार कर, हाड़ी-मूँठ और तिरके हाव
गतिसे मोच लिये । उन चेष्टाको इन्द्रे भरने बरके गंजने
भूम-धमसे शर-सागरने डे प्रकर हाव दिया ।
कान-पुसुसांधे उर लट्ठन नारानी-हृदये
हाव, तिलोको-वन्स्वार कर उर-

तप करते हुए, हजार राजाओंके साथ सर्वविरति-सामायिकका पाठ करते हुए, चारित्र्य ग्रहण कर लिया ।

इसके बाद प्रभुने वहाँसे विहार किया । मार्गमें देवों, मनुष्यों और तिर्यञ्चोंका उपसर्ग सहन करते हुए श्रीजिनेश्वर पारणके दिन एक ग्राममें आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने सुमित्र नामक गृहस्थके घर पारणा किया । श्रीजिनेश्वरको तीन छान तो गर्भमें ही उत्पन्न हो चुके थे । अथके दीक्षा लेनेके बाद चौथा मनःपर्यवसान भी उत्पन्न हो आया । इस प्रकार चारों छानके धारण करनेवाले स्वामी पुर, ग्राम और आकर आदि स्थानोंमें मौनावलम्बन किये हुए विचरण करने लगे । इस प्रकार आठ महीनेका छत्रस्थपर्यायपालन कर, पृथ्वीमण्डल पर विहार करते-फिरते हुए जगद्गुरु हस्तिनापुरके सहस्राश्रम नामक उद्यानमें पधारे और पत्रपुष्पादिसे युक्त नन्दिवृक्षके नीचे कायोत्सर्ग किये हुए ठिक रहे । यहाँ छटतप कर, श्रेष्ठ शुकृध्यान करते हुए प्रभुको, पीप-शुशल नवमीके दिन, जब चन्द्रमा भरणी नक्षत्रमें था, तब चारों घातीकर्मोंका क्षय हो जानेके कारण निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ।

उसी समय आसन काँपनेसे प्रभुके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका हाल मालूमकर, चारों निकायके देवगण वहाँ आये और श्रीजिनेश्वरके लिए सुन्दर समवसरणकी रचना की । उन्होंने पहले हवा खटाकर एक योजन प्रमाण पृथ्वीसे भग्नु पुद्गलोंको दूर किया । इसके बाद गन्धोदककी वृष्टि कर उन्होंने धूलकी शान्ति कर दी । उनके पश्चात् अन्तर-देवोंने मणिरत्नमय भूषीठकी रचना की और उसपर घुटने बराबर फूलोंकी घर्पा कर डाली । उस पर वैमानिक देवोंने भीतरका रत्नमय गढ़ बनाया, जिसके कंगूरे मणियोंके बने हुए थे । इसके बाद ज्योतिषी देशोंने रत्नोंके कंगूरोंवाली सुवर्णमय गढ़ तैयार किया । तदनन्तर भुवनपति देवताओंने एक तीसरा सुनहरे कंगूरोंवाला चाँदीका गढ़ रचा । प्रत्येक गढ़में तोरण सहित चार-चार दरवाजे लगे । पहले गढ़में स्वामीके शरीरसे बारहगुना ऊँचा अशोक-वृक्ष बनाया गया ।



सहस्राभ्रवन नानक उद्यानमें पजारे और पत्रपुष्पादिते युक्त नान्दिहृत्तके नांचे
कायोत्सर्ग किये हुए टिक रहे । (पृष्ठ २८६)

स्वामीके केवलज्ञान उत्पन्न होनेका समाचार कह सुनाया । वह चक्रायुधने हर्षित होकर उस उचित इनाम दिया और बड़े साथ उद्यानमें चले आये । तदनन्तर विधि-पूर्वक समवसरणमें श्री जिनेन्द्रकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, उन्हें प्रणाम और स्तुति दे दोनों हाथ जोड़े हुए उचित स्थान पर बैठ रहे । उस घान्ने मधुक्षीराधध-लब्धिवाली तथा पेंतीस अतिशयवाली घाणीमें का देशना कह सुनायी—उसीके साथ उन्होंने चक्रायुधको उद्देशकर कहा,—

“हे राजन् ! तुमने अपने बाहुयलसे बाहरी शत्रुओंको जीत लिया । परन्तु शरीरके अन्दर रहनेवाली पाँचों इन्द्रियोंको—जो बड़े भारी शत्रु हैं—नहीं जीता । इसीसे उनके शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श भाग्य विषय बढ़े-बढ़े भनर्ध करते हैं । देखो—शिकारीके संगीतको सुनने लिये कान खड़े किये हुए हरिणकी जान, इसी कर्णेन्द्रियके घशमें होनेके कारण चली जाती है । पतङ्ग, चक्षुःन्द्रियको घशमें नहीं रखनेके कारण दीप-शिखाको सोना समझकर तत्काल उसमें कूद कर मर जाते हैं । मांसके टुकड़ेका रस चखनेमें भूली हुई मछली, रसनेन्द्रियके घशमें होकर, अगाध जलमें रहने पर भी मछुणके जालमें फँस जाती है । हाथीके मद्दकी सुगन्धसे लुब्ध हुए भीरे, घ्राणेन्द्रियके घशमें न होनेके कारण, मरणको प्राप्त होते हैं और स्पर्शेन्द्रियके घशमें पड़ा हुआ हाथी पराधीनताके दुःखोंमें भा पड़ता है । हस्तिनीके शरीरका स्पर्श करनेमें भूला हुआ हाथी यन्धन तथा तीक्ष्ण भङ्गुराके प्रहारको सहन करता है । जो सत्पुरुष होते हैं, वे इन विषयोंको तत्काल त्याग देते हैं । पूर्व समयमें अपनी प्रियाका पेसा स्वरूप देखकर गुणधर्मकुमारने विषयोंका त्याग कर दिया था ।”

यह सुन, चक्रायुध राजाने, भक्तिसे नम्र होकर, स्वामीसे पूछा,—

“हे भगवन् ! वह गुणधर्मकुमार कौन थे ? और उन्होंने किस प्रकार विषयोंका त्याग किया था ? इसकी कथा सुनाकर—कह सुनाइये ।”

इस पर धीजिनाधीशने कहा,—“सुनो,—

गुणधर्म कुमारकी कथा

इसी भरत-क्षेत्रमें शौर्यपुर नामका एक नगर है । उसमें संसार-प्रसिद्ध राजा दृढधर्म राज्य करते थे । उनकी छोका नाम शील-शालिनी था, जो यथानाम तथा गुणकी कहावतको सच साधित कर रही थी । इन्हींके गर्भसे राजाके गुणधर्म नामक एक राजकुमार उत्पन्न हुए थे । क्रमशः राजकुमार बाल्यावस्थाको पारकर, कलाभ्यास करनेमें लगे और कुछही दिनोंमें यहत्तर कलाओंमें निपुण होकर युवावस्थाको प्राप्त हुए । रूप, लावण्य और गुणके कारण वे जगत्को आनन्द देनेवाले बन गये । कुमार बड़े ही भान्यशाली, सरल-स्वभाव, शूर-वीर, अपूर्व भाषण करने-वाले, प्रिय वचन बोलनेवाले, दृढ़ मैत्रीवाले और मनोहर रूपवाले—अर्थात् सर्वगुणसम्पन्न—हो गये ।

वसन्तपुर नामक नगरमें ईशानचन्द्र राजाके कनकवती नामकी एक अति रूपवती पुत्री थी । जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुई, तब राजाने उसके लिये स्वयंवर रचाया । स्वयंवर मण्डपमें गुणधर्म कुमार तथा अन्यान्य बहुतसे राजा और राजकुमार आये । सब राजाओंको रहनेके लिये महल दिये गये । एक दिन गुणधर्म कुमार स्वयंवर-मण्डप देखने गये । वहाँ राजकुमारी कनकवती भी आयी हुई थी । राजकुमारोंने कुमारको और कुमारने राजकुमारीको देख लिया । कुमारने उसकी नज़रोंसे ही समझ लिया, कि वह उन पर अनुरक्त हैं । इसके बाद वह राजकुमारी आनन्दसे कुमारकी ओर देखता हुई अपने घर चली गयी । कुमार भी परिवार सहित अपने ऊँरे पर चले आये । इसके बाद घर पहुँचकर कुमारने कुमारके पास एक दासोंको भेजा, उसने कुमारके पास आकर उन्हें एक चित्रपट दिया । उसमें कुमारने एक राजदंतिनीकी विव्र अङ्कित हुआ देखा । साधवी उसके नीचे यह श्लोक भी लिखा हुआ देखा:—

‘आशी दन्ते प्रिये मानुरागाश्रमौ कलहंमिका ।

पुनस्तद्व्येनं शीघ्रं, वाञ्छत्येव वरास्यहो ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘जिस दिन पहले यहल इस राजहंसीने अपने प्राणप्यारे-
को देखा, उसी दिनसे यह उनपर अनुराग करने लगी । इसी लिये
अब यह बेचारी फिर उनके दर्शनकी इच्छा कर रही है ।

यह पढ़कर कुमारने उसी चित्रपट पर हंसका चित्र अङ्कित कर उसके
नीचे यह श्लोक लिख दिया,—

“कलहंमोऽप्यसौ सधु, क्षणं दृष्ट्वाऽनुरागवान् ।

पुनरेव प्रियां द्रष्टुमहोवाञ्छत्यनारतम् ॥ २ ॥”

“हे सुन्दर भौरौताली ! यह राजहंस भी क्षण भरके लिये प्रिया-
को देखकर अनुरागवान् हो गया है । इसी लिये अब यह फिर निर-
न्तर प्रियाको देखनेकी इच्छा करता है ।’

इस प्रकार लिखकर कुमारने वह चित्रपट दासीको लौटा दिया ।
इसके बाद कुमारीके दिये हुए ताम्बूल, विलेपन और सुगन्धित पुष्प
आदि लाकर उस दासीने कुमारको दिये । कुमारने उन्हें हाथमें ले,
फूलोंको सिरपर चढ़ाया, ताम्बूलको खा लिया और विलेपनको शरीरमें
लगा लिया । तदनन्तर कुमारने प्रसन्न होकर उस दासीको एक हार
हनाममें दिया । हारको लेकर दासीने कहा,—“हे कुमार ! राजकुमारीका
संदेश सुनो ।” इसपर कुमारने उस स्थानसे लोगोंको हटाकर वहाँ
एकान्त कर दिया और दासीकी बातको सावधानीके साथ सुननेके
लिये तैयार हो गये । दासीने कहा,—“राजकुमारीने तुम्हें कहला
भेजा है, कि मैं कल सवेरे तुम्हारे गलेमें जयमाला डालूंगी ; पर मेरा
पाणिग्रहण करनेके बाद बहुत दिनों तक तुम्हें चिपय-सेवन नहीं करना
होगा ।” यह सुन, कुमारने उस बातको स्वीकार कर लिया । दासी-
ने यह बात जाकर राजकुमारीको कह सुनायी । सुनकर वह मन-हो-
मन यही सन्तुष्ट हुई ।

प्रातःकाल स्वयंवर-मण्डपमें हजारों राजा एकत्र हुए। उसी समय सुधासूतपर बैठे हुई राजकुमारी वहाँ वा पहुँची और सब राजाओंको देख-भाल कर गुणधर्मकुमारके गलेमें वर-माला डाल दी। तब ईशानचन्द्र राजाने और सब राजाओंको सम्मान सहित विदा किया तथा गुणधर्मकुमारके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। इसके बाद भृशुरकी आज्ञा लेकर गुणधर्मकुमार अपनी पत्नीके साथ नरने नगरको आये और हाँकी एक अच्छेसे महलमें रखकर आप दूसरे महलमें चले गये।

एक दिन कुमार रानीके पास बैठे हुए थे। इसी समय उत्तने कुमारसे पूछा,—“हे स्वामिन् ! एकध प्रहेलिका (चुर्भानल-पहेली) दुध्याओ ।” तब राजकुमारने कहा,—“हे प्रिये ! तुनो—

“स्वप्ने जाता उसे स्वर्ग, पाति तेव न पूरति ।

वनप्रतापिनो निम्नं, वद छन्दरि ! क न्यत्तो ! ॥ १ ॥”

अर्थात्— जो स्वप्नमें तो उतान्नु हुई है; पर जड़ने नननाने दंगने जाती-जाती है और इतनेपर भी जड़ने भरती नहीं है (डूबती नहीं है); तापही जो लोगोही तारनेवाली है, वह नैनलो चंघ है, तो हे छन्दरि ! बतलाओ ।”

यह सुनकर कनकवर्तने विचार कर कहा,—“नौका”। इसके बाद उत्तने भी एक पहेली पूछी,—

“नपोधमताकन्ता, तन्वस्तु गुणनमुता ।

नाम्बन्धतनारुदा, क प्रपात्यवनां विना ॥ १ ॥”

अर्थात्—“नपोधरके * नामने न्ति (कुकी हुई), वनचे गरीरकाचो, गुणने : पुल सेना नैननां चंघ है, जो गुणके हन्वेर चडहर जाती है ; पर वह नां नहीं है ।”

कुमारने इसके उत्तरने कहा,—“बावाकृति (काँवर) ।”

इसी प्रकार कुछ देर तक उसके साथ हँसी-दिल्लगी कर, गुणधर्म-कुमार अपने घर माये और स्नान, भोजन, अंग-लेप आदि करके शान्ति-पूर्वक अपनी जगह पर बैठे हुए थे, इसी समय प्रतिहारने आकर कहा,—“हे स्वामी ! आपके महलके दरवाज़ेपर एक साधु आपके दरवाज़ेकी इच्छासे आया हुआ है । यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उसे भीतर बुला लाऊँ ।” कुमारने कहा,—“बुला लाओ ।” यह सुन, प्रतिहार उस साधुको बुला लाया । कुमारने साधुका बड़े चिनयके साथ स्वागत किया । सच है, कुलीन मनुष्योंका यही स्वभाव है । कहा है,—

‘को चिन्तइ मयूरं, गई च को कुम्हइ रायईसायं ।

को कुवलपाख गंधे, रिणयं च कुमपमूपाखं ॥ १ ॥’

अर्थात्—“मयूरको कौन चित्रित करता है ? राजठसोंको मनोहर गति किसने सिललाई ? कमलमें सुगन्ध किसने पैदा की ? और त्रेण कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यको गिनयी कौन बनाता है ?”—अर्थात् यह सब स्वभावमें ही होता है ।

कुमारने उसे आसन दिया, पर वह अपने काष्ठासनपर ही बैठ रहा । इसके बाद राजकुमारने उसे प्रणाम कर उससे यहाँ आनेका कारण पूछा । इसपर उसने कहा,—“हे भद्र ! मेरे भाचार्य ने अपने मुँह आपके पास आपको बुला लानेके लिये भेजा है । उनकी आज्ञासे क्या काम है, यह मैं नहीं जानता ।” यह सुन, कुमारने पूछा,—“हे मुनि ! मेरे आचार्य कहाँ है ?” उसने कहा,—“वे नगरके बाहर एक स्थानमें टिके हुए हैं ।” कुमारने कहा,—“मैं प्रातः काल उनके पास जाऊँगा ।” यह सुन, वह तपस्वी ‘बहुत भयंकर’ कहकर अपने स्थानको छोटा गया । इसी समय कालका दान करानेवाले अधिकारी पुरुषने इस प्रकार कहा,

‘प्रथम प्राच्याह्निक पूजे, स्नानान्ते शिष्यव च ।

नवरात्रा च द्वात्रिंशत् च द्वात्रिंशत् दिवाकरः ॥ २ ॥’

अर्थात्—“अहो ! यह सूर्य पहले उदयको प्राप्त हो, अपने प्रतापका विस्तार कर, इस समय तेजहीन होकर अस्तावलको जारहा है ।”

यह सुन, कुमार सन्ध्याकालके कृत्य कर, सुष्रुनिद्रामें रात बिता दी । प्रातःकाल काल-निवेदकने फिर कहा,—

“निहतप्रतिपक्षोऽसौ, सर्वेषामुपकारकृत् ।

उदयं याति तीग्नान्शु—रन्योऽप्येवं प्रतापवान् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“अन्धकार—रूपी सत्रुका नाश करनेवाला और सबका उपकार करनेवाला यह सूर्य उदयको प्राप्त हो रहा है । इसी प्रकार दूसरे लोग भी, जो प्रतापी होते हैं, उदयको प्राप्त होते हैं ।”

उसके ऐसे वचन सुन, गुणधर्मकुमार प्रातःकालके कृत्य कर, परिवार सहित भैरवाचार्यके पास आये । वहाँ बाघके चमड़ेपर बैठे हुए योगीको देखकर कुमारने पृथ्वीमें माथा टेककर भक्ति-पूर्वक उनकी नमस्कार किया । उसी समय योगीन्द्रने बड़े आदरके साथ उन्हें आसन दिखलाते हुए कहा,—“तुम उसी पर बैठो ।” उनके ऐसा कहने पर भी कुमारने विनयके साथ कहा,—“हे पूज्य ! मेरे लिये यह उचित नहीं है, कि मैं गुरुके समान आसन पर बैठूँ ।” यह कह, अपने सेवकके उत्तरीय चरित्रपर बैठते हुए उन्होंने कहा,—“हे प्रभो ! आपने इस नगरमें आकर मुझे कृतार्थ कर दिया ।” यह सुन, योगीन्द्रने कहा,—“हे कुमार ! तुम मेरे सब प्रकारसे माननीय हो ; परन्तु मैं अकिञ्चन मनुष्य ठहरा, अतएव किस प्रकार तुम्हारा स्वागत सत्कार करूँ ?” यह सुन कुमारने कहा,—“हे पूज्य ! आपका आशीर्वादही मेरा सत्कार है । आपके दर्शनोंसे ही मेरे सारे मनोरथ सिद्ध हो गये ।” यह सुन योगीन्द्रने फिर कहा,—“हे कुमार ! तुमने बहुत ही ठीक कहा ; पर लोकोक्ति तो यही कहती है, कि—

“भक्तिः प्रेम प्रियालापः, सम्मानं विनयस्तथा ।

प्रदानेन बिना लोके, सर्वमेतन्न शोभते ॥१॥

अर्थात्—“भक्ति, प्रेम, प्रियवचन, सम्मान और दानके दान बिना लोकमें कोई शोभित नहीं होता ।”

यह सुन, कुमारने फिर कहा,—“महाराज ! आप अपनी इयादृष्टिसे मुझे देखें और सम्यक् प्रकारसे मुझे भावा प्रदान करें, वस यही आपका बड़ा भारी दान है ।” यह सुन, योगीने कहा,—“हे कुमार ! मेरे पास एक बड़ा ही उत्तम मंत्र है । उसका मैंने आठ वर्ष तक जप किया है । इसलिये यदि एक दिन रात भर तुम विघ्नोंका निवारण करनेके लिये तत्पर होओ, तो मेरा सारा परिश्रम सफल हो जाये ।” यह सुन, कुमारने कहा,—“हे प्रभु ! वह काम मुझे किसदिन करना होगा ?” योगीने कहा,—“हे कुमार ! तुम कृष्ण चतुर्दशीके दिन अकेले रातके समय खड्ग लिये हुए स्मशानमें आओ । मैं वहाँ अपने अन्य तीन शिष्योंके साथ मौजूद रहूँगा । यह सुन, कुमारने कहा,—“बहुत अच्छा ।” और अपने घर चले आये ।

क्रमशः कृष्ण चतुर्दशी आ पहुँची । उस दिन रातके समय अकेले ही कुमार खड्ग लिये हुए स्मशान-भूमिमें आ पहुँचे । वहाँ पहुँचनेपर योगीने उनसे कहा,—“हे कुमार ! रातको भय उत्पन्न होगा, इसलिये तुम मेरी और इन उत्तर-साधकोंकी रक्षा करना ।” यह सुन, कुमारने कहा,—“हे योगीन्द्र ! आप स्वस्थ चित्तसे मन्त्रकी साधना कीजिये । मेरे रक्षक रहते हुए आपके कार्यमें कौन विघ्न उत्पन्न कर सकता है ?” इसके बाद योगीने एक मण्डप बना कर उसमें एक मुर्दा ला रखा और उसके मुँहमें आग डाल, होम किया । योगी होम कर ही रहे थे, कि इसी समय सब दिशाओंको गुँजाती, आसमानको फाड़ती और दुनियाँके कान बहरे करती हुई एक बड़ी भारी कड़ाकेकी भावाज पैदा हुई । इसी समय अकस्मात् ज़मीन फट गयी और उसके अन्दरसे एक भयङ्कर और यमराजकासा विकराल पुरुष प्रकट होकर बोला,—“रे पापी ! रे दिव्य स्त्रीका अभिलाषी ! मैं मेघनाद नामका क्षेत्रपाल यहाँ

नहीं है। यह क्या तुम्हें नहीं मालूम है? तू मेरी पूजा किये बिना हो नन्व सिद्ध करना चाहता है? तबपर तूने इस सोपे-सादे गज-कुमारको भी धोखेमें ला रखा है।” यह कह, उस क्षेत्राधिपतिने उसे मार डालनेकी इच्छासे सिंहाद किया। उसे चुनते ही योगोंके तानों चले पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देख, कुमारने क्षेत्राधिपतिसे कहा,—“अरे! तू धर्म क्यों गर्जन कर रहा है? यदि तुम्हें शक्ति हो, तो पहले मेरे साथ युद्ध कर।” यह कह, उसे शस्त्र-रहित देख कर, कुमारने भी करने हाथसे खड़ग फेंक दिया। इसके बाद दोनों प्रचण्ड भुज-दण्डसे युद्ध करने लगे। अन्तमें युद्ध करते हुए बलवान कुमारने उस क्षेत्र-पालको अपने पाहुनसे परास्त कर दिया। इससे प्रसन्न होकर उसने कहा,—“हे महाबल ! मैं तुमसे हार गया और तुम्हारे साहसको देख-कर प्रसन्न हो गया हूँ, इसलिये तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, मुझसे मांगो।” यह सुन, कुमारने उसे अपने भुजवन्दनसे बल्ला कर कहा,—“यदि तूने मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो इस योगोंकी इच्छा पूरी कर दो।”

यह सुन, क्षेत्रपतिने कहा,—“इच्छित फलको देनेवाला यह महा-नन्व तो तुम्हारे प्रभावसे इसे सिद्ध हो हो गया है। अब तूने कुछ अपनी इच्छित वस्तु मांगो, जिसमें मैं तुम्हें दूँ; क्योंकि देवताका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता।” यह सुन, कुमारने कहा,—“यदि ऐसा बात है, तो तूने ऐसा कर दो, जिससे मेरी पत्नी कनकवती मेरे वशमें हो जाये।” यह सुन, क्षेत्रपतिने ज्ञानसे उत्तका स्मरण कर कहा,—“वह स्त्री तुम्हारे वशकी हो जायेगी और तूने मेरे प्रभावसे अपनी मनचाही कर लकी।” इस प्रकार उसे वर-दान देकर वह क्षेत्रपाल अदृश्य हो गया। इसके बाद नन्वको सिद्धि कर, उस योगान्दने कुमारको प्रशंसा करते हुए कहा,—“हे कुमार ! तूने समय पड़ने पर मुझे याद करना।” यह कह, योगी अपने शिष्योंके साथ अपने स्थानको चले गये। इसके बाद अपना शरीर मार्जन कर घर आये और वीरोंका याना उतारकर सो रहे।

दूसरे दिन, रातका पहला पहर बीतने पर कुमार भद्रश्य रूप (जो दूसरेको न दिखाई दे) बनाये अपनी पत्नी कनकवतीके महलोंमें भाषे । उस समय कनकवती अपनी दो दासियोंके साथ बैठी बातें कर रही थी । बातों-ही-बातोंमें उसने दासियोंसे पूछा,—“हे सखियो ! इस समय कितनी रात बीती होगी ?” वे बोलीं,—“अभी दो पहर रात नहीं बीती है । स्वामिनी ! यहाँ जानेका समय हो चला है ।” यह सुन, कनकवतीने स्नान कर, अंगोंपर विलेपन लगाया और दिव्य वस्त्र पहन, बाठ-की-बातमें देवगृहके समान एक सुन्दर विमान बना कर उसीपर दासियोंके साथ सवार हो गयी । इसके बाद जब वह जानेको तैयार हुई, तब उसका यह सब बनाव-सिंघार देख, आश्चर्यमें पड़कर गुणधर्मकुमारने सोचा,—“ये ! इस स्त्रीने विद्याधरियोंके समान विमान कैसे बना लिया ? और इस विमान पर चढ़ कर इतनी रात गये कहाँ चली जा रही है ? अथवा इस सोच-विचारसे मतलब क्या है ? मैं भी इसी तरह इसकी नज़रोंसे छिपा हुआ इसके साथ-साथ जाऊँ और चलकर देखूँ, कि यह कहाँ जाती है और क्या करती है ?” यही सोचकर कुमार भद्रश्य-रूपसे उसी विमानके एक कोनेमें कढ़ बैठे और साथ-साथ चल पड़े । वह विमान उत्तर दिशामें बढ़ी दूर जाकर नीचे उतरा । वहाँ एक बड़े भारी सरोवरके पास एक अशोक-वन था, जिसमें एक विद्याधर रहता था । कुमारने उसको देख लिया । कुमारकी पत्नी कनकवती विमानसे नीचे उतर, उस विद्याधरको प्रणाम कर, उसके पास बैठ रही । इतनेमें और भी तीन कन्याएँ विमानोंपर चढ़ी हुई वहाँ आयीं और उस विद्याधरको प्रणाम कर, उसके पास बैठ रही । इसके बाद और भी कितने ही विद्याधर वहाँ आ पहुँचे ।

उस अशोक वनके ईशानकोणमें श्रीयुगादि जितेन्द्रका मनोहर और विशाल चैत्य था । उस मन्दिरकी सीढ़ियाँ रत्नों और सुवर्णकी थीं, जिनसे वह मन्दिर देव-विमानकी तरह शोभित हो रहा था । घोड़ी

इसके बाद वह सारी नब्बली उसी मन्दिरमें चली गयी । वहाँ विष्णु-धरोनि जिनेश्वरका स्नानमहोत्सव किया । इसके बाद विष्णुधरोनि स्नानने कहा,—“भाज नाननेही धारो कितकी है ?” यह सुनते ही नत्काल कनकवती खड़ी हो गयी और मोड़नोंको घराबर बांधकर, रङ्गनन्दनमें प्रवेश कर, हाव-भावके साथ मनोहर नृत्य करने लगी । अन्य तांनों कन्याओंमेंसे एक यौन बजाने लगी, दूसरी बांसरी बजाने लगी और तीसरी ताल देने लगी । उस समय गुणधर्मकुमार मद्रस्य करते एक स्थानमें छोड़े-छड़े आश्चर्यके साथ यह सब तमाशा देखने लगे । इतनेमें नाचती हुई कनकवतीकी करघनी टूट गयी और उसमें लगे हुए सोनेके घुँघरूकी एक लड़ी टूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, जिसे कुमारने तत्काल उठाकर अपने पास रख लिया । नाच खतम होनेपर कनकवतीने उसे धर-उधर बहुत दूँदा, पर यह कहीं नहीं मिली । इसके बाद सब अपने-अपने घर चले गये । कनकवती भी अपनी दासियोंके साथ घर आयी । उसके साथ-ही-साथ कुमार भी छिपे-छिपे घर आये । कनकवतीने घर आकर विमानका लोप कर दिया । इसके बाद रातके पिछले पहर अपने घर आकर कुमार सो रहे ।

इसके बाद दूसरे दिन सबेरे ही अपने नित्र नखी-पुत्र नित्रतागरके हाथमें घुँघरूकी वह लड़ी देकर कुमारने कहा,—“हे नित्र ! यह घुँघरू-का दाना तुम मनय पड़ने पर मेरी छाँके हाथमें देना ।” इस प्रकार उसे सिखला पड़ाकर कुमार उसे लिये हुए अपने प्रियाके पास आये । कनकवतीने तुरतही उठकर उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया । कुमार और उनके नित्र उत्तार बैठ रहे । इसके बाद कुमार अपनी छाँके साथ जुमा खेलने लगे । कनकवती जंत गयी । जंतकर बोली,—“प्यारे ! तुम हार गये—अब मुझे कुछ हज़ाना दो ।” यह सुनते ही कुमारने अपने नित्रको और इशारा किया । उसने तुरतही अपने बखले यह घुँघरूकी लड़ी निकाल कर कनकवतीके हाथमें दे दी । उसे देखतेही अचानक होकर कनकवतीने कहा,—“यह तो मेरी है—तुम्हारे पान कैसे

न करमा और प्रतिदिन रातके समय विमानमें बैठकर मेरे पास आकर करना । उसके ऐसा कहने पर भी, मैंने माँ-बापके आज्ञा और कुमारके भनुरागमें पड़कर इनके साथ शादी कर ली । यह मुझे प्यारे हैं और मैं इसकी प्यारी हूँ, इसमें शक नहीं ; पर ये किसी-न-किसी तयारी मेरा धर्मापर जाना जान गये हैं और शायद उन्होंने उस विद्याधरको भी आँखों देख लिया है । अतएव अब मेरे मनमें यह शङ्का हो रही है, कि कौन तो यह विद्याधर मेरे प्राणवल्लभकी जान ले लेगा या मुझे मार डालेगा । सखी ! इसीलिये मैं थड़ी चिन्तामें पड़ गयी हूँ । उसपर मेरी यह गुण-वस्था तो और भी आफ़तका परकाला हो गयी है । मेरा पितृकुल भीरु भयसुरकुल, दोनों ही उत्तम और प्रसिद्ध हैं । इधर दुनियाँमें हा-तरहकी प्रकृतिवाले लोग हैं, जो अघाही-तघाही बका हो करते हैं । इसी साथ बातोंको सोच-सोच कर मैं व्याकुल हुई जाती हूँ ।” उसकी यह बातें सुन, उसकी सखीने कहा,—“सखी ! आज तो तुम यहाँ रह जाओ—मैं अकेली जाकर उससे कहूँगी, कि मेरी सखी की तबियत आज बख़ी नहीं है ।” यह सुन, कनकवतीने कहा,—“हे शुभविचारी ! ऐसा करो ।” यह कह, कनकवतीने विमानको रचना कर, उसे दे दिया । यह स्योंही विमान पर चढ़कर चली, स्योंही गुणधर्मकुमार भी उसके साथ हो लिये । उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया,—“रहो, मैं आज ही उस विद्याधरकी सारी चौकड़ी भुलाये देता हूँ और जोब-खोबई रहनेवाली स्त्रियोंके नाचोंका शौक मिटाये देता हूँ ।”

कमरा यह विमान घनमें पहुँचा । ओचरोंने श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पूरा प्रारम्भ कर दी थी । इतनेमें दाहिना विमानपर चढ़ी हुई पहुँच और नौके उतरकर त्रिनालयमें भायी । कुमार भी छिरे-छिरे सब कुं देकने लगे । इतनेमें एक ओचरने उस हासोसे पूछा,—“आज मानमें देर क्यों हुई और तुम्हारी स्वामिनी कहाँ रह गयी ?” उसने पहलेसे ही मोघा हुआ उत्तर दिया, कि मनुष्य कारणसे मेरी स्वामिनीने आज मुझे ही यहाँ भेजा है । यह गुनने ही ओचरोंके स्वामीने कोयके साथ कहा,—



इसके बाद हो दोनोंमें भयङ्कर युद्ध होने लगा । अन्तमें बलशाली कुमारने मौका पाकर उस विद्याधरका सिर काट डाला और उसकी सारी सेना डर गयी । सबको गुणार्जुनकुमारने मोठे पवनोसे शान्त कर डालस दिया । इसी समय अन्य तीनों युधतिपोंने कहा,—“हे स्वामी ! आज भागने हम लोगोंको इस दुष्ट खेवरके पन्धरेमें छुड़ा दिया !” यह सुन, कुमारने पूछा,—“तुम लोग किस-किसकी लड़कियाँ हो ?” उनमेंसे एकने कहा,—“राजपुरं नामक नगरमें दुलभराज नामके एक राजा है । मैं उसकी पुत्री हूँ, मेरा नाम कमलावती है । इसीके मरके मारे मेने आज्ञाक विवाह करना भी नहीं स्वीकार किया ।” कुमारने पूछा,—“तुम्हारा भय कैसा था ? प्रेमका या क्रोधका ?” यह बातें,—“क्रोधका हो भय था । प्रेमका भला कैसे होता ? क्योंकि एक दिन मे भागने मकानकी छिड़कीपर बैठी हुई थी, यहाँसे यह दुष्ट मुझे हर ले गया । जब यह मेरी छिड़का काट लेनेको तैयार हुआ, तब इसने मुझे इस बातको मान लेनेको मजबूर किया, कि मैं इसकी आज्ञाके बिना विवाह न करूँगी और हर रोज़ रातको इसके पास आया करूँगी । तब इसने कहा, कि तेरी सयारीके लिये मेरी आज्ञासे निरन्तर विमान तैयार हो जाया करेगा । यदि यह बात तुझे स्वीकार हो, तो मैं तुझे छोड़ दूँगा और तेरी जान नहीं रूँगा । उसकी यह बात सुन, मेने प्राणोंके मोहसे इसकी बात स्वीकार कर ली और सौगन्ध खायी । इनके बाद इसने मुझे नाचना सिखाया । इसी तरह इसने और भी तीन राजकुमारियोंको वशमें किया है, पर आज इसे मारकर मायने हम सबको सुखी कर दिया ।” यह सुन, कुमारने उन सबको उनके घर पहुँचा दिया । इनके बाद कुमार उस दासीके साथ विमानपर बैठे हुए मन्त्रो प्रियाके घर आये, उसी समय कनकवती कुमारको देखकर दासोसे पूछ बैठी,—“हे सबो ! मेरे प्राणवशुमे क्या उन दुष्ट विद्याधरकी मार डाला ?” इनके जवाबमें उस दासीने उसमें सारा हाल कह सुनाया । कनकवती मन्त्रे स्वामीकी कड़ी-कड़ी हुई कोछा-

का हाल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई । इसके बाद गुणधर्मकुमार बड़ी देर तक अपनी छोटी बार्ते करते रहे और साधे रात वहीं सोये ।

इसी समय उस विद्याधरके छोटे भाईने क्रोधमें भाकर नौईमें पड़े हुए गुणधर्मकुमारको उठा ले जाकर गम्भीर समुद्रमें डाल दिया और उसको छोटी एक पर्वतपर ले जाकर छोड़ दिया । देवयोगसे कुमारको एक लकड़ीका तबूटा हाथ लग गया, जिसके सहारे वे सात रात बाद समुद्रके किनारे जा पहुँचे । वहाँ उनकी एक तपस्वीसे मुलाकात हुई । उसीके साथ-साथ वे उस तपस्वीके आश्रममें चले आये । वहाँ उन्होंने अपनी छोटी कनकयतीको भी देखा । कुमार कुलपतिको प्रणाम कर उसके पास बैठ गये । तब कुलपतिने पूछा,—“हे भद्र ! क्या यह छोटी तुम्हारी पत्नी है ?” कुमारने कहा,—“हाँ ।” उस तपस्वीने कहा,—“परसों मैं जंगलमें गया हुआ था । वहाँ मैंने इस बालाको तुम्हारे विषांगसे व्याकुल हो, पेड़ोंसे लटक कर जान देनेकी तैयार देखा । उसी समय मैंने इसका पाश छिन्न कर यड़ी-यड़ी मुश्किलोंसे इसकी जान बचायी । इसके बाद मैंने अपने ज्ञानसे तुम्हारे भातेका हाल जान लिया और इसे समझा-बुझकर सन्तुष्ट किया ।” अब कुलपतिने ऐसा कहा, तब कुमार भरती छोटी निडे । इसके बाद वे दोनों छोटी-पुण्य, बड़े आदि के फल खा कर रातके समय उसी निजंन लताय में सा रहे । इसी समय उस खेचरने फिर उन दोनोंको वहाँसे उठा ले जाकर समुद्रमें फेंक दिया । इस बार भी पूर्व-कर्मोंके प्रभावसे दोनोंको एक तबूटा हाथ लग गया, जिसके सहारे वे किनारे पहुँचे और फिर उसी स्थानपर आ गये । उस समय कुमारने कहा,—“ओह ! विधि-विहन्यना किससे जानी नहीं आती । कहा है, कि—

‘कीचरिषं प्रेनगति, नेघोत्थानं नरेन्द्रचितं च ।

विपन्नविधिदिलसिठानि च, को वा रचनोति विशादुन् ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘कोई चरित्र, प्रेनकी गति, नेघकी उत्पत्ति, रचय

मन, और बाम विधाताका विलास भला कौन जान सकता है ;
अर्थात् कोई नहीं जान सकता ।

“सच है, विधि-विलास ऐसा ही हुआ करता है । अथवा, विषयमें भासक चित्तवालोंको विषय प्राप्त होना भी कुछ दुर्लभ नहीं है ।” इसके बाद उन्होंने फिर विचार किया,—“हाँ, उत्तम प्रभावशाले जीव इसी तरह वैराग्य प्राप्त कर, सब परिग्रह छोड़ कर, ममता-रहित होकर निर्मल तपस्या करते हैं ।” गुणधर्मकुमार ऐसा सोच ही रहे थे, कि इतनेमें कनकवतीने कहा,—“स्वामी ! आप इतने पराक्रमी होकर भी क्यों खेद करते हैं ? आज तक आप नीरोग रहते चले आये और आपके किसी अंगमें कोई विकार नहीं है । कहा है, कि—

‘श्रीनोदारो न विदधे, नेकभ्यद्रा कृता मही ।

विषया नोपभुञ्चाथ, प्रकामं विद्यतेऽथ किम् ? ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘दीनोंका उद्धार नहीं किया, पृथ्वीका एकवचन राख नहीं किया, विषयोंको नहीं भोगा, तो फिर अब इनके लिये प्रफुल्लित क्या करना !’

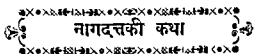
ये दोनों ऐसी-ही-ऐसी बातें कर रहे थे, कि इतनेमें रात हो आयी; परन्तु कुमार, अपनी स्त्रीकी बातें सुन, अपने चित्तमें वैराग्यकी भावना कर रहे थे, इसीलिये उन्हें नींद नहीं आयी । इसी समय यह खेचर फिर वहाँ आ पहुँचा । कुमारने उसे हरा कर जीता ही छोड़ दिया । इसके बाद प्रातः काल होने पर कुमार, कुलपतिको प्रणाम कर, एक नगरमें चले गये । वहाँ याहरकी तरफ एक उद्यानमें गुणरत्न महोदय नामक सूरिको देखकर कुमारने प्रियाके सहित उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया । इसके बाद उनकी मोहकरीणी निद्राका नाश करनेवाली धर्मदेवता सुन, सूरिको प्रणाम कर, एकान्तमें जाकर वैराग्यमें ठहर कुमारने अपनी प्रियासे कहा,—“प्रिये ! अब हमें इन्हीं गुरुजीसे दीक्षा ले लेनी चाहिये ।” यह सुन, विषयोंमें विरक्त नहीं हो चुकनेवाली

एक दिन ये, मैं इन्हींकी माहासे दूर खला गया था, इसीलिये लौटकर उन्हें दूँद रहा हूँ । हे मन्त्र ! मैं तुमसे पूछता हूँ, कि क्या वह स्त्री उनके साथही उनके घर चली गयी ? ” यह सुन, कुमारने कहा,—“ वह तो न जाने कहाँ चली गयी । ” यही जयाय दे, उस आश्रमीको बिदाकर, उन्होंने अपने मनमें सोचा,— “निर्लज्ज स्त्रियाँ उपकार या सरलताके लिहाजसे परामें नहीं भाती । इनको कुल, शौल और मर्यादाका कुछ ज्ञ-
यालनहीं होता । जहाँ तक इन्हें एकान्त नहीं मिलता, समय नहीं मिलता भयया चाहनेयान्ना पुण्य नहीं मिलता, वहीं तक ये सती बनी रहती हैं । नारदकी यह बात बहुत ही ठीक है । ” यही सोचकर उन्होंने पा-
सकेही एक नगरमें उसे उसके मामाके घर रख छोड़ा और उन्हीं मुनी-
न्द्रसे भाकर शोका ले, उग्र तपस्या कर, मायुष्य पूर्ण होनेपर मृत्युको प्राप्त हो, देवलोकमें जा देव हुए तथा वहाँसे ज्युत होकर मनुष्यजन्म पाकर ये मोक्षपदको प्राप्त करेंगे ।

इधर कनकवती मामाके घरसे निकल कर गुणचन्द्र कुमारके घर चलीगयी और उसकी प्यारी बनकर रहने लगी । वहाँ उसकी सौतेलने उसे जहर दे दिया, जिससे वह रीढ़ ध्यानमें मरी और चौधे नरकमें चली गयी । उस नरकसे निकल कर यह चिरकाल तक भय-भ्रमण करती फिरेंगी ।

गुणधर्म—कनकवती-कथा समाप्त ।

भगवान्ने कहा,— “हे राजा ! इसी तरह धिष्य नामक प्रमाद जीवोंको महा दुःखदिया करता है । फिर हे राजन् ! कथायुक्ती प्रमादके धिष्यमें नागदत्तकी कथा प्रसिद्ध है । यह श्रीमहावीर जिनेश्वरके तीर्थमें होनेवाला है, पर मैं तुमसे उसको कथा कहता हूँ । सुनो,—



इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें ही वसन्तपुर नामका एक बड़ा भारी नगर है । किसी समय उसमें समुद्रदत्त और धनुदत्त नामके दो बड़े

भारी सौदागर रहते थे । वे दोनों ही शान्त, सुन्दर शीलवान्, अल्प कषायवान्, सरलचित्त और परस्पर मैत्री रखनेवाले थे । उनका एकही साथ कारबार चलता था । एक जो काम करता दूसरा भी वही काम करने लगता । उनका ऐसाही निश्चय था । एक दिन वे दोनों एक उद्यानमें गये । वहाँ सभानें बैठे हुए वज्रगुप्त नामक मुनिको धर्मदेशना देते देख, उन दोनोंने उन्हें शुद्ध भावसे प्रणाम किया और उनके पास बैठ, धर्म-कथा ध्वज्य कर, साधु-धर्मका प्रतिपालन कर, आयुके अंतमें संलेखना द्वारा मृत्युको प्राप्त हो, स्वर्ग चले गये । वहाँ भी उन दोनों देवोंमें परस्पर ऐसी ही प्रीति बनी रही । एक दिन स्वर्गमें रहतेही समय उन्होंने निश्चय किया, कि हम दोनोंमेंसे जो पहले स्वर्गसे नीचे आयेगा, उसे स्वर्गमें रहनेवाला दूसरा निज धर्ममें स्थापित करेगा । ”

तदनन्तर कुछ समय बाद समुद्रदत्तका जीव स्वर्गसे व्युत हो भरतक्षेत्रके धरा-निवास नामक नगरके सागरदत्त नामक व्यवहारीके घर, उसकी भार्या धनदत्ताकी कोखमें नागकुमार देवताके वरदानसे, पुत्र-रूपसे अवतार ग्रहण किया । समय जानेपर माताने उसे प्रसव किया । मा-बापने उसका नाम नागदत्त रखा । क्रमसे समय पाकर वह बहत्तर कलाओंमें निपुण हुआ और गन्धर्व-कलानें विशेष अनुराग रखने लगा । इसीलिये वह संसारमें गन्धर्व नागदत्तके नामसे विल्यात हो गया । एक दिन वह बीप्सा बजानेमें चतुर और गारुड़ी विद्यामें निपुण पुरुष मित्रोंके साथ नगरके उद्यानमें क्रीड़ा करने गया । इतनेमें स्वर्गमें रहनेवाले वसुदत्तके आवने उसे धर्मकी ओरसे ग्राफ़िल देखकर पूर्वभवमें निश्चय किये हुए सङ्कल्पके अनुसार उसे तरह-तरहसे प्रति-योध दिया, परन्तु अब उसे कितनी तरह योध न हुआ, तब उसने अपने मनमें विचार किया,—“यह बड़ी मौजमें है—पूरी तरह सुखी है । ” इसलिये अब तक यह प्राप्ति-संशयकारी सङ्कल्पमें नहीं पड़ेगा, तबतक धर्ममें प्रवृत्ति नहीं होगा । ” ऐसा विचार कर, वह देव, मुनिवत्त्रिका

भीर रजोहरण लिये रुप मुनिका रूप बनाये, हाथमें साँपकी पिटारी धारण किये, वहीं भा पहुँचा, जहाँ नागदत्त क्रीड़ा कर रहा था । उसी समय पासके ही रास्तेसे उसे जाते देख, नागदत्तने पूछा, — “हे गार्हड़िक ! तुम्हारी इस पिटारीमें क्या है ?” उसने कहा, — “साँप है ।” नागदत्तने कहा, — “तुम अपने साँपोंको बाहर निकालो । मैं तुम्हारे साँपोंके साथ क्रीड़ा करूँगा और तुम मेरे साँपोंके साथ क्रीड़ा करो ।” इसके उत्तरमें उस व्रतधारीने कहा, — “हे भद्र ! तुम मेरे साँपोंके साथ क्रीड़ा करनेकी बात भी न करो ; क्योंकि मेरे साँपोंको देवता भी नहीं छू सकते । फिर तुम मूर्ख बालक होकर मन्त्र या औषधिको जाने बिना ही मेरे साँपोंके साथ किस प्रकार क्रीड़ा करोगे ?” यह सुन, नागदत्तने कहा, — “तुम देखो तो सही, कि मैं किस तरह तुम्हारे साँपोंको ग्रहण करता हूँ । पर पहले तुम मेरे इन साँपोंको तो ग्रहण करो ।” यह सुन उसने कहा, — ‘अच्छा, अपने साँपोंको छोड़ो ।’ नागदत्तने अपने साँपोंको छोड़ दिया, पर ये उसके शरीर पर नहीं चढ़े और एकाध बार चढ़कर डंसा भी तो देवशक्तिके कारण उसके शरीरमें चुँक नहीं व्याप सका । यह देख, नागदत्तने डाहके मारे कहा, — “हे गार्हड़िक ! अब दूर न करो, तुम्हारे पास भी जितने सर्प हों, उन्हें छोड़ दो ।” इसपर देवताने कहा, — “तुम पहले अपने सब स्वजनोंको एकट्ठा कर लो और राजाको साक्षी-रूपमें यहाँ बुलाओ, तो मैं अपने साँपोंको छोड़ूँगा । नहीं तो नहीं ?” नागदत्तने ऐसा ही किया । तब व्रतधारी गार्हड़िकने ऊँचे स्वरसे कहा, — “हे भाइयो ! सावधान होकर मेरी बातें सुनो । यह नागदत्त गन्धर्व मेरे साँपोंके साथ क्रीड़ा करना चाहता है । इसलिये यदि मेरे ये विग्रह इस डंस होंगे, तो आपलोग मुझे दोष न होंगे ।” यह सुनकर नागदत्तको उसके स्वजनोंने मना किया, तो भी उसने नहीं माना । इसी समय गार्हड़िकने अपनी पिटारीमेंसे चार सर्प निकाल कर चारों दिशाओंमें छोड़ दिये और कहा, — “मेरे ये सर्प बड़े क्रूर हैं । इन सर्पोंके स्वरूप मैं तुमसे वर्णन किये देता हूँ सुनो,—

जिला दो । तब उसने कहा,—“यदि यह जीवन भर दुष्कर किया करे, तो यह जी जायेगा । मुझे भी पहले इन सोंपोंने डंसा था । मैंने इनका धिप दूर करनेके लिये निरन्तर जैसी क्रियाएँ की है, वह सुनो—मैं सदा सिर और दाढ़ी-मूँछोंके बाल नोंच देता हूँ, प्रमाणयुक्त श्वेत वस्त्र पहनता हूँ, उपवासादिक विविध प्रकारकी तपस्याएँ करता हूँ, इन तपस्याओंके पारणाके समय भी कृष्ण-सूत्रा भोजन करता हूँ, कभी कण्ठ पर्यन्त भोजन नहीं करता और उबाला हुआ पानी पीता हूँ । भाइयो ! यदि मैं ऐसा न करूँ, तो इनका धिप फिर मेरी देहमें व्याप जाये । साधही मैं कभी घनमें रहता हूँ, कभी पर्वत पर रहता हूँ और कभी सूने घर या स्मशानमें ही रहता हूँ । इसी तरह राग-द्वेष रहित सम्यक् प्रकारसे अनेक परिपहोंका सहन करता हूँ । ऐसा ही करनेसे मेरे धिप नहीं चढ़ने पाता । और जो कोई अल्प आहार करता है, अल्प निद्रा लेता है और अल्प वचन बोलता है, उसके वशमें ही ये सोंपे हो जाते हैं । यही नहीं, देवता भी उसके अधीन हो रहते हैं । इसलिये भाइयो ! अधिक कहनेसे क्या लाभ । यदि यह मेरे कहे मुताबिक रहे, तो जियेगा, नहीं तो अवश्य ही मर जायेगा ।” यह सुन सब मनुष्योंने कहा,—“हे गारुड़िक ! यह भी ऐसा ही करेगा । तुम कुछ ऐसा उपाय कर दो, जिससे विश्वास उत्पन्न हो ।” उनकी ऐसी बात सुन, उस गारुड़िकने एक बड़ा भारी मण्डल खींचा और सब सिद्धोंको प्रणाम कर, सारी महाविद्याओंको नमस्कार कर, इस प्रकारकी पवित्र विद्याका उच्चारण किया,—“सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषायाद्, सर्व अज्ञानान्, सर्व मैधुन और सर्व पतिग्रहको तुम जीते जी सर्वथा त्याग करो ।” इसी दण्डको तीन बार कहनेके बाद उसने अन्तमें ‘स्वाहा’ शब्दका उच्चारण किया, इससे वह धेष्टीपुत्र तुरन्त होशमें आकर उठ बैठा । उसकी विद्याके प्रभावसे जब वह नींदसे जगे हुएकी तरह उठकर खड़ा हुआ, तब उसके स्वप्ननोंने गारुड़िककी कही हुई सब बातें बतला दीं । पर नागवृत्तने उस तरहकी क्रियाएँ

करनेसे इनकार किया और घरकी तरफ चल पड़ा । रास्तेमें जाते-जाते वह फिर बेहोश होकर गिर पड़ा । इस बार भी उसके स्वजनोंकी प्रार्थना सुनकर गारुड़िकने उसकी बेहोशी दूर कर दी । इसी तरह तीसरी बार भी वह बेहोश हुआ और फिर होशमें लाया गया । अचानक उसे दृढ़ निश्चय हो गया और गन्धर्व नागदत्तने उसकी घात मान ली । इसके बाद वह देव उसे जड़ूलमें ले गया और अपना देव-रूप दिखा, उसे पूर्व भवका स्वरूप बतलाया, जिससे नागदत्तको जाति-स्मरण हो आया । वह पूर्व भवका स्मरण कर प्रत्येकबुद्ध मुनि हो गया । इसके बाद देवने उसे प्रणाम कर अपने स्थानकी यात्रा की । इसके अनन्तर वह मुनि, चार कपाय-रूपों-सर्पोंको शरीर-रूपों पिटारीमें बन्दकर, उन्हें बाहर आनेसे रोकने लगा । इस प्रकार मुनि नागदत्त कपायोंको जीत, समग्र कर्मोंका क्षय कर, कितनेही कालके अनन्तर केवल-ज्ञान प्राप्तकर, मोक्षको प्राप्त हुआ ।

इति गन्धर्व-नागदत्त-कथा समाप्त ।

शान्तिनाथ परमात्माने कहा,—“इसी प्रकार चिवेकी जनोंको चाहिये, कि पाँचों प्रकारके प्रमादः त्याग दें तथा चारों प्रकारके धर्म † को अङ्गीकार करें । यह धर्म साधु और धावकके भेदसे दो प्रकारके हैं । इनमें क्षान्ति इत्यादि दस प्रकारके यतिधर्म कहे जाते हैं और धावक-धर्म बारह तरहके हैं । दोनों ही प्रकारके धर्मोंमें पहले सम-कित माना गया है । यह समकित दो तरहका, तीन प्रकारका, चार प्रकारका, पाँच प्रकारका और दस प्रकारका कहा जाता है । इसे सिद्धान्तके अनुसार जानना । और पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत—ये बारह प्रकारके धावकधर्म अनन्त जिनेश्वरोंने पत-लाये हैं । इनमें प्रथम स्थूल प्राणातिपात नामक पहले अणुव्रतकी कथा इस प्रकार है—

* नय, विषय, कषाय, निद्रा और विकृषा ।

† ज्ञान, शील, तप और भाव ।

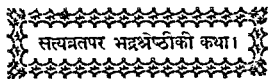
यमपाश-मातङ्गकी कथा

किसी नगरमें यमपाश नामका एक तलारक्षक रहता था । वह जातिका चाण्डाल था । परन्तु कर्मसे चाण्डाल नहीं था । उसी नगरमें वयादि गुणोंसे युक्त नलदाम नामका एक सेठ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था । उसीके गर्भसे उत्पन्न मम्मण नामका एक पुत्र भी उसके था । एक दिन उस नगरके राजाके यहाँ कोई व्यापारी एक घड़ा ही अच्छा घोड़ा ले आया । उसकी परीक्षा करनेके लिये ज्योंही राजा उसपर सवार हुए, त्योंही राजाका कोई शत्रु देव उस घोड़े पर सवारी कर बैठा, जिससे वह घोड़ा आकाशमें उड़ गया और बड़े वेगसे दौड़ता हुआ बड़ी दूर एक वनमें चला गया । वहाँ अकेला पाकर, उस निर्जन वनको देख, भयभीत हो, राजाने उस घोड़ेको छोड़ दिया । वह घोड़ा वहाँका वहाँ गिर कर ढेर हो गया । इसी समय एक मृगराजाके पास आ पहुँचा । राजाको देख, जाति स्मरण द्वारा अपने पूर्व भवका हाल जानकर उस मृगने पृथ्वी पर लिख कर राजाको सूचित किया, कि—“हे राजन् ! मैं पूर्व भवमें आपका देवल नामका वल्लभाभूषणोंकी रक्षा करनेवाला सेवक था । मरते समय आर्चध्यान द्वारा मरण प्राप्त करनेके कारण ही मैं तिर्यच योनिमें मृग हुआ हूँ ।” इस प्रकार अपना हाल सुनाकर उसने प्यासे राजाके आगे-आगे चलकर उन्हें एक जलाशय दिखलाया । वहाँ पहुँचकर राजाने जलपान किया, मुँह धोया और स्वस्थ हुए, इतनेमें राजाकी सेवा भी आ पहुँची । राजा अपने जीवनदाता मृगको साथ लिये हुए अपने नगरमें आये । वहाँ वह मृग राजप्रासादसे लेकर नगरके चौक भादि स्थानोंमें स्वच्छन्द भावसे घिघरण करने लगा । उसे कोई बातोंसे भी दुखी नहीं करता था । कदाचित् वह किसीका कुछ नुकसान

व्याधिसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा था, घूमता-फिरता हुआ स्मशानमें आया और वहाँ टिके हुए मुनिकी बड़ी भक्तिके साथ वन्दना की। उनके प्रभावसे मेरा पुत्र नीरोग हो गया। उसने घर आकर मुझसे यह हाल कहा। यह सुन, कुटुम्ब सहित रोगसे पीड़ित मैं भी वहाँ गया और मुनिकी प्रणाम किया। इसके बाद मैंने धावकधर्म अङ्गीकार कर लिया और जोवञ्चीव पर्यन्त हिंसाका त्याग कर दिया। हे राजन्! उन मुनि-घरने मुझसे अपने प्रतिबोधकी कथा कह सुनायी थी, इसलिये मैं उनका सारा हाल जानता हूँ।" यह सुन, राजाने सन्तुष्ट होकर यम-पाशका सत्कार किया और उसे सारी चाण्डाल-जातिका स्वामी बना दिया। इसके बाद राजाके हुक्मसे दूसरे चाण्डालने मम्मणको फल्ल कर डाला। यमदण्ड अपनी आयु पूरी होनेपर मरकर देवता हो गया।

प्रणतिपात-विरति-सम्बन्धिनी यमपाश-कथा समाप्त ।

दूसरा मृषावाद्-विरमण नामक व्रत है। कन्या, गौ, और मूमिके विषयमें असत्य बोलनेसे परहेज रखना, किसीको घरोहर न मार लेना या झूठी गथाही न देना यही पाँचों मृषावाद्-विरमणके स्वरूप हैं। इसके विषयमें भद्रश्रेष्ठीकी कथा इस प्रकार है:—



इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें क्षिति-प्रतिष्ठित नामक नगर है। उसमें सुबुद्धि और दुर्बुद्धि नामके दो निर्धन बनिये रहते थे। वे दोनों बड़े ही प्रसिद्ध और परस्पर मैत्री रखनेवाले थे। एक बार वे दोनों बहुतसा किराना माल लेकर धन कमानेके लिये परदेशको चले। क्रमशः वे लोग एक बड़े ही पुराने और जीर्ण नगरमें आ पहुँचे। वहाँ वे लाभकी इच्छासे कई दिनोंतक टिके रह गये। एक दिन सुबुद्धि एक दूरे-फूरे मकानमें शीव करनेके लिये बैठा हुआ था, कि इसी समय उसे एक खजाना

सुबुद्धिने कहा—“हे मित्र ! यदि मुझे यह धन हड़प कर लेनेकी ही इच्छा होती, तो मैं पहले तुमसे इसकी चर्चा ही क्यों करता ? तुम खुद ही धोखेबाज़ हो, इसीलिये मुझे भी ऐसा ही समझ रहे हो।” इसी तरह परस्पर भगड़ा करते हुए वे दोनों राजाके पास पहुँचे। वहाँ सबसे पहले दुर्बुद्धिने ही राजासे प्रार्थना की, कि—“हे देव ! मैंने एक जगह गड़ा हुआ धन पाया था। उसे मैंने आपके ही दरसे एक पेड़के नीचे गुप्त रीतिसे गाड़ दिया था, परन्तु इस सुबुद्धिने मुझे खूब छकाया—इसने यह सारा धन वहाँसे उड़ा लिया है। इसलिये हे नरेन्द्र ! आप इसका जैसा उचित हो वैसा न्याय कर दें।” यह सुन, राजाने उससे पूछा,—“इस विषयमें तुम्हारा कोई गवाह भी है या नहीं ?” दुर्बुद्धिने कहा,—“हे स्वामिन् ! और तो कोई गवाह नहीं है, पर मैंने जिस वृक्षके नीचे धन गाड़ा था, वह वृक्षही यदि कह दे, तब तो आप सच मानेंगे न ?” राजाने कहा,—“हाँ, जरूर मानूँगा।” उसने कहा,—“अच्छा तो कलही इस बातकी परीक्षा कर लीजिये इसके बाद राजाने दोनोंकी ज़मानत लेकर उन्हें बिदा कर दिया और वे अपने-अपने घर चले गये। सुबुद्धिने सोचा, “ऐ ! यह दुर्बुद्धि ! ऐसा दुष्कर कार्य किस तरह कर सकेगा ! क्योंकि लोग कहा करते हैं, कि धर्मकी ही जय होती है, अधर्मकी नहीं।” ऐसा विचार कर वह निबिन्त मनसे अपने घर गया।

इधर दुष्टबुद्धिने अपने घर था, कपटका जाल फैलानेके विचारसे अपने पिता भद्र धोष्टीको एकान्तमें बुलाकर कहा,—“हे पिता ! मेरी एक बात सुनो। सारी मुहरें मेरे हाथमें आ गयी हैं। मैं रातके समय झुपकेसे तुम्हें उस वृक्षके कोटरमें ले जाकर रख आऊँगा। सवेरे जब सब लोग इकट्ठे हों, तब तुम कहना, कि सुबुद्धिने ही दुर्बुद्धिको धोखा देकर सब धन ले लिया है। यह सुन उसके पिताने उससे कहा,—“हे पुत्र ! तेरा यह विचार अच्छा नहीं है। तो भी तेरा आग्रह देखकर मैं ऐसा ही करूँगा।” यह सुन, हर्षित होते हुए दुर्बुद्धिने रातके समय झुपकेसे अपने पिताको ले जाकर उसी घट-वृक्षके कोटरमें रख दिया।

प्रतःकाल राजा और नगर-निवासियोंके सामने कूल और चन्दन लेकर उस वट-वृक्षकी पूजा करते हुए उसने कहा,—“दे वट-वृक्ष ! तू सच-सच बतलाओ, कि यह धन किसने लिया है ! इस विवादका निर्णय तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है, इसलिये सच बतलाओ : क्योंकि—

‘मत्स्येन धार्यते पृथ्वी, मत्स्येन वरते रथि ।

मत्स्येन वायवो वान्ति, मयं मत्स्यं प्रतिघ्नन् ॥१॥’

अर्थात्—‘मत्स्यने ही पृथ्वी टिची हुई है, मत्स्यने ही सूर्य प्रकाश फैलाते हैं, मत्स्यके ही प्रसारने हवा चलती है । तब कुछ मत्स्यने ही वहरा हुआ है ।’

उसके ऐसा कहने पर उस वट-वृक्षके कोटरमें बैठा हुआ नटसेठ बोला,—“हे भाइयो ! सुनो—सुबुद्धिने ही लोभके बशमें आकर सब धन ले लिया है ।” यह सुन कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ । इसके बाद राजाने सुबुद्धिसे कहा,—“रे सुबुद्धि ! तू अपराधी है । तूही धन चुरा ले गया है । जा, शीघ्र इसे वापिस कर दे ।” राजाकी यह बात सुन, सुबुद्धिने अपने मनमें विचार किया,—“वृक्ष तो अचेतन है, इसलिये यह हरगिज़ बोल नहीं सकता । हो न हो, इसमें भी दुर्बुद्धिका कोई चालबाज़ी है । मालूम होता है, कि इसने किसी आदमोंको इस वृक्षके कोटरमें सिधला-पड़ाकर रख छोड़ा है, नहीं तो वृक्षसे यह मनुष्यका ला बात कैसे निकल सकता है ?” ऐसा ही विचार करके उसने राजासे कहा,—“महाराज ! मैं धन तो ज़रूर वापिस करूँगा : पर मेरी कुछ अर्ज़ भी सुन लीजिये, तो बड़ी दया हो ।” राजाने कहा,—“तो फिर कहता क्यों नहीं ? जो कुछ कहना हो, जल्द कह डाल ।” सुबुद्धिने कहा,—“महाराज ! मैंने लोभान्ध होकर मित्रों भी धोखा दिया और धन ले लिया : परन्तु मैंने वह धन इसी वटवृक्षके अन्दर रख छोड़ा था । इसके बाद जब मैं फिर उसमें लौट आया, तब एक भयानक सर्प फल फैलाये नज़र आया । उसे देखकर मैंने सोचा, कि इस धनगर तो किसी देवताका गहरा मालूम

पड़ता है। यही सोचकर मैं फिर कर घर लौट आया। अब यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं किसी-न-किसी उपायसे उस धनके अधिना-यक सर्पको मार डालूँ, जिससे यह धन हाथ लग सके।” उसकी ऐसी बातें, जो सब-सी मालूम पड़ती थीं, सुनकर राजाने कहा,—“अच्छा, तुम जैसा चाहो, वैसा करो।” यह सुन, सुबुद्धिने उसी समय सबके सामने कंड़े लाकर उस वृक्षका कोटर भर दिया और उसके चारों ओर सूखे हुए कंड़े रखकर उनमें भाग लगा दी। कंड़ोंके धुपेंसे व्याकुल होकर बुद्धबुद्धिका पिता भद्रसेठ उसी समय वृक्षके कोटरमेंसे निकल आया और ज़मीनमें गिर पड़ा। राजा भादि सब लोगोंने उसे देखकर तुरत पहचान लिया। उसे देख, आश्चर्यित हो-कर सबने उससे पूछा,—“भद्रसेठ! यह क्या मामला है?” उसने कहा,—“हे राजन्! मेरे कुपुत्र बुद्धबुद्धि बुद्धिने ही इस प्रकार मुझसे झूठी गवाही दिलवायी है। झूठ बोलनेका फल तो मुझे इसी जन्ममें मिल गया। इसलिये किसीको भूले भी झूठ नहीं बोलना चाहिये।” यह कह, सेठ चुप हो रहा। इसके बाद राजाने बुद्ध-बुद्धिका सर्वस्व छीन लिया और उसे देशनिकाळा दे दिया। सत्यवादी होनेके कारण राजाने सुबुद्धिको यत्नालङ्कार भादि देकर सम्मानित किया और सबने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

इस कथासे रिक्ता ग्रहण कर, मनुष्योंको चाहिये, कि इस लोक और परलोकमें हित करनेवाला सत्यवचन ही बाले और असत्यका सर्वथा त्याग करें।

भद्रसेठ-कथा समाप्त ।

अब स्थूल भद्रवक्ता त्याग करना, तीसरा मनुष्य है। इसका त्रिनद्वक्ता मति गालन करना चाहिये। अब श्रीशान्तिनाथ आश्रममें ऐसा कहा, तब कल्याणुष राजाने कहा,—“हे स्वामी! यह त्रिनद्वक्ता कौन था? और उसने किस प्रकार हम तीसरे वक्ताका गालन किया था?” ऐसा पूछने पर मनुने कहा,—“अह! उसको कष्ट पड़े, मृना,—

जिनदत्तकी कथा

वत्सपुरमें जितरात्रु नामके राजा रहते थे। उसी नगरमें सेठ जिनदासका पुत्र जिनदत्त भी रहता था, जो जोंबा जोंबादित्त्योंका जननेवाला उत्तम श्रावक था। वह युवावस्थाको प्राप्त होनेपर भी वैराग्य-प्रवृत्तिके कारण बारिष प्रइप करना चाहता था और विद्यादि भङ्ग्योते नगा लिखा था। एक दिन वह अपने मित्रोंके साथ नगरके बाहर उद्यानमें गया हुआ था। वहाँ उसने एक ऊँचे मिष्ठर-वाला बड़ा भारी जिनमन्दिर देखा। उसे देखते ही उत्तका वित्त हर्षते छिठ उठा। इसके बाद विधिपूर्वक जिन मन्दिरमें प्रवेश कर, पुष्पादिते जिनेश्वरको पूजा कर, वह चैत्य बंदन करने लगा। इसी समय उसी नगरोंकी रहनेवालों एक कन्या वहाँ आयी। वह उत्तरोत्तर वत्ससे मुख-कोय बांध, मनोहर सुगन्धित द्रव्योंसे जिन प्रतिमाका मुख शोभित करनेके लिये उत्तके दोनों गालों पर देठ काढ़ने लगी। इस प्रकार उस लड़कीकी जिनेश्वरकी मूर्तिमें लंज देव कर मन-हो-मन आर्घ्यर्पणें पड़े हुए जिनदत्तने अपने मित्रोंसे पूजा,—‘मित्रो! यह कितनी लड़की है?’ उन लोगोंने कहा,—‘ये! क्या तुम इसे नहीं जानते? यह त्रिभिन्न नामक सींदागरकी पुत्री, जिनन्त्री है, जो सब स्त्रियोंमें शिरोनमि है। श्वर तुम भी बन्धनवन्ध आदि गुणोंसे पुरुषोंमें शिरोनमि हो रहे हो। इसलिये यदि कदाचित् विद्याया तुम दोनोंको जोड़ी नित्य देती उस तिरज्जहारको सारा नित्य सत्त्व हो जाये। उसको लालि-रचनाका प्रयास समर्पक हो जाये।’

उस मित्रोंने इस प्रकार हँस कर कहा, दोजिदत्तने कहा,—‘हे मित्रो! तुम लोग इस जिनमन्दिरमें नरें साथ दिह्यो कर रहे हो। यह बन्धन नहीं है। मित्रो! मैं शीघ्र ऐसा चाहता हूँ, यह क्या

तुम्हें मालूम नहीं है ? मैं तो इस लड़कीके मुख-मण्डन करनेकी चतुराई देखकर, राग-रहित भावसे तुमसे इसके बारेमें वैसा सवाल किया था; नहीं तो इस जिनालयमें स्त्री-जातिका नाम भी नहीं लेना चाहिये; क्योंकि सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें लिखा हुआ है, कि जिनेश्वरके मन्दिरमें १ ताम्बूल, २ जलपान, ३ भोजन, ४ वाहन, ५ स्त्रीभोग, ६ शयन, ७ धूकना, ८ मृतना, ९ उधार और १० जुआ आदिका सेवन नहीं करना चाहिये । (ये दसों बड़ी आशातनाएँ हैं) इसलिये नारीकी यात चलानी भी उचित नहीं है ।” जिनदत्त ऐसा कह ही रहा था, कि जिनमतीने उसकी ओर देखा । उसका सुन्दर चेहरा-मोहरा और रूप लावण्यादि देखकर उस कन्याके चित्तमें अनुराग उत्पन्न हो आया, उसके मनकी यह हालत उसकी सखियाँ जान गयीं । घर जाकर उन सबने उसके माता-पितासे उसका यह अभिप्राय कह सुनाया । जिनदत्त भी अपने घर आ, भोजनकर, दूकान पर पहुँचा और द्रव्य उपार्जन करनेके लिये व्यापार करने लगा ।

इसी समय जिनमतीका पिता जिनदास सेठके पास आया और अपनी पुत्री उसके पुत्रको देनी चाहो । सेठने भी बड़े उल्लास और हर्षके साथ यह सम्यन्ध स्वीकार किया । उसने सोचा,—“जिसके पास अपने समान वित्त हो और जिसका कुल अपने समान हो, उसी के साथ मित्रता और विवाहका सम्यन्ध करना चाहिये, परन्तु यदि एक ऊँचे और दूसरा नीच कुलका हो, तो ऐसी असमानतामें सम्यन्ध करना उचित नहीं है ।” उसने फिर सोचा,—“माती हुई लक्ष्मीका निषेध करना ठीक नहीं है ।” इसी प्रकार इन लोकोक्तियोंका मन-ही-मन विचार करते हुए उसने यह सम्यन्ध स्वीकार कर लिया और अपने प्रिय मित्र श्रेष्ठोंको आदरके साथ विदा किया ।

इसके बाद जब जिनदत्त घर आया, तब उसके पिताने उससे विवाहकी यात्र कही । यह सुनकर उसने कहा,—“मैं तो विवाह करने-काही नहीं हूँ । मैं वीक्षा लेनवाला हूँ ।” यह सुन, उसके पिताने उससे

राजाको यह बात तब मालूम पड़ी, जब वे घर लौट आये । उन्होंने उसी समय यमुदत्त कोतवालको उसे ढूँढ़ लानेकी आज्ञा दी, राजाकी आज्ञा पाकर यमुदत्त कुण्डलकी तलाशमें चल पड़ा । इसी समय उसने अपने आगे-आगे उसी रास्तेमें जिनदत्तको भी किसी कार्यवशा जाने हुए देखा । उसी समय जिनदत्तने रास्तेमें कुण्डल पड़ा हुआ देखा, यह रास्ता ही छोड़ दिया और दूसरी राहसे जाने लगा । सोचा,—

“आत्मरत्नमर्थभूतानि, परत्रय्याणि लोष्टयत् ।

मातृस्पर्शद्वाराभ यः परयति स परयति ॥ १ ॥”

अर्थात्—“जो सब प्राणियोंमें अपनी आत्माके समान जानता है, पराये धनको मिट्टी का देखा समझता है और परायी स्त्रीको माताके समान देखता है, वही वास्तवमें देखता है । अर्थात् वही पण्डित है ।”

इतनेमें पीछेसे यमुदत्त भी वहाँ आ पहुँचा और कुण्डलको पड़ा देखा उसे लिये हुए राजाके पास आकर उनके हवाते कर दिया । राजाने प्रसन्न होकर पूछा,—“हे भद्र ! तुम्हें यह कुण्डल कहाँ मिला ?” यह सुन, उस दृष्टने हृष्य-भावसे राजामें कहा, “हे स्वामी ! इसे मैंने जिनदत्तसे लिया है ।” यह सुन, राजाने कहा,—“ऐं ! क्या जिनदत्त परद्रव्य ग्रहण करता है ? यह तो बड़ा धर्मात्मा और सिद्धि की कहलाना है ! धर्मात्माओंके शिष्यमें पूरांवाप्याका मत है कि,—

“अस्ति किम्पूत नष्ट, स्मिन् व्याप्तिमाहितम् ।

अद्वय नारदीय स्या, परकीर्णं कर्वाचिपरी । १ ॥”

अर्थात्—“दुर्गति का धन नाश गिर गया हो, मृत गया हो, नष्ट हो गया हो, व्यापारिक गतिन हो गया हुआ हो, परकीर्ण के नीचे पर गया हुआ हो अथवा रूप छोड़ा गया हो - यह इन सब अवस्थाओंमें अद्वय हो रह जाता है । बुद्धिमानोंका वाक्य है कि ऐसा अद्वय सब एक ही है ।”

राजाका यह बात सुन, यमुदत्तने कहा,—“हे स्वामी ! जिनदत्त

जैसा चोर तो शायद ही दूसरा कोई होगा । और-और चोर तो तुम्हें छिपे चोरी करते हैं; पर यह तो चौड़े मैदान पराया माल हड़प कर जाता है ।" यह सुन, क्रोधित होकर राजाने सोचा,—“जिनदत्तको तो लोग बड़ा ही अच्छा आदमी बतलाते हैं ; पर इसके कहनेसे तो पता चलता है, कि वह सज्जन नहीं है । अतएव यदि वह सचमुच दुष्टात्मा है, तो राजाको ओरसे उसे फाँसांका हुक्म सुनाया जाना चाहिये ।” ऐसा विचार कर, राजाने बलुदत्तको हुक्म दिया,—“कोतवाल ! यदि जिनदत्त चोर है, तो तुम उसे जल्द-जल्द मार डालो ।” राजाका ऐसा हुक्म होते ही हर्षित चित्तसे बलुदत्तने जिनदत्तको गिरफ्तार कर लिया और उसे गंधेपर बड़ा उसके तारे शरीरपर रक्तचन्दनका लेप-कर, दोल आदि वज्रवाते हुए उसे तिराहे-चौराहेको राह खूब घुमवाया । यह देख, जहाँ-तहाँ लोग ‘हा हा’-शब्द करने लगे । क्रमसे वह राज-मार्गमें लाया गया । इतनेमें शोरगुल सुनकर जिनमतों पातवाले घरसे बाहर निकल आये और जिनदत्तको दुःख देनेवाले सरकारो बफ़तरको देखा । उस समय उस बालकने रोते-रोते अपने मनमें विचार किया,—“अहा ! यह जिनदत्त घनात्मा, दयालु और देव-गुल्को भक्तिमें तत्पर है, तथापि यह निरपराध होते हुए भी ऐसी दुःखदायिनी इलाकी क्यों प्राप्त हुआ ?” इतनेमें जिनदत्तने भी उसे अपनी ओर देखते देख लिया और उसके प्रति अनुरागवान् होकर अपने मनमें विचार किया,—“अहा ! इसको मेरे ऊपर कैसा अहंमन प्रीति है ! मेरा दुःख देखकर यह भी बड़ा दुःखित मालूम पड़ता है । अतएव अबके यदि मैं इस सङ्कटसे उद्धार पा गया, तो इसे अवश्य ही स्वीकार करूँगा और कुछ दिनों तक इसके साथ सुख भोग करूँगा, नहीं तो आजसे ही मेरा सागारिक अन्तर्गमन होगा ।” वह यही सोच रहा था, कि कोतवालके निर्दय मनुष्य उसे बधत्तानको ओर ले आये ।

इधर त्रिपुनित्रकी पुत्री जिनमतोंने हाथ-पैर धो, घरके मन्दिरमें अ, प्रतिमाके पास बैठ, शासन देवताका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए,

जिनदत्तने दुःखका नाश करनेके लिए शुद्ध-युद्धिसे कायोत्सर्ग किया। उसके शीलके प्रभावसे तथा श्रेष्ठ मक्तिसे प्रसन्न होकर शासनदेवीने जिनदत्तकी मजबूत सूलीको भी पुराने तृणकी तरह तीन टुकड़े कर दिया। तब सिपाहियोंने उसके गलेमें फाँसी डाल, उसे एक वृक्षको शाखामें लटका दिया। यहाँ भी देवताने उसकी फाँसी तोड़ डाली। यह देख, क्रोधमें आकर कोतवालके भाइयोंने उसके शरीर पर चट्टी-का प्रहार किया। उस प्रहारको देवताने उसके शरीर पर फूल-मालाकी तरह कर दिया। उसका यह बढ़ा-चढ़ा हुआ प्रभाव देख, सिपाही बड़े अवघमेंमें आ गये और राजासे जाकर उन्होंने सब हाल कह सुनाया। राजा भी भय और आश्चर्यके साथ उसके पास आ पहुँचे और उसका ऐसा प्रभाव देख, उसे हाथीपर बैठाकर अपने घर ले आये। तदनन्तर उन्होंने उससे बड़ी नम्रताके साथ सारा हाल सब-सब बतला देनेको कहा। इसके उत्तरमें उसने सारा कथा चिट्ठा कह सुनाया। यह सुन, राजा कोतवालपर बड़े बेतरह नाराज़ हुए और उसका बंध करने का हुक्म दे दिया। परन्तु दयालु जिनदत्तने राजासे प्रार्थना करके उसे छुड़वा दिया। उस समय राजाने उससे कहा,—“रे दुष्ट ! जो तेरी तरह, एक सम्यग्दृष्टिवाले धर्मात्माको मिथ्या दोष लगाता है, उस दुष्टका तो पथ करनाही ठीक है।” जिनदत्तने कहा,—“हे राजन् ! मेरे ऊपर आये हुए कष्टोंके लिये आप इस बेचारेको क्यों दोष देते हैं ? इसका क्या अपराध है ? यह सब मेरे कर्मोंका दोष था।” इसके बाद राजाने सन्तुष्ट होकर उसपर पञ्चाङ्ग प्रसाद किया और बड़े उत्सवके साथ उसे घर पहुँचवा दिया। उसे देखकर उसके माता पिता आदि सभी स्वजन बड़े हर्षित हुए। उसी समय विप्रविभ्रने आकर जिनदत्तसे कोतवालके आने और जिनमतीके शासनदेवताका आराधना तथा कायोत्सर्ग करने आदिका वृत्तान्त कह सुनाया, जिससे सुनकर वह अपने मनमें बड़ा आनन्दित हुआ इसके बाद शुभ दिनको जिनदत्तने बड़ी धूम-धामसे जिनमतीके साथ विवाह किया और कुछ कालतक उसके साथ संसारिक सुख-

भोगते हुए वैराग्य लेकर भार्याके साथही धीसुस्थित नामक आचार्यसे दीक्षा ग्रहण कर ली । चिरकाल तक द्रीक्षाका पालन कर, शुभध्यान-के साथ मृत्युको प्राप्त होकर वह प्रियाके साथ स्वर्गको चला गया ।

जिनदत्त-कथा समाप्त ।

बबके श्रीशान्तिनाथ स्वामी राजा चक्रायुधसे चौथे व्रतका विचार कहने लगे,—“हे राजन् ! मैथुन दो तरहका होता है—एक औदारिक और दूसरा वैक्रिय । औदारिक मैथुन भी तिर्यञ्च और मनुष्यके भेदसे दो प्रकारका होता है तथा वैक्रिय मैथुन देवाङ्गना-सम्बन्धी होनेके कारण एक ही प्रकारका होता है । सब व्रतोंने यह व्रत बड़ा दुष्कर है । इस विषयमें कहा है, कि—

“नेरु गिरिहो जह पञ्चमाखं, परावखो सारतरो गयाखं ।

सोहो बलिहो जह सावयाखं, तदेव मोलं पवरं व्याखं ॥ ६ ॥”

अर्थात्—“वैसे सब पर्वतोंने नेरु बड़ा है, सब हाथियोंने ऐरा-वत बड़ा है, और सब शिकारी पशुओंमें सिंह बड़ा है, वैसेही सब व्रतोंने तील बड़ी है ।”

परस्त्रीका त्याग करना ही शीलव्रत कहा जाता है और सब स्त्रियों-का निषेध करना ब्रह्मचर्य कहलाता है । जो पर-स्त्री-लम्पट होता है, वह बड़ा भयङ्कर कष्ट पाता है । कहा भी है, कि—

‘नपुंसकत्वं तिर्यक्त्यं, दुर्नाग्यं च भवे भवे ।

भवेन्नराणां स्त्रीणां-धान्यकान्तामकं चेत्तान् ॥ १ ॥’

अर्थात्—“परायी नारिने जातक चित्तगले पुरुषों और पराये पुरुषनें मन लगानेवाली स्त्रियोंको जन्न-जन्नमें नपुंसकत्व, तिर्यक्त और दुर्नाग्य प्राप्त होता है ।”

इसलिये मनुष्योंको चाहिये, कि परस्त्री पर मन न ललचाये । यदि वह परस्त्रीका त्याग नहीं करता, तो उसे चेसाही दुःख होता है, जैसा करालगिड्डल नामक पुरोहितको हुआ । यह सुन, चक्रायुध राजाने

पूजा,—“हे प्रभु ! वह करालपिङ्गल कौन था ? और उसने किस प्रकार चीथे वंतका खण्डन करके दुःख पाया ? हे स्वामिन् ! कृपाकर उसकी कथा कहो ।” इस पर भगवान् ने कहा,—“उसकी कथा यों है, सुनो—

कराल पिङ्गलकी कथा :-

इसी भरतक्षेत्रमें नलपुर नामका नगर है । उसमें नलपुत्र नामक एक प्रतापी राजा था । उसके घरमें राजाके अतिशय प्रिय और शान्तिक पीष्टिक आदि क्रियाएँ करनेमें निपुण करालपिङ्गल नामका पुरोहित रहता था । वह रूपवान्, युवा और धनवान् था । उसी नगरमें पुष्पदेव नामका एक बड़ा भारी व्यापारी रहता था । पुरोहितकी उस व्यापारीके साथ बड़ी मित्रता थी । उस व्यापारीकी छोटी नाम पद्मिनी था । वह मनोहर रूपवाली और पतिव्रत आदि उत्तम गुणोंसे युक्त थी । कहा भी है, कि—

पतिव्रतानां नारीणां, भर्तुस्तुगति देवताः ।

गंगा यथाऽनन्त्यजस्यापि, स्वयं हि श्रीफलं ददौ ॥ १ ॥

अर्थात्—“पतिव्रता स्त्रियोंके स्वामीपर सभी देवता प्रसन्न रहते हैं जैसे कि * गंगानदीने स्वयं ही एक बाण्डालकी श्रीफल दिया था ।”

एक दिन पुरोहितने किसी कामसे राजाको यज्ञ सन्तुष्ट किया । तब राजाने उसे घरदान दिया, कि तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, माँग लो । यह सुन, विषयासक्त चित्तवाले पुरोहितने कहा,—“हे स्वामिन् ! यदि भाग मुझे मुँह माँगा दान देना चाहते हैं, तो मैं भागसे यही माँगता हूँ, कि इस नगरमें मैं चाहें जिस पर-छीके साथ सम्भाग करूँ, पर मेरा अपराध नहीं माना जाय ।” यह सुन, राजाने कहा,—“हे पुरोहित ! जो छो तुमसे मिलना चाहे उसीसे तुम भी मिलना औरसे नहीं, यदि

* यह क्या किसीको मालूम नहीं है ।

कदाचित् तुम किसी ऐसी स्त्रीके साथ बलात्कार क्रीड़ा करोगे, जो तुम्हारी इच्छा नहीं करती हो तो, मैं तुम्हें वही दण्ड दूँगा, जो परदार-निषेधन करनेवालोंको दिया जाता है ।" पुरोहितने राजाको यह आज्ञा स्वीकार कर ली । इसके बाद यह पुरोहित बेरोक-टोक स्वच्छन्द भावसे परायों स्त्रियोंके फिराकमें सारे नगरका चक्कर लगाने लगा । योंही घूमते-फिरते उस कामान्धने एक दिन पुष्पदेवकी स्त्री पद्मश्रीकी देखा ; उसे देखते ही वह प्रेमान्ध होकर उससे मिलनेका उपाय सोचने लगा । उसने सोचा,—“कैसे पुष्पदेवकी यह पत्नी मेरे वशमें आयेगी ?” इसी सोच-विचारमें पड़े हुए उसने एक दिन पुष्पदेवकी स्त्रीकी दासी विद्युद्धतासे कहा,—“हे भद्रे ! तू ऐसी कोई तरकीब लड़ा दे, जिससे तेरी स्वामिनी मेरे ऊपर आश्रित हो जाये ।” यह सुन, उसने एक दिन अपना स्वामिनीसे पुरोहितकी बात कही ; पर उस शीलवर्ताने उसकी बात नहीं मानी । दासीने यह बात जाकर पुरोहितसे कही, कि मेरी स्वामिनी तुम्हारी बात माननेवाली नहीं है । यह सुनकर उस दुरात्माने एक दिन स्वयंही अवस्तर पाकर पद्मश्रीसे सम्भोग करनेकी प्रार्थना की । सुनतेही वह बोली,—“खबरदार, ऐसी बात फिर कभी न कहना, नहीं तो कहीं तुम्हारे नित्रको इसकी खबर पड़ जायेगी ।” यह सुन, पुरोहितने अनुमान किया, कि यह दिलसे तो मेरे ऊपर ज़हर ही आशिक है । इसके बाद उसने फिर मुस्करा कर कहा,—“हे भद्रे ! तुम ऐसा कोई उपाय करो, जिससे तुम्हारे पति परदेश चले जायें ।” उसकी यह बात सुन, उसने यह सारा हाल अपने स्वामिनीसे जाकर कह दिया । पुष्पदेवने बात सुनकर मनमें रखलो—किसीपर प्रकट नहीं की ; पर उसने मन-ही-मन सोचा, कि यह पुरोहित क्या करता है, इसे देखना चाहिये ।

इसके बाद पुरोहितने अपना विद्याके प्रभावसे राजाके सिरमें बड़ी भयानक पोड़ा उत्पन्न कर दी । उस समय सिरके दर्दसे छटपटाते हुए राजाने पुरोहितको बुलवाकर कहा,—“पुरोहितजी ! इस सिर दर्दसे तो मेरे प्राण आज्ञाही निकले जा रहे हैं ; इसलिये तुम कुछ योना-स्ट्रिका,

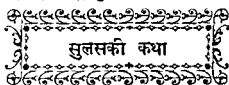
तन्त्र-मन्त्र करके मेरी यह पीड़ा शान्त कर दो ।” यह सुन, उसने मन्त्री उत्पन्न की हुई पीड़ा मन्त्रोपचार करके शान्त कर दी । उस समय रोग रहित हो जानेके कारण प्रसन्न होकर राजाने पुरोहितसे कहा,—“हे पूज्य ! तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, मांग लो ।” पुरोहितने कहा,—“हे राजन् ! आपकी दयासे मेरे किसी चीज़की कमी नहीं है, पर हे नरेश्वर ! मेरा एक मनोरथ आप अवश्य पूरा कर दें । वह यह है, कि किंजल्प नामक द्वीपमें किंजल्पक-जातिके पक्षी रहते हैं—उनका स्वर बड़ाही सुन्दर होता है, उनका रूप भी बड़ा ही मनोहर होता है । उन्हें देखनेसे मनुष्यको बड़ा सुख होता है । उन्हीं पक्षियोंको लानेके लिये आप यहाँके पुष्पदेव नामक घणिकूको आज्ञा दे दीजिये ।” यह सुन, राजाने तत्काल पुष्पदेवको बुलाकर, कहा,—“सेठजी ! तुम किंजल्प द्वीपमें जाकर वहाँसे किंजल्पक जातिके पक्षी ले आओ ।” राजाकी यह बात सुन, उसने सोचा,—“यह सारा प्रयत्न उसी पुरोहितका रचा हुआ है ।” ऐसा विचार कर उसने राजासे कहा,—“जैसी आपकी आज्ञा ।” यह कह, वह अपने घर गया । इसके बाद उसने अपने घरमें तहझाना सा गद्गदा छुड़वाकर उस पर एक यन्त्र-युक्त पलंग रखवा दिया और अपने कुछ विश्वसनीय मनुष्योंको बुलाकर कहा,—“अगर किसी दिन कराल-पिङ्गल पुरोहित यहाँ आ पहुँचे, तो तुम लोग उसे इसी कलश्वर पलंग-पर बेठाना और इसी गद्गदेमें गिरा देना । इसके बाद गुप्त रीतिसे उसे मेरे पास ले आना ।” इस प्रकारकी आज्ञा अपने सेवकोंको देकर पुष्पदेव, वैशान्तर जानेके बहाने घरसे बाहर निकला और नगरके बाहर एक गुप्त स्थानमें जा छिपा । इसी समय पुष्पदेवको परदेश गया जानकर करालपिङ्गल बड़ी छुशीके साथ उसके घर आ पहुँचा । वहाँ पुष्पदेवके विश्वासी नौकर लुके-छिपे बैठे हुए थे । पुष्पदेवकी पत्नीने बड़ी आतिशयके साथ पुरोहितको उसी कलश्वर पलंगपर बेठाया । बैठतेही वह खन्डकमें गिर पड़ा, इसके बाद छिपे हुए सेवक बाहर आये और उसको मुश्किल धीरे-धीरे उससे पुष्पदेवके पास ले आये । तब बुद्धिमान

पुष्पदेव, उस दुष्टको पींजरेमें बन्द कर, अपने साथ दूसरे देशको ले गया । वहाँ छः महीने तक रह, अपना कार्य सिद्ध कर, वह फिर अपने नगरको आया । उस समय उस पुरोहितकी पूरी मिट्टी पलीद करनेके इरादेसे उसने अपनी बुद्धिसे यह उपाय सोच निकाला, कि पदले तो मोमको गलाकर उसका रस उसके सारे शरीरमें पोत दिया । इसके बाद उसके समूचे बदनपर खूबसूरत मालूम होने लायक पाँच रंगोंके चिड़ियोंके पर लाकर चिपका दिये । इस प्रकार उसने पुरोहितको पूरा पक्षी बना डाला और उसे काठके एक बड़ेसे पींजरेमें बन्द कर, उसमें ताला लगा, उस पींजरेको एक गाड़ीपर रखवाया और उसे लिये हुए राजसभामें आ पहुँचा । आतेही उसने राजाको प्रणाम कर, निवेदन किया,—“महाराज ! मैं आपकी आज्ञासे जलमार्ग द्वारा उस द्वीपमें पहुँचा और वहाँसे बहुतसे किंजल्प-पक्षी लेकर चला था, पर सबके सब रास्तेमें मर गये—सिर्फ एक जीता बच गया है, उसे आपको दिखानेके लिये ले आया हूँ—कृपाकर देख लीजिये ।” राजाने कहा,—“हे सौदागर ! तुम उस पक्षीको यहीं लाकर मुझे दिखलाओ ।” राजाकी यह आज्ञा पा, वह बहुतसे लोगोंसे उस गाड़ीको खिंचवा लाया, जिसपर वह पींजरा रखा था और पास आनेपर उन्हीं लोगोंसे वह पींजरा उतरवाकर, राजाके पास रखवा दिया । इसके बाद उसने उस पींजरेका ताला खोला । यह देख, राजाने कहा,—“यह पक्षी तो सुन्दर स्वर और मनोहर रूपवाला मालूम पड़ता है । खेर, देखना चाहिये, यह कैसा है ?” यह कह, राजाने उसे भली भाँति देखा, तो आदमीसा मालूम पड़ा । यह देख, उन्होंने पुष्पदेवसे पूछा,—“क्या यह पक्षी आदमीकी सी सूरत-शक्नुवाला होता है ?” उसने कहा,—“जी हाँ ।” राजाने कहा,—“सुना है, कि इसकी बोली बड़ी मीठी होती है, इसलिये इसे एकबार बुलवाओ तो सही ।” यह सुन, पुष्पदेवने हाथमें एक लोहेका सींकवा ले, उसकी तेज़ नोकसे उसे गोदते हुए कहा,—“रे पक्षी ! बोल !” उसने कहा,—“क्या बोलूँ ।” यह सुन राजाको बड़ा विस्मय हुआ उन्होंने उसका मुँह और दाँत देख,

उसे पहचान कर पुण्यदेवसे पूछा,—“हे व्यवहारी ! यह पक्षी मरे पुरो-
हितके समान दिजाई देता है ।” उसने कहा,—“महाराज ! यही समझ
लीजिये, कि यही है ।” राजाने फिर पूछा,—“तुमने इसको ऐसी दुर्गति
क्यों कर रखी है ?” इसपर उसने राजाको उसका सारा कथा चिट्ठा कह
सुनाया । यह सुन, क्रोधित होकर राजाने अपने सिपाहियोंको बुझा
दिया, कि इस दुष्टकर्मा और परस्त्रीगामी भयम ब्राह्मणको मार डालो ।
राजाकी यह आज्ञा सुन, उन सबने पुरोहितको गधेपर चढ़ा, बड़ी फुझीहलके
साथ उसे सारे नगरमें घुमाया और घघ-स्थानमें ले जाकर मार डाला ।
वह मरनेपर घोर नरकमें गया । वहाँ उसे अग्निसे तपते हुए पुतलेका
आलिंगन करना पड़ा और इसी तरहके और भी अनेक प्रकारके दुःख
उठाने पड़े । वहाँसे निकलने पर भी वह अनन्तकाल तक इस संसारमें
भ्रमण करता रहेगा ।

करालपिंगल-कथा समाप्त ।

इसके बाद स्वामीने फिर कहा,—“पाँचवाँ परिग्रह प्रमाण नामक
अणुग्रत सचित्त, अचित्त और मिथके भेदसे तीन तरहका है और इसके
तीन भेद भी कहे जाते हैं—जैसे, धन, धान्य, क्षेत्र, गृह, चाँदी, ताँबा-
पीतल आदि, सुवर्ण, द्विपद और चतुष्पद, इन नवों परिग्रहोंका प्रमाण
करना । जो पुरुष इन नवों परिग्रहोंका प्रमाण नहीं करता, वह सुलस
ध्यायककी भाँति दुःख पाता है । यह सुन, चक्रायुध राजाने कहा,—“हे
भगवन् ! वह सुलस कौन था ? कृपाकर उसकी कथा कह सुनाइये ।”
तब प्रभुने कहा,—“हे राजन् ! सुनो—



इसी भरतक्षेत्रमें अमरपुर नामका नगर है । उसमें छत्रकी ही दण्ड
लगाता था, केशकी ही बन्धन प्राप्त होता था, खेलमे ही मार शब्दकी

प्रवृत्ति होती थी, हाथियोंको ही नद होता था, हारके लिये ही छिद्र दूँहा जाता था और कन्याके विवाहमें ही करपोड़न होता था ; किन्तु प्रजाके विषयमें इनमेंसे एक भी नहीं था । उसी नगरमें न्याय-धर्ममें तत्पर अनरसेन नामके राजा और कृष्णदत्त नामक सेठ रहते थे । वे विरोधतया जैनधर्मके पालक और समर्थिकके धारण करनेवाले थे । सेठको श्री जिनदेवी बड़ी अच्छी भाविका थी । उसके गर्भसे सेठको सुलत नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । जब वह उवान हुआ, तब उसके माता-पिताने उसको शादी सेठ जिनदासकी पुत्री सुनन्दाके साथ कर दी । एक दिन सुलतने पिताकी आज्ञासे सद्गुरुके पास जाकर धावकके भ्रातृहो व्रत (परिग्रह प्रमाणके सिवा) ग्रहण किये । उसके बादसे सुलत कलत्रांगोंमें अधिक दिलचस्पी रखनेके कारण विषय-विनो-दमें वैसा मन नहीं लगाता था । सेठानोंने इस प्रकार अपने पुत्रकी धर्ममें तत्परता और शास्त्रोंमें आदर रखते देख कर सेठसे कहा,—“हे स्वामी ! आपका पुत्र तो साधुसा मालूम पड़ता है, इसलिये आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे उसके मनमें विषयको इच्छा उत्पन्न हो ।” यह सुन, सेठने कहा,—“हे प्यारी ! तुम ऐसा बात न कहो; क्योंकि अनादि कालसे प्राणी विषय-व्यापारमें आरते आप प्रवृत्त हो जाते हैं ; पर धर्ममें प्रवृत्ति होना ही सुरिच्छ होतो है ।”

ऐसा कह कर भी सेठानोंको हठके नारे सेठने अपने पुत्रको चतु-राई सांख्यके लिये नयों, विद्या और जुआरियोंके पास भेजा, इसके परिणाममें सुलत कुछ ही दिनोंमें सब कलत्रांग मूल गया । वह इन गये गुजरे ननुष्योंको सङ्कतिमें पड़ कर सदा ईर्ष्या-दिल्लगी और तमाखा करने, झुझार क्यारों सुनते, नाटक देखने और जुआ खेलनेमें ही मग्न रहने लगा । कमसे कम इन्हीं लोगोंके साथ-साथ एक दिन कान-पताका नामक वैद्याके घर जा पहुँचा । उस रहडमें उसे धनवान्का पैठा उतार कर, मन-ही-मन बड़ा अच्छा माना और आदरसे उठ कर

छड़ी हो, उसे भासन दे, उसकी यड़ी भावभगत की। सुलस भी मित्रोंके कहनेसे वहीं बैठ रहा। रण्डोने गप-शाप करनी शुरू की। उसकी चिकनी-चुपड़ी बातें सुन कर यह उस पर घेतरह लड़ू हो गया। यह पात ताड़ कर उसके सब मित्र पहाँसे उठ कर भागे-भगने घर चले गये। फिर तो उस घेस्याने धीरे-धीरे उसे पैसा इतने पड़ाया—इस प्रकार उसका दिल खुश कर दिया,—कि यह उसके घरसे बाहर निकला ही नहीं। यह यहीं पड़ा हुआ चापका माल उड़ाने-छाने लगा। इसी प्रकार उसने सोलह वर्ष बिता दिये। इसी समय देव-योगसे उसके माँ-बाप मर गये। तब उसकी स्त्री भी उसे उसी तरह उड़ानेके लिये धन देने लगी। कुछ दिनोंमें मारा सज्जाना माली हो गया। तब उसकी स्त्रीने उभ घेस्याकी दासीके द्वारा अपने गहने उसके पास निजया दिये। यह देख, उस रंडीकी नायकाने अपने मनमें विचार किया, कि इस मुपके घर धनका भय पूरा टोटा हो रहा है। भय हम किन्नीकी देहके गहने क्यों लें ? यही सोच कर बुढ़ियाने हजार रुपयेके साथ वे गहने उसकी स्त्रीको छौटा दिये। इसके बाद उसने अपनी बेटी कामपताकासे कहा,—“बेटी ! अब इस मरमुपके पास धन बिलकुल ही नहीं रहा, इसलिये इसे छोड़ देना ही ठीक है।” घेस्याने कहा,—“त्रिमने हमें इतना धन दिया और त्रिमने साथ में खोलेह वर्ष तक भोग-विलास किया। उसे अब क्योंकर त्याग करते बनेमा ?” यह सुन, कुटुंबी बुढ़ियाने कहा,—“हमारे कुलकी तो यही रीति है। कहा भी है, कि—

“विनये वीरभ्यासो देहभ्यः पुत्रयोश्चाम् ।

रात्रिवधे वधियो मेम, वधामाममुने विरम् ॥ १ ॥”

अर्थात्—‘संग-हीन साधुबोझ वैनय, कुल-विधोही वेदर वनूआई, धनिबोझे उदारता (सर्वाभयन) और वेश्याबोझ प्रेम—अमृत हानेन भी निषेधे नस्य है ।’

“हमारा तो यही काम है, कि धनधनकी सेवा करें और निजको

उसी तरह त्याग दें, जैसे रत्न पाकर ईश्वर को जेठ दिया जाता है।" बुझाके ऐसा कहने पर भी उस बेवफा ने तुलसि को नहीं छोड़ा।

एक दिन भीष्म पाकर बुढ़ियाने तुलसिसे कहा,—“हे नन्द! तुन योड़ी देरके लिये नाँचे जाओ, जितने यहाँ बैठ कर नाकका गढ़ना साफ़ किया जा सके।” यह सुनकर उसने सोचा,—“इन सौतेल्य बराने ने कभी इस तरह का बात नहीं सुनी थी, आज ही यह बात क्यों सुन पड़ी?” यही सोचकर वह नाँचे उतरकर बैठ रहा। इसी समय बुढ़िया की दासियों ने उत्ते कहा — “अरे! तू निर्लज्ज की तरह यहाँ क्या बैठा हुआ है?” यह सुन, तुलसि तत्काल उस घरसे बाहर निकलकर अपने घरकी ओर चला; पर इतने दिन घरसे बाहर रहनेके कारण वह घरका रास्ता भी भूल गया था। झेनल्लाके कारण उत्तकी चल्नेमें भी कष्ट होता था। कितनी-कितनी तरह रास्ता याद करता हुआ वह धीरे-धीरे अपने घरके पास आ पहुँचा। उत्तकी यह घर दूध-भूट गया था, उत्तकी शीशों गिर पड़ी थी, चूना खड़ गया था और बिचाड़ दूध गये थे। इस तरह खण्डहरके समान होना रहित, उमड़ और निर्जन घर देख कर उत्तने एक आदमीसे पूछा,—“हे भाई! वृषभक्ष सेठका यहां घर है या दूसरा?” उत्तने कहा,—“यही है।” तुलसिने पूछा,—“तो इसकी ऐसी हालत क्यों हो रही है? सेठों कुम्हलते हैं न?” उत्तने कहा,—“सेठ और सेठना—दोनों कनोके मर गये और निर्धनताके कारण घरकी ऐसी हालत हो गयी।” यह सुन, उत्तने शोकगुर होकर विचार किया,—“ओह! मैं बेवफा ने ऐसा आश्रय हो रहा, कि माँ-बापके मरनेका भी हाल नहीं जाना। धन भी चान्त हो गया और मेरी ही करनोले रिताका स्वर्गोप विनायके सहारा नखन समाप्त हो गया। अब मैं अपने आदमी-सबानोंको कैसे मुँह दिखलऊंगा?” ऐसा सोचते हुए वह बाहरले ही घरका ओर आँख मर देख कर नगरके बाहर एक जंगल उद्यानमें चला गया। वहाँ उत्तने झरोके एक ताड़-वृक्ष पर यह चिड़ो धरती छोड़े नाम लिखी—

“स्वस्तिधी जिनेश्वरोंको नमस्कार कर, सुलस, अपनी प्रियाको इस पत्र द्वारा आनन्द देता हुआ उत्कण्ठापूर्वक यह बात बतला देना चाहता है, कि यह आज वेश्याके घरसे धाहर हो गया । रास्तेमें अपने मा-
 धापके मरनेका हाल सुन, मैं निर्धन लज्जाके मारे तुम्हारे पास नहीं आया, पर अगले देशान्तरको जा, मनोवाञ्छित धन उपार्जन कर मैं थोड़े दिनों बाद फिर आऊँगा । तुम अपने मनमें इस बातका ज़रा भी खेद न करना ।” इस प्रकार पत्र लिख, उसने उन अक्षरोंपर कोप-
 लेकी धुकनी छिड़क, उस पत्रको मोड़ा ही था, कि वैद्ययोगसे उसी समय उसकी छोकी दासी यहाँ आ पहुँची । उसीके हाथमें यह पत्र देकर वह परवेश चला गया ।

क्रमशः चलता हुआ सुलस एक नगरके पास आ पहुँचा । यहाँ एक
 घने लगा,—“दूधवाले
 । यिद्व और पलाश-
 के वृक्षके नीचे थोड़ा या बहुत धन अक्षय्य ही होता है ।” ऐसा विचार
 कर, उसने देखा, तो वृक्षके अङ्कुर छोटे-छोटे नज़र आये, इसलिये उसने
 सोचा, कि यहाँ थोड़ा द्रव्य है । साथही उसके दूधका रंग सुनहरा
 था, इसलिये उसने यह भी जान लिया, कि इसके नीचे सोना है ।
 शास्त्रके आधार पर ऐसा विचार कर, वह “ॐ नमो धरणेन्द्राय, ॐ
 नमो धनदाय” आदि मन्त्रोंका उच्चारण कर उस जगहकी ज़मीन
 खोदने लगा । उसमेंसे हजार मुहरोंके बराबर धन निकला । उस
 धनकी अपने घरमें छिपाये हुए वह नगरमें आया और बाज़ारमें पहुँच
 कर एक बनियेकी दूकानपर बैठ गया । उस समय यह बनियाँ गाह-
 कोंके मारे बेतरह परेशान था, यह देख कर सुलसने भी उसकी थोड़ी
 बहुत मदद कर दी । इतनी ही देरमें सुलसकी व्यापार-सम्बन्धियों
 चतुराई देख, उस दूकानका मालिक बड़ा खुश हुआ और सोचने लगा,—
 “भाह ! यह सज्जन कैसे होशियार मालूम होते हैं ! मात्र इनकी मददसे
 मुझे बड़ा लाभ हुआ । यह कोई मामूली भाग्यी नहीं भाग्यशाली पड़ने ।”

पेसा बिचार उत्पन्न होते-हो उठने पूछा,—“हे मद्र ! तुम क्यासे भा रहे हो और कहाँ जाओगे ?” यह सुन, सुलसने कहा,—“मैं तो यहाँ बनारस नगरसे आया हूँ ।” सेठने फिर पूछा,—“तुम यहाँ किसके घर भतिथि होकर ठहरे हो ?” उलने बिनपके साथ उत्तर दिया,—“सेठजी ! इस समय तो मैं भापका ही भतिथि हूँ ।” यह सुन, सेठ उसे मन्ने घर ले गया । यहाँ उसे मन्मथ, उदरसन, आन, नीजन भादि कराकर उलने फिर उलसे यहाँ आनेका कारण पूछा । तब सुलसने कहा,—“हे तन ! मैं द्रव्य उपार्जन करनेके लिये घरसे बाहर निकला हूँ । मुझे कोई दुकान भाड़ेपर श्राविये, वित्तपर बैठकर मैं व्यापार करूँ ।” तत्पर सेठने उसे एक दुकान दिला दी । उसीपर बैठकर सुलस व्यापार करने और धन कमाने लगा । ऊ महीनेमें उलने पालकी मुहरोंकी दुगुना कर डाला । तब यह उस धनसे किराना भात खरीद कर, बहुत बड़ा झण्डिया साथ ले, सन्मुखके किनारे बसे हुए तिलकपुर नामक नगर में व्यापार करनेके लिये आया । यहाँ भी उसे मनचोला लग्न हुआ । उसके बाद यह अधिक लग्नके लिये झाड़ूमें किराना भात भरकर साथ भी उलनेमें सवार हो गया और रज्जुसने पंखा । यहाँ पहुँचकर यह नेट लिये हुए उस झोरेके रास्तेके पास मिलने गया । रास्ते में उसका भाइर-सम्भार कर उसका आधा कर नाश कर दिया । यहाँ मनचोला लग्न उलनेके हाइसे किराना बेच तरह-तरहके रज लिये और बहुतसा धन एकत्र किये हुए वह अपने देशकी ओर आनेके लिये झाड़ूपर सवार हो गया । राहमें अनेक-अनेक दुर्भाग्यके मारे उसका भाइर सन्मुखने टूट गया—सारा धन बर्त हो गया । केवल अपनी जान लिये एक तलवा बचड़े हुए यह राँच दिवने सन्मुखके किनारे आ गया । यहाँ केलेका प्रगत देख, उलनेके मनोहर रज धा और एक स्थानपर अन्तर देख, उलनेके मनमें प्रेम हुआ, सम्य होकर उलने सोचा,—“मोह ! मैंने किसका यही मनसि प्रेम की थी ! पर भाइर १५ हाथ-बेरोके मिक मेरे पास कुछ भी न रहा । राहमेंके प्रेम

भी न रहे । यह था तो मेरे पापोंका फल है अथवा देवकी यही गति है । कहा भी है,—

“देवमुल्लंघ्य यत्कार्यं, क्रियते फलवन्त तत् ।

सरोज्जम्भधातकेनासं, गमरंभेण निर्गतम् ॥ १ ॥”

अर्थात्—“देवका उल्लंघन करके जो काम किया जाता है, उसका कोई फल नहीं होता । जैसे कि, चातक सरोवरका जल चोंचसे उछाला है सही; पर वह गलेके छिद्रसे बाहर निकल जाता है—पेटमें नहीं जाने पाता ।’

“पर जो कुछ हो, मुझे उद्यमका त्याग कदापि नहीं करना चाहिये—विपत्तिमें भी पुरुषार्थ करनाही उचित है । पण्डितोंने कहा है,—

“नीचैर्नारभ्यते कार्यं, कर्तुं विघ्न भयात् साधु ।

प्रारभ्य त्यज्यते मर्थैः, किञ्चिद्विघ्न उपस्थिते ॥ १ ॥

उत्तमास्त्वन्तरायेषु, भयस्त्वपि महत्प्रशः ।

प्रशस्यं कार्यमारभ्यं, न त्यजन्ति कथञ्चन ॥ २ ॥”

अर्थात्—“नीच मनुष्य इसी डरसे कोई काम नहीं करते, कि कहीं उसमें कोई विघ्न न पड़ जाये, मध्यम श्रेणीके मनुष्य कार्यारम्भ तो कर देते हैं; पर पीछे कोई विघ्न उपस्थित होते ही उससे हाथ सींच लेते हैं; परन्तु उत्तम पुरुष हजारों विघ्न पड़नेपर भी आरम्भ किये हुए प्रशंसनीय कार्यको नहीं छोड़ते ।”

इसी प्रकार विचार करता हुआ सुलस भागे बढ़ा । रतनेमें एक जगह उसे झुण्डके-झुण्ड गिद्ध दिखाई दिये । उन्हें ही लक्ष्यमें रखकर वह पास पहुँचा, तो उसे एक लाश नज़र आयी । उसके घट्टके छोरमें कुरोड़ोंकी फ़ीमतीके पाँच रत्न देखाकर उसने अपने मनमें सोचा,—“मैंने भद्रसादानसे विरति कर ली है; पर यह लाचारिसी घन छे लेना मेरे लिये बेजा नहीं है । इन रत्नोंकी जो फ़ीमत आयेगी, उससे मैं इनके स्वामीके पुण्यार्थ चैत्य (मन्दिर) बनवा दूँगा ।” यही सोच, उन

रत्नोंको लेकर वह वहाँसे चल पड़ा । क्रमशः वह समुद्रके किनारे बसे हुए बेलारुल नामक नगरमें पहुँचा । उस नगरमें लक्ष्मीका वास देख, वह उसके अन्दर पैठा और धाँतार नामक एक सेटके घर आया । सेटने भी उसे खूब ठाट-बाटके साथ खिलाया-पिलाया और उसको बड़ी आचमगत की । इसके बाद उसने दो करोड़ पर दो रत्न बेंचे और इती धनसे किरानेका माल खरीद कर बड़ीसी गाड़ीमें लदवाया और बहुत बड़ा काफ़िला साथ लिये हुए अपने देशकी ओर चला । रास्तेमें एक बड़ा भारी जङ्गल मिला । दोपहरमें वहाँ एक स्थानपर सारे काफ़िलेका डेरा पड़ा । काफ़िलेके लोग रसोई-पानाँकी धुनमें लग गये । इतनेमें भोल-जातिके चोर एकाएक कहींसे आकर काफ़िलेमें लूट-पाट मचाने लगे । यह देख, अपने सब साथियों समेत सुलस उनसे युद्ध करनेको तैयार हो गया । भालोंने सुलसके सेवकोंको हराकर भगा दिया और सुलसको जीता ही पकड़ कर द्रव्यके लोभसे एक बनियेके हाथ बेंच दिया ! उस बनियेने उसे मुँहमणि दामोंपर एक पैसे मनुष्यके हाथ बेंच दिया, जो मनुष्योंके रुधिरकी तलाशमें रहता था । यह आदमी 'पारलकूल' से आया था । वह मनुष्योंको खरीद कर अपने देशमें ले जाता और उनके शरीरका रुधिर निकाल कर कुखडमें डाल देता था । उस रुधिरमें जो जन्तु उत्पन्न होते थे, उन्हींसे कृमिराग (किरमिची रङ्ग) बनता था, जिससे कपड़े रंगे जाते हैं । फिर तो वे कपड़े जला देने पर उनका रास भी लाल रङ्गका होता था । बेचारा सुलस वहाँ बड़ा दुःख उठाही रहा था, कि एक दिन उसके शरीरसे रुधिर निकलता देख, एक भारण्ड पक्षी उसे उठाकर आसमानमें उड़ गया और उसे रोहिताचल पर्वतकी एक झिलापर ला पटक़ा । ज्योंही वह पक्षी उसे छानेको तैयार हुआ, त्योंही एक दूसरे भारण्ड-पक्षीका दृष्टि उस पर पड़ी, फिर तो दोनों पक्षी आपसमें युद्ध करने लगे । बस, सुलस उनके चंगुलसे बच कर पासकी एक गुफामें चला गया । इसके बाद जब वे दोनों पक्षी दूसरी जगह चले गये, तब सुलस गुफासे बाहर

निकला और करनेके पानोसे अपनी देह धो, संरोहिणी-औषधिके रस-से अपने घायोंको आराम कर, वह पर्वतसे नीचे उतर आया । वहाँ उसने धूलसे भरे और हाथमें कुदाल लिये हुए कितनेही आदमियों और पञ्चकुलको देखकर एक आदमीसे पूछा,—“भाई यह कौनसा पर्वत है ? इस देशका नाम क्या है ? यहाँका राजा कौन है ? ये आदमी कुदालसे क्या खोद रहे हैं ? यह पञ्चकुल कैसे है ? यह सब बातें छगाकर मुझे बतलाओ ।” यह सुन, उस आदमीने कहा,—“भाई ! जो कोई किसी देशमें जाता है, वह यह सब बातें ज़रूर पहलेही मालूम कर लेता है । तुम तो इस देशका नाम भी नहीं जानते ! तो क्या तुम आसमानसे टपक पड़े हो या पातालसे निकल आये हो ? अगर तुम्हें यहाँका कुछ भी हाल नहीं मालूम था, तो फिर तुम यहाँ किस लिये आये ?” सुलसने कहा,—“भाई ! तुमने यह जो कहा, कि क्या तुम आसमानसे टपक पड़े हो, वह बिलकुल ठीक है । मैं सच-मुच आसमानसेही टपक पड़ा हूँ ।” उसने पूछा,—“सो कैसे ?” सुलसने उत्तर दिया,—“एक विद्याधर मेरा मित्र है । उसने मुझसे एक दिन कहा, कि मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें सुमेरु-पर्यंत विद्या लाऊँ । यह सुन, मैं कीतूहलके मारे उसकी सहायतासे आकाश-मार्गसे चल पड़ा । इतनेमें उसका कोई शत्रु विद्याधर रास्तेमें मिल गया । उस समय मेरा मित्र अपने शत्रुसे लड़ने लगा और मुझे छोड़ दिया, जिससे मैं नीचे गिर पड़ा ।” इस प्रकार सुलसने उसे अपनी अङ्गुलीसे ऐसा जवाब दे दिया, जो सचही मालूम पड़ता था । उसने फिर कहा,—“हे भाई ! मैं इसी तरह आसमानसे टपक पड़ा हूँ, इसलिये मैंने जो-जो बातें तुमसे पूछी हैं, उनका सिल-सिलेवार उत्तर मुझे दे दो ।” यह सुन, उस आदमीने कहा,—“यह रोहणा नामका देश है, इस पर्वतका नाम भी रोहणाचल है । यहाँके राजाका नाम चक्रसागर है । यह पञ्चकुल राजाके ही हैं । हाथमें कुदाल लिये हुए ये लोग ज़मीन खोदकर इसमेंसे रत्न निकाल रहे हैं और इसके लिये राजाको कर देते हैं ।” यह सुन, सुलसने सोचा,—“इस

नगरमें कहीं डेरा जमाकर रहना और इस उपायसे धन कमाता चाहिये।”
 यही सोच कर वह उन्हीं आदमियोंके साथ रत्नपुत्र नगरमें चला गया।
 वहाँ वह एक बूढ़े बनियेके घर जा टिका। उसने उसे भोजन कराया।
 तब भोजन करके सुलसने उससे सब हाल कह सुनाया। इसके बाद
 रत्नोपाजन करनेमें उत्साहित होकर वह कुदाल आदि सामग्रियाँ लेकर
 रत्न इकट्ठा करने लगा। इसी तरह रत्न-संग्रह करते हुए एक दिन
 उसे एक बड़ा ही मूल्यवान् रत्न हाथ लगा। किसी-किसी तरह उस
 रत्नको अपने शरीरके अन्दर छिपा कर वह धानसे बाहर निकला और
 उस एकके सिवा और सब रत्नोंमेंसे राजाके करका भाग पञ्चकुलोंको
 देकर पूर्व-दिशाके अलङ्कार-स्वरूप धीमत्यन्तन नामक नगरमें जा, वह
 रत्न बेच, उसका किराना माल खरीद, फिर अपने नगरकी ओर चला।
 रास्तेमें एक बड़ा भारी जङ्गल मिला। उसमें दावाग्नि घघक रही थी,
 इसलिये उसका सारा किराना जलकर खाक हो गया। फिर वह अ-
 कैला भटकता हुआ एक गाँवमें आया। गाँवके बाहर एक परिव्राजक-
 को देख, उन्हें प्रणाम कर वह उनके पास बैठ रहा। परिव्राजकने उसे
 मधुर वचनोंसे तन्तुष्ट करते हुए पूछा,—“हे वत्स ! तुम कहाँसे आ
 रहे हो ? कहाँ जाओगे ? और किस कारण तुम दुनियाँमें अकेले भट-
 कते फिरते हो ?” यह सुन, सुलसने कहा,—“मैं अमरपुरका रहने
 वाला बनियाँ हूँ और धनके लिये शहर-उधरकी खाक छानता फिरता
 हूँ।” यह सुन, परिव्राजकने कहा,—“घेटा ! तुम कुछ दिन मेरे पास
 रहो, मैं तुम्हें धनेश्वर बना दूँगा।” यह सुन, सुलसने कहा,—“आपको
 यह मेरे ऊपर बड़ी भारी दया है !” और उन्हींके पास रहने लगा। परि-
 व्राजकने उसे किसीके घर भोजन करनेके लिये भेजा। वह वहाँसे वापस
 चला आया और परिव्राजकसे पूछने लगा,—“पूज्यवर ! आप किस
 तरह मुझे धनाढ्य बनायेंगे ?” परिव्राजकने कहा,—“घेटा सुनो।
 मेरे पास रत्न-कूपका कल्प मौजूद है। उसके रत्नको एक यूँ टपका
 देंगे बहुतों को सोना हो जाता है। वही चीज मैं तुम्हें दूँगा।

पहले तुम जाकर एक बड़ीसी भैंस को पूँछ लाकर मुझे दो ।” उनकी यह बात सुन, सुलसने एक मरी हुई भैंसकी पूँछ लाकर परित्राजकको दी । योगीने उस पूँछको छः महीने तक तेलमें डुबो रखा । इसके बाद योगीने एक हाथमें, कल्प-पुस्तक और दूसरे हाथमें वही पूँछ रख ली और सुलसके माथे पर दो रस्से, दो तुम्बियाँ, एक छटोली, बलिदान-की टोकरी और अग्निका पत्र रस दिया और दोनों वहाँसे चलकर पर्वतके मध्यमें गुफाके द्वारपर आ पहुँचे । वहाँ जो यह प्रतिमा रखी थी, उसकी पूजा कर, वे दोनों गुफाके अन्दर घुसे । वहाँ जो कोई मूल, बैताल राक्षस बिघ्न करनेके लिये उठ खड़ा होता था, उसे सुलस नि-निडर मनसे बलिदान देता जाता था । यह देख, योगी बड़ा प्रसन्न हुआ । आगे जाने पर एक विवर मिला । उसमें खूप अँधेरा था । उस अन्धकार-को दूर करनेके लिये, उन्होंने वही भैंसकी पूँछ जलायी और उसीके प्रकाशमें वे दोनों उस योजन-प्रमाण विवरको पारकर गये । इतनेमें चार हाथ लम्बा और चार हाथ चौड़ा चौरस रसरूप देखकर दोनोंको बड़ा हर्ष हुआ । इसके बाद योगीने उस छटोलीको तैयार कर उसके दोनों ओर दो रस्से बाँध दिये और सुलससे कहा,—“सुलस ! तुम इन दोनों तुम्बियोंको हाथमें लिये हुए इस छटोली पर बैठ कर कुर्ममें उतर पड़ो ।” यही सुन, सुलस दोनों तुम्बियाँ लिये हुए छटोली पर बैठ गया । योगीने धीरे-धीरे रस्सेको नीचे लटकाना शुरू किया । क्रमशः वह रस्सेके पास पहुँच गया । इसके बाद वह नवकार-मन्त्रका उच्चारण कर रस लेने लगा, इसी समय उसके भीतरसे शब्द निकला,—“यह रस आदमीको कोढ़ी बना देता है, इसलिये हे साधर्मिक ! तुम हाथसे इस रसको मत छुओ । यदि यह रस देहसे छू जायेगा, तो तुम्हारी जान चली जायेगी । तुम जैन-धर्मके आराधक हो, इसलिये मैं तुम्हारी सहा-यता करनेको तैयार हूँ । इन दोनों तुम्बियोंको तुम मुझे दे दो—मैं इनमें रस भर दूँगा ।” यह शब्द सुन, सुलसने कहा,—“तुम मेरे धर्म-बन्धु हो, इसलिये मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ । कहा है, कि—

“अन्ने ऐं जाया, अन्ने ऐं बरिडा देहा ।

उं डिग्गामावराणा, ने व मे वन्धवा भन्निवा ॥ १ ॥”

अर्थात्—“ओ अन्न देशमें उत्पन्न हुए और अन्न देशमें ही
जिनके गलागले गुंथि जायीं हैं, वे भी जिन मातनानुरक्त होनेके कारण
मैं वन्धु हूँ ।”

“अब तुम मुझे अपना वृत्तान्त कह सुनाओ । मुझे बड़ा आश्चर्य हो
रहा है । तुम कौन हो और इस कुर्यमें कैसे आ पहुँचे हो, यह सब
मुझे बतला दो ।” इसके उत्तरमें उत्तने कहा,—“हे वन्धु ! मेरा हाल
सुनो । मैं बिद्यालानगरीका रहनेवाला जिनरोवर नामका बणिक् हूँ ।
व्यापारके निमित्त जहाज़ पर चढ़कर मैं समुद्रमें जा रहा था, कि एका-
एक रास्तेमें मेरा जहाज़ नष्ट हो गया । बड़े कष्टसे एक तख्ता पकड़
कर मैं अंतिमों समुद्रके बाहर निकला । इसके बाद उल्लूकमें घूमते-
फिरते मुझे एक परिव्राजक मिल गया, जितने मुझे रत्तका लोभ
दिखा, उस कुर्यमें लाकर डकेल दिया । ओहो मैं तुम्हियाँ नर कर
कुर्यके मुँह पर पहुँचा था, त्योंही उत्तने मुझसे तुम्हियाँ लेकर मुझे
कुर्यमें डाल दिया । मैं अनुमान करता हूँ, कि तुम्हीं भी वही योगी
कुर्यमें उतार लाया है । वह बड़ा ही दुष्टात्मा है । उस पर हरगिज़
विश्वास न करना । “हे सुधावक्त्र ! अब तुम भी मुझे अपना नाम
आदि बतला दो ।” इसके उत्तरमें सुलतने उत्तसे अपना वृत्तान्त कह
सुनाया । इसके बाद उसके साधर्मिकने वे दोनों तुम्हियाँ रत्तसे नर
कर उत्ते दे दीं । तदनन्तर छोटेलोंके नाँवसे दोनों तुम्हियोंको बाँधकर
सुलतने रत्ता डिलाया । तब परिव्राजकने उसे कुर्यके मुँहके पास-
तक धाँच लाकर कहा,—“हे भद्र ! पहले तुम मुझे वे दोनों तुम्हियाँ
दे दो, इसके बाद मैं तुम्हें बाहर निकालूँगा ।” सुलतने कहा,—
“दोनों तुम्हियाँ सूर्यमण्डपूतोंके साथ छोटेलोंके पायेंमें बंधी हैं ।” यह
सुन, योगीने उत्तसे फिर तुम्हियाँ माँगीं, पर उत्तने नहीं दीं । तब
उत्तने तुम्हियों सहित सुलतको कुर्यमें डाल दिया और आप कहीं और

चला गया। शुभकर्मोंके योगसे सुलस कुर्य की मेखलाके ऊपर बा गिरा—रसमें नहीं डूबने पाया। तब वह बड़े ऊँचे स्वरसे नवकार-मन्त्रका उच्चारण करने लगा। कहा भी है, कि—“यह श्रेष्ठ नवकार-मन्त्र मङ्गलका स्थान है, यह भयका नाश करता है, सकल संघको सुख उत्पन्न करता है और चिन्ता करनेसे ही सुख देनेवाला है।”

इसके बाद अत्यन्त दुःखित हो कर वह आप-ही-आप अपनेको इस प्रकार बोध देने लगा,—“हे जीव ! यदि तुमने परिग्रहसे विरति कर ली होती, तो हरगिज़ ऐसे कष्टमें नहीं पड़ते। हे प्राणी ! अब भी तो तुम अपनी आत्माको साक्षी दे कर संयम ग्रहण कर लो और अनशन-व्रत करना आरम्भ करो। ऐसा करनेसे तुम्हारा शोच ही इस संसारसे निस्तार हो जायेगा।” ऐसा कह कर वह ज्योंही चारित्र लेनेको तैयार हुआ, त्योंही कुर्य के मध्यमें रहनेवाला जिनशेखर धावक बोला,—“हे भद्र ! चारित्र ग्रहण करनेको ऐसे आतुर मत होमो। इस कुर्यसे निकलनेका एक उपाय है। उसे सुन लो। एक बड़ा भारी साँझ किसी रास्तेसे कभी-कभी यहाँ रस पीनेके लिये आता है। ज्यों-ही वह रस पीकर पीछे लौटने लगे, त्योंही तुम धूष मङ्गयूतीसे उसकी पूँछ पकड़ कर बाहर निकल जाना। मैं अब मरा चाहता हूँ, इस लिये मुझे आराधना करामो।” यह सुन, उसका अन्तिम समय आया ज्ञान, जिनशासनके तत्त्वको जाननेवाले सुलसने उसे उत्तम आराधना करायी ; निर्यामणा करायी ; चार शरण कह सुनाये; अरि-हन्त, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु जिनमें मुख्य है, ऐसे पाँच पदोंकी आख्या करके उसे उनका स्मरण कराया और बीरासी लाख जोषयोनिके जीवोंका मिथ्यादुष्ट दिलवाये। इस प्रकार आगममें पतलायी हुई आराधना सुलसने उसे विस्तारके साध करा दी, जिसे जिनशेखर धावकन अपने चित्तमें अङ्गीकार किया। इसके बाद अनशन ग्रहण कर, मन-ही-मन नवकार मन्त्रका स्मरण करते हुए शुभ-ध्यान-पूर्वक मृत्युको प्राप्त हो कर वह श्रेष्ठ धावक आठवें देव-

देखा । वस, यह आलस्य छोड़, आश्चर्य सहित उस शास्त्रापर पहुँच गया । यहाँ उसने एक पक्षीके घोंसलेमें एक उत्तम मणि और सर्प-को ठठरी देखी । यह देख, उसने सोचा,—“अवश्य ही यह विष उतारनेवाली सर्प-मणि है । इसीका यह प्रकाश है ।” ऐसा विचार कर, उस रत्नको हाथमें लिये हुए सुलस उस वृक्षसे नीचे उतरा । उस मणिका प्रकाश देख, बाघ और सिंह भी भाग गये । क्रमशः सवेरा हो गया । इसके बाद उस मणिको पत्थरके छोरमें बाँधे हुए वह सात दिन बाद उस जङ्गलके पार हुआ । यहाँ एक पर्वतपर आगका उँजेलो देखकर सुलस उसीकी सीधपर चलकर यहाँ पहुँचा और कितने ही आदमियोंको धातुवाद करते देखा । द्रव्यकी इच्छासे वह कितने ही दिन तक उनके पास रहा और उनकी सेवा करने लगा । यह उन्हीं लोगोंके साथ खाता-पीता भी था । सुवर्ण सिद्धिके लिये उसने बहुत दिनोंतक धातुवाद किया, परन्तु जब कुछ भी अर्थसिद्धि नहीं हुई, तब उसने अपने मनमें सोचा,—

‘धातु धमेविष्णु जा धन्य आसा, सिर मुंरेविष्णु जा स्वभासा ।

येम धरेविष्णु जा धर आसा, निधिषी आसा हुइ निरासा ॥१॥’

अर्थात्—“धातु फूँके बिना धनकी आशा, सिर मुँहाये बिना रूपकी आशा, और वेश बनाये बिना घरकी आशा, ये तीनों आशाये मुझे तो निराशा रूपमें हुई हैं ।”

ऐसा विचार कर, यह एक दिन धातुके विषयमें मग्नचित्त और निरस्तह होकर रातको सोया हुआ था,—कि इसी समय उन धातु-वादी पुरुषोंने उस नीड़में बेहोश देख, उसके पत्थरके छोरसे यह मणि निकाल ली और उसके स्थानमें एक पत्थरका टुकड़ा बाँध दिया । इसके बाद प्रातःकाल उठकर सुलस यहाँसे चल पड़ा और क्रमशः अटपटी शीर्षक नामक नगरमें आ पहुँचा । यहीं उस रत्नको बेचनेके लिये उसने अपने गाँठ खोली, तो रत्नकी जगह पर पत्थर देख कर वह सोचने लगा,—“ओह ! उन धातुवादियोंने तो मुझे लूट लिया । अब

उन्हीं में क्या दोष दूँ ? सब मेरे कर्मों का दोष है ।” ऐसा विचार कर वह मन-ही-मन झींकने लगा ।

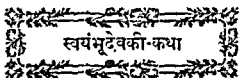
एक बार उसने अपने मनमें सोचा,—“मेरा जीना व्यर्थ है, अब मेरा मर जाना ही अच्छा है ।” ऐसा विचार कर, अंधियाले पाखकी चौदसके दिन आधी रातके समय, सुलस स्मशान-भूमिमें जाकर उच्च-स्वरसे कहने लगा,— ‘हे भूत-वैताल और राक्षसों ! तुम सब सावधान होकर मेरो एक बात सुनो । मैं महामांस बेचता हूँ, जिसे इच्छा हो, आकर ले जाये ।” उसको यह बात सुन, भूत, प्रेत और वैताल आदि किलकिल-शब्द करते, तत्काल हाथमें शस्त्र लिये, हर्षसे नाचते-कूदते हुए वहाँ महाभुखड़ोंकी भाँति आ पहुँचे और बोले,—“हे पुरुष ! यदि तुम वैराग्य प्राप्त कर, महामांस दे रहे हो, तो यहीं भूमिपर पड़ जाओ । हम तुम्हारा मांस ले लेंगे ।” यह सुन, सुलस निडर हो कर ज़मीनपर पड़ गया । इसके बाद ज्योंही वे भूत, वैताल आदि उसका मांस ग्रहण करनेके लिये तैयार हुए, त्योंही जिनशेखर देव, सुलसकी वह अवस्था देख, जल्दी-जल्दी वहाँ आ पहुँचा । उसे देखते ही सब भूत-प्रेत भाग गये । तब उस देवने कहा,— “हे सुलस धावक ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ । जिनशासनमें निपुण होकर भी तुमने ऐसा विरुद्ध कर्म क्यों करना चाहा था ? क्या तुम मुझे पहचानते हो ? मैं तुम्हारा मित्र जिनशेखर हूँ । तुमने मुझे कुपमें निर्यामणा करायी थी । तुम्हारी उसी आराधनाके प्रभावसे मैं सहस्रार नामक आठवें देवलोकमें जाकर इन्द्रकी समानताका देवता हो गया हूँ । इसलिये तुम मेरे गुरु हो ।” यह सुन, सुलस भी जिनशेखरको देव हुआ जान, उसे देखकर तत्काल उठ खड़ा हुआ और बोला,— “हे धर्मबन्धु ! मैं भी तुम्हें प्रणाम करता हूँ ।” यह कह, उसने कुशल-मङ्गल पूछा । इसके बाद देवने कहा,— “हे भद्र ! मैं तुम्हारा कौनसा मनचीता काम कर दूँ ? वह बतलाओ । तब सुलसने कहा,— “मुझे तुम्हारे दर्शन हुए, इससे मैं बड़ा सुखी हुआ; तो भी मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ, कि अभी मेरे गाढ़े अन्तराय

भङ्गीकार करनेके बाद उन्होंने बड़ी उप तपस्या की । क्रमसे सुलस सब कमोंका क्षय कर, उसी भयमे केवल-ज्ञानको प्राप्त हो, मोक्षको प्राप्त हो गया ।”

इस प्रकार पाँचवें अणुग्रन्थके विषयमें भगवान्-श्रीशान्तिनाथने राजा चक्रायुधको सुलसकी कथा कह सुनायी ।

सुलस-कथा समाप्त ।

फिर स्वामीने कहा,— “हे राजन् ! मैंने तुम्हें पाँचवें अणुग्रन्थका हाल सुना दिया । अब मैं तुम्हें दिग्परिमाणग्रन्थ, भोगोपभोग-परिमाण-ग्रन्थ और अनर्थ-दण्ड त्याग-ग्रन्थ इन तीनों गुणग्रन्थोंका वर्णन सुनाता हूँ, उसे सुनो । पूर्वादि चारों दिशाओं और ऊर्ध्व तथा अधो दिशामें गमन करनेका परिणाम करना ही दिग्ग्रन्थ नामका पहला गुणग्रन्थ कहलाता है । दिशाओंका प्रमाण नहीं करनेसे जीव अनेक प्रकारके दुःख पाता है । स्वयंभूदेव नामक वणिक्ने ऐसा नहीं किया, इसीलिये श्लेच्छ-देशमें जाकर उसने बड़ा दुःख उठाया था ।” यह सुन, राजाने पूछा,—“हे स्वामी ! उसका हाल कह सुनाइये ।” तब प्रभुने कहा,—



इसी भरतक्षेत्रमें गंगातट नामका नगर है । वहाँ सुदन्त नामके एक राजा रहते थे । राजा अपने नगरमेंही रहते और सर्वत्र दुर्न भेज-कर अपने अधीन देशभरका समाचार मँगवाया करते थे । उसी नगरमें स्वयंभूदेव नामक एक किसान रहता था । वह खेतोंका काम करता था, पर उसके जमीनमें सन्तोष नहीं था । एक दिन पिछलो रातको उठकर उसने सोचा,—“वहाँ रहनेसे मुझे जेसा चाहिये, ऐसा लाभ नहीं होता, इसलिये कहीं और जाकर खूब धन पैदा कर अपने समस्त प्रकारके सज्जद करके, नौ ठीक हों ।” ऐसा विचार कर, वह कनक-

व्यापारके लिये सामान लेकर उत्तराण्यकी ओर गया । वस्त्रमें वह लक्ष्मी-शीर्षक नामक नगरमें आ पहुँचा । उस नगरमें प्रवेश कर, उसने रातना व्यापार फैलाया । उसमें उसे भाग्यानुसार लाभ भी हुआ । यहाँसे वह धनकी भाशासे भीतर-ओर नगरोंमें भी गया, पर वहाँ भाग्यसे अधिक नहीं मिला । तो भी उसके मनमें यह बात नहीं आया, कि—

“भाग्याधिष्ठे धैर्यं भगवत्सिद्धिर्धनं, ददाति विष्णुः प्रियं धनमेवकल्प्यः ।

मित्रन्तरीं पण्डितं वात्स्यार-मनधापि पद्मप्रियं धनमे ॥१३॥”

अर्थात्—“राजा अपने सदाके सेवकोंसे भी उनके भाग्यमें अधिक धन नहीं दे सकता; पराश्रितोंमें निरन्तर वतभारा पड़ती रहने पर भी दाकके वही तीन पात होते हैं ।”

इस बातकी सोचे बिना वह भाग्यसे अधिक फलकी इच्छासे किसी दूसरे नगरमें गया । यहाँ बितने ही धनियोंको देखकर उसने पूछा,— “हे व्यापारियो ! तुम लोग किस देशसे आये हो ?” उन्होंने कहा,— “हम लोग व्यापार करनेके लिये चिलात-देशमें गये हुए थे और यहाँसे खूब मालमत्ता पैदा कर यहाँ आये हुए हैं ।” यह सुन, स्वयंभूदेवने बहुतसा कियाना माल ले, धाने-पीनेकी सामग्री तथा बहुतसे आदमियोंके साथ, उस देशकी ओर प्रस्थान किया । क्रमसे चलते हुए महा-तप्त बालुकामय मार्गको पारकर, अति शीतल हिममार्गको भी लाँचकर, वह अति विपन्न मार्गतीय मार्गमें आ पहुँचा । लोभके फन्देमें फँसा हुआ आदमी क्या-क्या नहीं करता ? इसके बाद वह चिलात-देशके पास पहुँच गया इतनेमें वहाँके भुँच्छ-राजाका जो शत्रु-राजा था, उसके सैनिकोंसे उसको मुत्ताकात हुई । उन शत्रु-राजाने जब सुना, कि यह आदमी चिलात-देशमें जा रहा है, तब उसका सारा सामान लूट लिया और उसे अपने नगरको ओर लौट जानेका मजबूर किया । परन्तु स्वयंभूदेव किसी-किसी तरह उन लोगोंकी नज़र बचाकर गुप्त रीतिसे चिलात-देशमें पहुँच गया । वहाँ भालोंके लड़कोंने उसे पकड़कर उसके सारे शरीरकी दधिरसे पोत दिया । इसके बाद उन दुष्टोंने उसे एक जंगलमें ले

जाकर छाड़ दिया । वही उसे मुरदा समझकर उसपर बहुतसे पत्थर
भाँकर बेड़ने लगे और थोथकी ठाकरसे उसे पीड़ा पहुँचाने लगे । यह
देख, भोल-वालकोंने बाण मारकर गिद्ध भादि पक्षियोंको मार गिराया ।
इस प्रकार सत्प्राप्यन्त उसकी फुड़ोहत कर, ये उसे घर ले भाये
और उसे बन्धनमें मुक्तकर, खिला-पिलाकर थड़े पदसे उसे घरमें
छिया रखा । कुछ दिन फिर उन सबने उसकी घेसी ही चिट्छमना
की । इस प्रकार उसने बहुत दिन तक दुःख भोगा । एक दिन भोलोंके
लड़कोंने उसकी घेसा हा दुर्गतिकर, उसे जंगलमें छोड़ दिया । इतनेमें
वही एक बाघिन आया । उसके डरके मारे भोलके ये लड़के भाग गये
और वह बाघिन स्वयम्भूरेषको उठाकर अपने बघोंके भाजनके छिपे
बहुतमें ले गया । वही भाना झाड़में उसके हाथ-पैरोंके बन्धन काट-
कर, उभे वही छाड़, वह बाघिन अपने बघोंको बुलाने चली गयी । इसी
समय स्वयम्भूरेष वहाँमें आगा और वहाँमें आना शोरधा, एक क्रांति-
लेके मङ्ग हो लिया । उन्हीं लोगोंके साथ चलकर वह कुछ दिनों बाद
अपने घर पहुँचा । वही पहुँचकर उसने सोचा, —“र जीव ! तू अधिक
खेनके कारण निरकाळ तक दुनियाँ भरकी ह्वाक छानता फिरा, पर
तू नरसिंह भोजन भी न पा सका तू जाता घर लौट आया, इसीकी वड़ा
जागलाय समझ ले ।” इस प्रकारका विचार मनमें भानसे उसे बेगण
हल्य हो गया और उसने एक मुनिमें चरित्र ग्रहण कर लिया तथा उसका
अतिशय महिम्न वालनकर, आगुथ्य पूजे होने पर, प्ररकर क्या क्या गया ।

स्वयम्भूरेषका समाप्त ।

यह क्या सुनाकर भोजानन कहा, —“लोगोंलोग का प्रमाण कर देता
दूसरा गुण्यन कर जाता है । वह मन भाजन और कर्मके भेदा से प्रका-
र का है । इससे भोजन का मत यह है, कि किसीका मनुष्य अन्यथाय
कोई अन्यथाका मनुष्य न करे और समस्त घर का (कर्मदेन)
न्याय करना, कर्मका मत कह जाता है । इससे जो भोजन विनाक कर्म
इन वंशके भोजनारोका त्याग करना चाहिये—१ मरिचक मटर, २

सचित्त * मिथनाहार, ३ दुग्धक आहार, ४ अपक आहार और ५ तुच्छ औषधिका भक्षण-भोजनके विषयमें येही पांच अतिचार कहे जाते हैं। कर्मके विषयमें अङ्गर-कर्म बादि पन्द्रह कर्मादानोंको ही पन्द्रह अतिचार समझना चाहिये। हे चक्रायुध राजा ! तुम्हें इन सब अतिचारोंका त्याग कर देना चाहिये। भोगके विषयमें जितशत्रु राजा तथा उपभोगके विषयमें नित्यमण्डिता ब्राह्मणों का दृष्टान्त है।^१ भगवान्की यह बात सुन, चक्रायुध राजाने उनसे इन दोनोंकी कथा पूछी। इसपर प्रभुने मधुर वाणीमें कहा,—

अजितशत्रु राजाकी कथा ।

इसो भरतक्षेत्रमें वसन्तपुर नामका नगर है। उसमें जितशत्रु नामके एक राजा रहते थे। उनके मन्त्रोंका नाम सुबुद्धि था। राजा उसे बहुत मानते और प्यार करते थे एक बार उल्टी शिक्षा पाये हुए दो घोड़ों पर राजा और मन्त्रों सवार हुए। वे घोड़े उन्हें एक निर्जन वनमें ले गये। वहाँ वे दोनों तीन दिन तक भटकते फिरे। इतनेमें पीछे लौटती हुई उनकी सेनासे उनकी मुलाकात हो गयी। उन्होंने साथ-साथ वे दोनों चौधे दिन भूखे-प्यासे अपने घर आये। क्षुधासे पीड़ित राजाने उसी समय अपने रत्नोंके बलवाकर उससे अथन्य, मयम और उत्तम सब तरहकी रत्नों तुरत तैयार करवायी। कहा भी है, कि—

‘यिविधमुदितमन्नं शृङ्गावरणं सुवीर्यं,
जलदक्षच्छतपुष्पं पल्लवं पञ्चवाक्स्त्रैः ।
जलपत्तनमनेतन्मांसमेनं त्रिधा हि,
पदस्तजलपुच्छं भोज्यमष्टादशं च ॥ १ ॥’

अर्थात्—“तीन प्रकारका अन्न, शृङ्गा-वंड, सुवीर्य, जलसे उत्पन्न,

* ये पन्द्रह घेऊँकी सन्मने नहीं आते ; पर सन्मन्तः इनका अर्थ वन-मन्त्रियों, पस्वान्नों तथा पक्षों हुए पदायोंका आहार है।

पुष्प, पुष्प और फल तथा परलव और पौष प्रकारके भात । इनके
 भोजन बड़बड़, बलबल और नमबलका (अर्थात् सेषर-नोर्बपोष)
 नाम—इन सबको बड़बल-पुष्प बलके साथ तैयार करना—येही
 अठारह प्रकार भोजनक है ।

इसके बाद भद्रके नाटकका नुस्खात्मक मन-ही-मन यादुकरने हुए राजा
 ने पहले अफस्य आहार किया । इसके बाद मध्यम और उत्तम आहार
 भी इस तरह गलेतक नुस-नुस कर खाया, कि उनके पेटमें हवाकी भी
 गूंझाव न रही । इससे राजाको हेजा हो गया । उसी बीमारीसे
 मरकर ये अमर हुए । सुबुद्धि मंत्रोंने अपने शरीरकी हालत देख,
 भाक-समझकर भोजन किया, स्वीलिये यह गूथी नहीं हुआ । ए
 प्रकार नेन तुर्ल भागमें लुब्ध होनेका पुरा नतीजा कपाके द्वारा क
 गया । सब शक्तियोंकी निगूथि नहीं होनेसे जो दोष होता है, उसे जो
 कल-वासे देना है ।

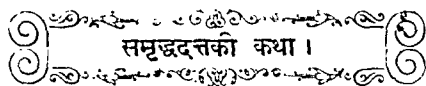
ॐ नित्यमगिडना ब्राह्मणाकी कथा । ॥६॥

इसी भक्तज्ञानने कर्न नामका एक गाँव है । इसमें देहाक अन्धकार
 ने अन्ध अन्धरे नामका एक ब्राह्मण रहता था । उसकी अर्थात् नाम
 तुम्हारा था । गाँवके लोग इस ब्राह्मणका बहुत मानते थे, इसीसे
 अन्धकार के भिन्न भावा करता था । इसी बातकी वहीकर वह कल
 अन्धकार हो गया । एक समयकी बात है, कि इस ब्राह्मणने अपनी
 कलके अन्धकार देखके बहुत-बहुत गहन बनवाये । इस दिनकी
 बात इस मन्त्र कलहारीका उद्गार हुई रहने लगी—वह कल
 नहीं जानता था वह देख इस कलहारीका,—वह ! इस कल
 कलहारी कलहारी कलहारीका दिन गहन अन्धकार का प्रारंभ
 कलहारी कलहारी कलहारीका दिन गहन अन्धकार का प्रारंभ

दम कितारें हैं । अगर कहीं किसी दिन घरमें चार घुस पड़े, तो ये गहने तुम्हारे लिये फुसाइका घर ही जायेंगे । यह सुन, उनमें कहा,— “यदि तुम्हें मुझें इन्हें पहननेकी देना नहीं था, तब तुमने इन्हें बनवाया किस लिये ? मेरे म्हालसे तो इन्हें पहने रहना ही ठीक है । जब चार आयेगें, तब मैं इन्हें भटपट उतार फेंकूंगी ।” यह सुन, वह ब्राह्मण चुप रह गया । एक दिन उस गाँवपर भोल्लोंकी बड़ी प्रचण्ड चढ़ाई हुई और वैद्योगसे ये उसी ब्राह्मणके घरमें घुस पड़े । उस समय भोल्लोंने उस ब्राह्मणकी पत्नीको गहने पहने देख, उसे पकड़ लिया, पर चूँकि वह बड़ी छष्ट-पुष्ट थी, इसलिये ये गहने उसके शरीरसे आसानीके साथ नहीं निकल सके । यह देख, उन भोल्लोंने उस ब्राह्मणीके हाथ-पैर आदि बहुत बड़ी निर्दयताके साथ काट डाले और उसके सब गहने लेकर चम्पत हो गये । वह ब्राह्मणी आर्त्तध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हो, नरकमें गयी ।

भोगोपभोग पर नित्य मगिडता ब्राह्मणी की कथा समाप्त ।

फिर श्रीशान्तिनाथ भगवान्ने चक्रायुध राजासे कहा,—“हे राजन् ! तीसरा गुणव्रत अनर्थ-दण्ड-त्याग है । अनर्थके चार भेद हैं । पहला यह है, जो एक मुहूर्त्त यादही अपध्यान कराता है । दूसरा, जो प्रमादका आचरण कराता है । तीसरा, जो हिंसाके उपकरणों-को दूसरेको देता है और चौथा, दूसरेको पाप-कार्य करनेका उपदेश देता है । इसव्रतके विषयमें समृद्धदत्तकी कथा प्रसिद्ध है । यह इस प्रकार है—



समृद्धदत्तकी कथा ।

धातकी पण्डके भरतक्षेत्रमें रैपुर नामक एक नगर है । उसमें रिपुदमन नामके राजा रहते थे । उसी नगरमें समृद्धदत्त नामका एक

किसान भी रहता था । वह एक दिन भापी रातको उठकर मन-ही-मन विचार करने लगा,—“यदि मुझे लक्ष्मी प्राप्त हो जाये, तो मैंही राजा हो जाऊँ और भरतक्षेत्रके छहों खण्डोंको पैरोंतले ले भाऊँ । इस के बाद धैर्याध्य-पर्यंतपर रहनेवाले विद्याधर मुझे आकाशगामिनो किया बतला देंगे । उस विद्याके प्रभावसे मैं आसमानमें उड़ता फिरूँगा ।” ऐसा सोचते-सोचते समृद्धिदत्तने शय्यापरसे ही आसमानकी ओर उलर्गि मारी और नीचे गिर पड़ा । उसके शरीरको बड़ी बोल पहुँची । उसकी चीख सुनकर घरके मादमी इकट्ठे हो भाये और उन्होंने उसे फिर पलंगपर सुला दिया । कितने दिन बाद बड़ी बड़ी मुश्किलोंसे उसकी पीड़ा दूर हुई और वह स्वस्थ शरीरवाला हो गया ।

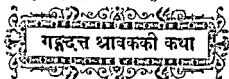
१—एक दिन उसने सब लोगोंके सामने ही बहुतसा धन देकर एक अच्छीसी तलवार खरीदी । एक दिन वह तलवार भूलसे घरके भाँगनमें ही पड़ी रह गयी और वह भन्दर आकर सो रहा । जब दोपहर रात बीत चुकी, तब उसे उस तलवारकी याद आयी, परन्तु उसने प्रमादप्रश तलवारको घरमें लाकर नहीं रखा और “मेरी तलवार मल कीन दुपणा १” यहो सोचकर सो रहा । रातके चौथे पहर उस घले घोर पीठे और यहो तलवार लिये हुए अपने घर चले गये । एक दिन उन घोरोंने उसी खड्गके प्रतापसे किसी तरह नगर सेंठके पुत्रको हल कर जेद कर लिया । इसी समय राजपुरुषोंने उन घोरोंको मात घोरोंने भी सेंठके खड्गकेकी जान ले ली । राजकर्मचारियोंने घोरोंने घरसे बरामद की हुई यह तलवार ले जाकर राजाको दे दी । यह देव कोधिल होकर राजाने उसे बुलाकर कहा,—“दे दुष्ट ! क्या तूने ही यह पाप किया है ?” उसने कहा,—“नहीं, स्वामी ! मैंने हरगिज नहीं किया ।” राजाने पूछा,—“यह तलवार तुम्हारी है या नहीं ? यदि तुम्हारी तलवार लेकर किसी दूसरेनेही यह पाप-कर्म किया हो, तो भी तुम्हीं इस पापके करनेवाले समझे जाओगे ।” वह

सुन, उसने राजासे अपनी तलवारको भूलसे उठाकर नहीं रखनेका हाल कह सुनाया । तो भी राजाने उसके अपराधके लिये उसे दण्ड देकर छोड़ दिया ।

२—एक दिन राजाका एक शत्रु उसके पास विष लेने आया । उसको प्रकृति जाने बिना ही उसने उसके हाथ विष बेंच दिया । उस शत्रुने राजा और प्रजाका नाश करनेकी इच्छासे यह ज़हर ले जाकर गाँवके ठालाबानें डाल दिया । उस ज़हराँले पानीको पीकर बहुतेरे मनुष्य मर गये । जब राजाने यह बात सुनी, तब इत मानलेको उड़का पत्रा लगाते-लगाते उन्हें मालूम हुआ, कि सन्तुष्टिदत्तने ही उनके शत्रुके हाथ विष बेंचा था और उसने उसके यहाँसे ज़हर लाकर प्रजाका नाश करनेके इरादेसे उसे सरोवरके उलमें डाल दिया था । यह बात मालूम होनेपर राजाने उसे दुलवाकर उसपर जुर्म कायम किया और उसे सज़ा दी ।

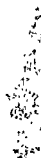
३—एक दिन वह गाँवको सनानें देखा हुआ था । इसी समय एक किसान दो बछड़े लिये हुए उधरसे जा निकला । यह देख, सन्तुष्टिदत्तने उससे पूछा,—“ये दैल सघे हुए हैं या नहीं ?” उसने कहा,—“नहीं ।” तब उसने फिर कहा,—“इन्हें बड़ों बेरहमोंके साथ उड़े मार-मारकर अच्छी तरह साथ लेना चाहिये ।” उसका यह कट्टेर वचन सुन, वे दोनों बछड़े उसपर बड़े क्रोधित हो उठे । प्रायः प्राचीनावको अपने प्रति कटुवचन कहनेवाला अद्रिप मालूम होता है । इसके बाद उन चेलोंके स्वामोंने उन्हें ज़बरदस्ती गाड़ोंने जोत दिया । उनके शरीर कोमल होनेके कारण, उनको अति निष्ठुर पड़ों और वे दोनों ही, ब्रह्म-निर्झरा द्वारा अपने अशुभ कर्मोंका क्षय कर मरनको प्राप्त हो, अन्तर हो गये । तब सन्तुष्टिदत्तकी अन्ना शत्रु समझकर उन्होंने उसके शरीर-ने तरह-तरहकी व्यधियाँ उत्पन्न कर दी और कहा,—“मरे जानो ! तूने जो उन दोनों चेलोंके बरानें देनतत्व ही पक्षेन्द्रेण दिया था, उसका मतमेमांति फल आज भोग ले ।” यह कह, वे उत्तर अन्ना पन्थराना

भगवान्ने कहा,—“अब मैं दूसरा देशायकाशिक नामक शिवाका
 पतलाता हूँ । इस मतमें विष्णुके परिमाणका और अन्य सब बातोंका
 सारा संक्षेप करना होता है । इसके आनयन प्रयोग ७ भादि पाँच
 मतिधार है । इस मतको शुद्ध रीतिसे निवाहनेसे गङ्गदत्त श्रावकको
 तरह मनुष्यके लोक परलोक सफल हो जाते हैं ।” भगवान्की यह बात
 सुन, श्रावकोंने उनसे गङ्गदत्तकी कथा सुनानेकी कहा । भगवान्ने
 उसकी ओ कथा सुनायी, यह इस प्रकार है,—



इसी मरतक्षेत्रमें शंखपुर नामका नगर है । उसमें गङ्गदत्त नामका
 एक प्रसिद्ध वणिक् रहता था । एक दिन उसने गुरुसे श्रावक-धर्म
 ग्रहण किया । यह निरन्तर बारहों मतोंका पालन करता था । एक दिन
 उसने देशायकाशिक मत ग्रहण किया । उसदिनउसने सोचा,—“भात्र
 में चेत्यके सिवा और किसी जगह घरसे बाहर नहीं जाऊँगा । इस
 प्रकारका अभिग्रह ग्रहण कर वह घर पर हो रहा । उसी समय उसके
 किसी मित्र वणिक्ने आकर कहा,—“भात्र नगरके बाहर एक कृत्रिम
 भाया हुआ है । अगर तुम यहाँ चलो, तो हम दोनों यहाँ जाकर सस्ते
 भावसे किराना खरीदें और खूब लाभ उठावें ।” यह सुन, गङ्गदत्तने
 कहा,—“मित्र ! भात्र गा मैं नहीं जा सकता । मैंने भात्र ही देशायका-
 शिक मत लिया है । भात्र में चेत्यके सिवा और किसी जगह घरसे
 बाहर नहीं जा सकता ।” उसके मित्रने फिर कहा,—“मित्र ! भात्र
 बड़ा लाभ होनेका सम्भावना है । इसे क्यों हाथसे जाने देंगे ?
 तुम फिर किसी दिन मत ले लेता ।” गङ्गदत्तने कहा,—“मित्र ! जिससे
 धर्मकी हानि हो, ऐसे बड़े भाइयवरवाले लाभका क्या फल होगा ? मैं

७ निवेदन बारह ध्यानेमें कीं भात्र दूरमेंके द्वारा मेरा नाम ध्यान
 प्रयोग करवाता है ।



भेद केवल मेधुनसे परहेज रखना और हस्त-स्पर्शादिके विषयमें स्वतन्त्रता रखना है। घोषा अग्न्यागार नामका पौषध है। यह भी दो तरहका होता है। इनमें सर्व सावध-ध्यापारका त्याग करना पहला और इसके किसी-किसी ध्यापारका त्याग करना दूसरा भेद जानना चाहिये। (पौषध करते हैं उसमें आहार-पौषध देशसे और सर्वसे होता है। बाकीके तीनों प्रकारके पौषध सर्वसे ही होते हैं) इस व्रतके ऊपर जिनचन्द्रका दृष्टान्त प्रसिद्ध है।" यह सुन, चक्रायुध राजाने यह कथा सुनानेकी प्रार्थना की। तब प्रभुने जो कथा कही वह इस तरह है,—

जिनचन्द्रकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें सुवर्तिष्ठिन नामका नगर है। उसमें भक्तवर्तमान नामके राजा राज्य करते थे। उसी नगरमें अंतधर्ममें अति निष्ठल जिनचन्द्र नामका एक श्रावक रहता था। उसके मनोहर कपयाली तुन्दरी नामकी पत्नी थी। एक दिन जिनचन्द्र श्रावक किसी पर्य शिवसङ्के उपलक्ष्यमें गुन-वासनासे पौषध ग्रहण कर पौषधकालमें पड़ा हुआ था। उस समय शम्भुचन्द्रने भवविज्ञान द्वारा उसकी निष्ठल होकर पौषधग्रहण किये हुए जानकर देवताओंकी समामें उसकी इस प्रकार प्रशंसा की,—“महा ! जिनचन्द्र नामक श्रावक पौषधव्रतमें ऐसा निष्ठल हो रहा है, कि उसे देवता भी नहीं डिगा सकते।” यह सुन, इसकी प्रशंसासे अलभुनकर एक देव, इन्द्रकी आज्ञा से, उसकी परीक्षा करनेके लिये आया। उस समय उस देवने मायासे प्रातःकाल हुए बिना ही सूर्योदय उत्पन्न कर दिया और उसकी वहनका कप धारण किये उसके पास आकर कहा,—“भाई ! तुम्हारे लिये यह मंत्र है आओ इसे। सूर्योदय हो गया है, इसलिये पौषध पूर्ण कर, वारना बने।” वहनकी यह बात सुन, अपने माथा,—“मैंने जिनना धर्मध्यान किया

और शिवजी करनेकी बाकी है । उनके अनुमान विचार करनेसे जो भी दिव होता अथवा भोग्य होता है । इसलिये यह भगवान् हो । जो देवका भोग्य भोग्य होता है ।" वही माने कर यह पुत्र होगा । तब बाद इस देवने उनके शिवका भी भोग्य कर, सुगन्धित चिन्ते-न और पुत्र लाकर उनके पास रख दिये । पर इसने अपने हाथ जो ही लगाया । उससे होता तक नहीं । तब इस तरह बालेने भी कर ही दिया, तब इस देवने अपनी भाषासे एक पुरुष पनाया और इस लक्ष्मी उसकी भार्याके साथ विहायना करने हुए दिखाया । जो जो यह धनु प्रायककी कौर या होम नहीं हुआ । इस प्रकार अनुत्पन्न इस-लिये उसे विचार जान कर उस देवने शिव और शिवजी आदिदेव प्रति-हृत करनेसे दिव जाने मुक्त किये । ता जो उसे होम नहीं हुआ । तब इस देवने अपना भी प्रकट कर, शिवकी भी हुई प्रयोगका हाथ सुनने पर उससे कहा,— "हे प्रायक ! मे सुन्हाय कौनसा दिव कावे कह ?" तब सुन, उसने निरुद्धताके कारण कुछ भी नहीं माना । तब फिर उस प्रमे कहा,— "हे प्रायक ! देवका दर्शन कभी निपात्र नहीं होता — इस लिये कुछ भी तो मानो ।" तब त्रिनन्दने कहा,— "हे देव ! लोचने देनधर्मका प्रभावना हो, ऐसा काम करो ।" यह सुन, उस देवने अपने शिव मदिन त्रिनन्दनेने जो, महाहिता महोत्सव किया और सुन-मिने पुण्यसे धोत्रिनन्दनकी पूजा की । इसके बाद यह त्रिनन्दनके नामने यादुदरकी ऊँचाकर नृत्य करने लगा । यह देव, सब लोगोंने लक्ष्यके साथ पूजा,— "महा ! धोत्रिनन्दनका महोत्सव केसा है ?" इसने कहा,— "इस त्रिनन्दनका प्रभाव बलशुभ और चिन्तामयिते भी अधिक है । इनके प्रभावसे प्रायिकोका सग्न और मोक्षका सुख प्राप्त होता है । इसलिये सुधाधियोंकी चाटिये, कि धोत्रिनन्दनसनेके विषयमे मनकी नाराधनासे सर्वथा दल करने रहे ।" देवका यह वचन सुन, लोग भी त्रिनन्दनके तत्पर हो गये । इस प्रकार त्रिनन्दनकी प्रभावना कर, यह देव त्रिनन्दन प्रायककी आज्ञा लेकर तीर्थमे लौकने चला गया ।

बहुष" इच्छानुसार परस्पर बातें करने लगीं । उनका ससुर भी कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगा ।

प्रथम यन्त्रमती नामकी बड़ी यह बोली,—“हे सखियों ! अब अपने अपने मन की बातें सुलकर कहो-सुनो ।” यह सुन शीलमतोने कहा,—“कहीं कोई और हमारी बातों को कान लगाये सुनता न हो, इसलिये मन की बातें करनी उचित नहीं है ।” यह सुन, दूसरी बोली,—“हे शीलमती ! तुम व्यर्थ ही भय न करो, यहाँ तो कोई नहीं है ।” तब सयसे छोटी बहूने कहा,—“गहले तुम लोग अपनी-अपनी बातें कह जाओ, इसके बाद अब मेरी बारी आयेंगी, तब मैं भी कह सुनाऊँगी ।” यह सुन, पक्षी बड़ी बहूने कहा,—“भच्छी तरह पकायी हुई गरमागरम खिचड़ी और उसमें ताज़ा घो पड़ा हुआ हो, तो मुझे बहुत भच्छा मालूम होता है । इसके सिवा वही भयया घीके साथ साथ रखी हो और उसके साथ आमके भँवार हो, तो मुझे बहुत भच्छा मालूम होते हैं ।” इसके बाद कीर्त्तिमतीने कहा, “मुझे खाँड़ और घीके साथ साथ खीर मल्लू लहान्ती है । भयया घीके साथ-साथ दाल मात और उनके साथ कड़वा और खट्टा माग मुझे बड़ा भच्छा लगता है ।” तब तीसरी शान्तिमती बोली,—“मेरा पसंद सुनो । उमरा लड्डू और पचयान मुझे बहुत पसंद आते हैं । सायदी टार और पूरियाँ मुझे बहुत रुचनी हैं ।” इसके बाद चौथी शीलमतोने कहा, “मेरी वज्रके दिग्गमों से ऐसा कोई काम पसन्द नहीं रखती, क्योंकि लोग कहा करने है, कि पेट केवल वज्र खाइया है — वह काम करके पूरी, मिठाई मादि नहीं मागता । इसलिये मेरी तो वही इच्छा रहती है, कि उसमें सुगन्धित कलमें स्नान कर, शरीरमें चन्दनादि का लेपन कर, मच्छे में पत्र पत्रन तथा उत्तम कलकलमें शरीर का मल्लू-मल्लू कर, मसूर दल तथा मसूरों का नाचन करा, करके अन्य मनुष्यों का भी मसूर कर तथा दल दूधियाँ का दल है, अन्यमें बाज्रा तथा गुना जो कुछ भी अन्य मसूर तथा दल का मिश्रण करे । इसमें मेरी इच्छा पूरी हो जाती है ।” अब शील-

मतलब अपना यह इच्छा प्रकट की, तब उसे सुनकर दूसरी बोली,—
“तेरी इच्छा तो ऐसी है, कि जो कभी पार न लगे, क्योंकि कितानेके
घरमें बैसा बच्छ भोजनहो मिलना दुर्लभ है, फिर उत्तम वस्त्रों और
अलङ्कारोंको तो बात ही क्या है ?” उस को बात पूरी हो हुई थी, कि
वृष्टि भी बन्द हो गयी और वे चारों स्त्रियाँ खेतमें चली गयीं ।

इधर नहिनाल उन चारोंकी बात सुन, अपने मनमें विचार करने
लगा,—“ओह ! मेरी चारों बहुओंमें तीन तो केवल खानेइंके लिये हाय-
हाय करती हैं, इससे मालूम होता है, कि इनको सात इनको इच्छाके
बहुतार खाना नहीं देता । इसलिये आज घर जाकर अपनी छोटी
उपट्टूंगा और तीनों बहुओंको इच्छा पूर्ण करूंगा । साथ ही अत्तन्नवित
दात करनेवाली छोटी बहुको, जो ही मिल जाये, वही खा लेनेकी इच्छा
भी पूर्ण करूंगा ।” यही सोचकर वह घर आया और उत्तने अपनी खाने
बहुओंकी बातें कह सुनायीं । उत्तने कहा,—“हे प्रिये ! आजसे तुम
तीनों बड़ी बहुओंको उनके इच्छानुसार भोजन दिया करना और छोटी
बहुको जैसा-तैसा खराब अन्न खानेको देना ।” यह कह, वह भी खेतमें
चला गया । इसके बाद खेतका काम सत्तन कर, भोजनके समय सारा
परिवार घर आया । धारिणी सब तरफका भोजन तैयार रखे हुए थी ।
उत्तने पहले अपने स्वामी और चारों पुत्रोंको खिन्नकर, पतिके बतलये
अनुसार भोजन बहुओंके सामने लकर रखा । उस समय वे चारों
विस्मित होकर परस्पर एक दूसरीका मुंह देखकर विचार करने लगीं,—
“आज न जाने कैसे हमें इच्छित भोजन मिल गया ; पर छोटी बहुको
ऐसा खराब खाना क्यों मिला ? इसका क्या कारण है ?” ऐसा विचार
करती हुई वे खाना-कर उठ गयीं । शौचनताने करने नतने सोच,—
“नौ तो कुछ बिगाड़ा नहीं था, फिर सातने ऐसा पंडि नेह क्यों
किया ?” कहते हैं, कि—

“सौमित्रो वृषावको, विद्याच्छेदो निरपेक्षः ।

धनद्वेषो व्यामह्यो, रवेते अन्तर्जाः सृजः ॥ १ ॥”

अर्थात्—‘पंक्तिभेद करनेवाला, वृथा पाक करनेवाला, जलारणही निद्राभंग करनेवाला,’ धर्म-देवी और कथाभंग करनेवाला—ये पाँचो पाण्डाल कहे जाते हैं ।’

इसके बाद ये चारों बहुरूप फिर क्षेत्रकी ओर चलीं । मार्गमें तीनों बड़ी बहुरूपोंने कहा,—“आज तो अपना मनोरथ पूरा हो गया । इस शीलमतीने भी जैसा सोचा था, वैसाही इसे भी खानेको मिला । प्रायः पुण्ययान् मनुष्योंको उनके इच्छानुसार फलकी प्राप्ति होही जाती है । इसीलिये बुद्धिमानोंको चाहिये, कि तुच्छ मनोरथ न करें ।” उनके साथ जाते-जाते शीलमतीने कहा,—“इस तरह बढ़िया-बढ़िया चीजें खानेका कोई फल थोड़े ही है ? मला-बुरा जैसा कुछ भोजन पेटमें पहुँचा, यह एकसाँ हुआ । परन्तु जिस दिन मेरा मनोरथ पूर्ण होगा, उस दिन मेरी आत्मा छुटार्थ हो जायेगी ।” यह कह, यह चुप हो रही ।

इस प्रकार सदा इच्छानुसार भोजन मिलनेसे बहुरूपोंको बड़ा आश्चर्य होने लगा । एक दिन तीनों बहुरूपोंने अपनी साससे पूछा,—“माताजी ! आजकल आप हमें हमेशा पादुनोंकी तरह उत्तम भोजन क्यों देती हैं ? और शीलमतीको सदा बुरा खाना क्यों देती हैं ? इसका कारण क्या है ?” इसपर उनकी सासने कहा,—“तुम लोगोंने किसी दिन एक जगह खड़ी होकर भोजनकी बात चलायी थी । यहीं तुम्हारे ससुर भी बड़े थे । उन्होंने तुम्हारी बातें सुनकर मुझे कह सुनायी । उन्होंने कहे अनुसार मैं तुम लोगोंको इस तरहका खाना दिया करता हूँ ।” यह बात सुनते ही शीलमतीका चेहरा उदास हो गया । रातको एकान्तमें उसे इस तरह उदास मुँह किये देख, गुरपालने उससे पूछा,—“हे मित्र ! आज तुम ऐसी उद्विग्न क्यों दिखाई दे रही हो ? क्या तुम्हें माताने भयङ्कक माय छिटाया है ? भयना तुमने उनके साथ कुछ झिठाई की है, या तुमने माताका कुछ अनिष्ट कर डाला है ?” यह सुन, यह बोली,—“हे स्वामी ! तुमसे तो मेरी कोई बात छिपी नहीं है ; पर इस मामलेमें कहनेकी तो कोई बात ही नहीं है, इसीलिये मैं तुमसे कुछ भी नहीं

कहा ।” यह सुन, उसके स्वामीने उससे बड़े भाग्यशुके साथ पूछा । तब उसने आदिसे अन्त तक अपने मनोरथकी कथा उसे कह सुनायी । यह सुन, शूरपालने अपने मनमें विचार किया,—“ओह ! मेरे माँ-बाप भी कैसे मूर्ख हैं ! ऐसी रत्न-समान स्त्रीकी इन लोगोंने ऐसी दुर्गति कर रखी है ! महा, मेरी स्त्रीका मनोरथ कैसा प्रशंसनीय है ! सब स्त्रियोंमें यह स्त्री प्रशंसाके योग्य है । इसलिये अब मैं परदेश चलकर अपनी प्रियाके मनोरथकी सिद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा ।”

ऐसा विचार कर, शूरपालने अपनी स्त्रीसे परदेश जानेकी अनुमति मांगते हुए कहा,—“हे प्रिये ! तुम चिन्ता न करो । मैं परदेश जा, धन उपार्जन कर, शीघ्रही लौटूँगा और तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा ।” ऐसा कह, उसके माथेपर अपने हाथसे जूड़ा बांध तथा अँगिया पहिना कर कहा,—“यह जूड़ा तुम मेरे आनेपर ही खोलना और यह अँगिया भी मेरे आये बिना न उतारना ।” अपनी स्त्रीसे यह बात कह, हाथमें तलवार लिये हुए शूरपाल घरसे बाहर निकला और परदेशकी ओर चल पड़ा । उसकी स्त्री थोड़ी देरके लिये हर्ष और विपादका अनुभव करने बाद अपने काममें लग गयी । प्रातः काल मझपाल आदि सब लोग, शूरपालको घरमें न देख, उसे चारों ओर खोजकर हार जानेपर उसकी स्त्रीसे पूछने लगे,—“हे भद्रे ! शूरपाल कहाँ गया ? क्या तुम्हें कुछ मालूम है ?” उसने कहा,—“मुझे कुछ भी नहीं मालूम ।” इसके बाद उसका कोई समाचार नहीं मिलनेके कारण उसके माता, पिता और भाई आदि सब लोग परस्पर विचार करने लगे,—“क्या शूरपालको किसीने कोई दुःख पहुँचाया है, जिससे वह घरसे निकल भागा ?” पुत्रोंने कहा,—“पिता ! हम लोगोंने तो उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ा ; क्योंकि प्रायः छोटा भाई सबको प्रिय होता है ।” इसके बाद फिर उन लोगोंने शूरपालकी स्त्रीसे पूछा,—“भद्रे ! कहीं तुमसे तो उसकी कुछ लड़ाई नहीं हुई है ?” वह बोली,—“मेरे स्वामीके साथ मेरा कभी झगड़ा नहीं हुआ । हाँ, उन्होंने जाते समय अपने हाथसे मेरे बालोंका जूड़ा

बाँध दिया और कहा, कि इसे मैं ही आकर खोलूँगा । यह कह, वे कहीं चले गये, इसकी मुझे खबर नहीं है ।”

यह सुन, तीनों भाइयोंने अपने मनमें विचार किया,—“शायद माता-ने भोगनादिमें बहुत कुछ निरादर किया है, इसीसे यह इसे अपना ही अपमान समझकर परदेश चला गया है । कहा भी है, कि अपमानसे तिरस्कार पाये हुए मानी पुरुष माता, पिता, पत्नी, धन, धाम्य, गृह और स्त्री सबको दूरसे ही त्याग देने है । माता-पिता और स्वामीके किये हुए अपमानसे भी मान-रूप धनसे धनिक पुरुष देश छोड़ देने हैं । गुह जो शिष्यका अपमान करता है, वह शिष्यके लिये हितकारक होता है; क्योंकि गुह पारण और स्मरण आदिके द्वारा शिष्यकी तर्जनाको सकारण कर देता है । फिर उसकी स्त्रीका अपमान, उसकाही अपमान है; क्योंकि शरीरकी पीड़ासे क्या जीवकी पीड़ा नहीं होती ? ज़रूर होती है ।” ऐसा विचार कर, ये सब उसकी छोड़ करने पर भी उसका समाचार न पाकर उसके विरुद्धसे दुःखित होते हुए भी अपने-अपने काममें लग गये ।

इधर गुरगाल, अपने घरसे बाहर हो क्रमशः महाशाल नामक नगरमें आ पहुँचा । यहाँ पहुँच कर, घना-माँस होनेके कारण यह नगरके बाहर एक उद्यानमें एक अश्वत्थकी छायामें सो रहा । उसे गाढ़ी नींद आ गयी, पर उसके पुण्यके प्रभावमें उस वृक्षकी छाया मध्याह्न हो जानेपर भी उसके ऊपरसे नहीं हटी । इसी समय उस नगरका राजा पुत्रहीन अवस्थामें हो गृह्युक्त प्राप्त हुआ । तब प्रधान पुरुषोंने पञ्चद्विष्य प्रकर किये, जो हो पढ़ तक सारी यज्ज्ञानमें घूम फिर कर अन्तमें नगरके बाहर यहाँ पहुँचे, वही गुरगाल सोया हुआ था । गुरगालका देखते ही हाथियोंने मर्जित किया, छोड़े दिनदिनाने लगे, उस पर भापसे भाप उब नन गया, कलशने स्पर्श उमर धनिनेक किया और चंवर भापसे भाप दुलने लगे । इसे देखते ही जय-जय और मङ्गल-गोत्रका स्तब्ध होने लगा । उस समय मन्त्री और सामन्तोंने उसके सब अंगों को परीक्षा की, तो उसके शय-

पैरोनैं चक्र, स्वास्तिक और मत्स्य आदि शुभलक्षण देखकर, उन्होंने सोचा,—“यह तो कोई बड़ाही महापुरुष मालूम होता है । इसके प्रभाव-से वृक्षकी छाया भी नहीं हटती । यह अपने पुण्योंके प्रतापसे आपसे बाप राजा हो गया ।” वे सब सामन्त ऐसा विचार कर ही रहे थे, कि इसी समय शूरपालकी नाँद टूट गयी और वह सोचने लगा, कि यह मानला क्या है ? इसी समय प्रधान पुरुषोंने उसे बड़े आग्रहसे आसन पर बैठाकर ज्ञान तथा विलेपन कराया और वस्त्राभूषणोंसे उसका शृङ्गार कर, अच्छेसे हाथोंपर बैठाया । उसके माथेपर छत्र लगाया गया और दोनों ओर चँवर डुलने लगे । इस प्रकार बड़े ठाट-बाटके साथ उन लोगोंने राजाका नगर-प्रवेश कराया । उसे देखकर नगरकी स्त्रियाँ उसको प्रार्थना करने लगीं । इस प्रकार भाँति-भाँतिके मङ्गलों-का अनुभव करते हुए राजा शूरपाल राजमन्दिरमें प्रवेश कर राजसभामें आ बैठा । मंत्रियों और राजसामन्तोंने आकर उसे प्रणाम किया । क्रमसे सारे नगरमें शूरपाल राजाका नाम फैल गया ।

एक दिन उसने अपने ज्ञानमें सोचा,—“मैंने जो यह राजलक्ष्मी पायी, उसका क्या फल हुआ ? कहा है, कि परदेशमें प्राप्त लक्ष्मीका कोई फल नहीं, क्योंकि उसे न तो शत्रु देखकर जलते हैं और न मित्र उसका उपयोग कर सकते हैं । इसलिये इस ङंगसे पायी हुई यह लक्ष्मी अच्छी नहीं है; क्योंकि अर्भातक मेरी खोको भी इच्छा पूरी नहीं हो सको ।

ऐसा विचार कर उसने अपने हाथसे पत्र लिखकर अपने परिवार वालोंको यहाँ बुला लानेके निमित्त अपने सेवकोंको अपने घर भेजा । वे काञ्चनपुर पहुँचे सही पर बहुत खोलनेपर भी उसके परिवार वाले उन्हें नहीं मिले । इसी समय किताने उन राजकर्मचारियोंके पास आकर कहा,—“हे भाइयो ! यहाँ वृष्टि नहीं होनेसे अकाल पड़ा हुआ है, इसीलिये महोपालके सेतोंको सारी फसल नारी गयी । सेतोंके सिवा जीविका-निर्वाहका और कोई साधन नहीं होनेके कारण दुःखों होकर महोपाल यहाँसे कहीं और चला गया है, किन्तु कहाँ गया है, यह हम

माप पृथ्वीके पालक हैं और अन्यायका निवारण करने हैं। जो बुर्जें होते हैं, वेही सतियोंके शीलका खण्डन करनेको तैयार होते हैं। पर भापके सदृश मनुष्योंको तो ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये। यदि भाप भी ऐसा नहीं करने योग्य कार्य करने लगेंगे, तब तो 'जोही रक्तक, सोही मक्षक' वाली कहावत सच हो जायेगी। शास्त्रमें कहा हुआ है, कि जो निर्लेज पुरुष परस्त्रीका सेवन करता है, वह अपने कुल, पराक्रम और चरित्रको कलङ्कित करता है। सारी दुनियाँमें उसकी बदनामीका मद्दारा धज जाता है।" और उसका महामूल्यवान शीलरत्न धूलमें मिल जाता है।" जब उसने ऐसा कहा, तब उसके पाम रहनेवाले राजपुरुषोंने उससे कहा,—“हे भद्र ! जिन हमारे स्वामीकी भग्य त्रिषा स्वयं प्रार्थना करती हैं, वे जब स्वयं ही तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं, तब तुम उनकी उपेक्षा क्यों कर रही हो ?” यह सुन, शीलमती बोली,—“मेरे शरीरका स्वयं या तो मेरे स्वामी करेंगे भगवा भद्रि ही करेगी। मेरे जोते जो इसके कोई पर पुरुष हाथ नहीं लगा सकता।” इसके बाद राजाने उसके मनमें प्रतीति लगानेके लिये, उसको कुछ सङ्केतकी बातें कहीं, इसके बाद फिर कहा,—“हे मुण्डे ! तुम मेरे सामने माँझें बराबर करछेदेखो और मुण्डे पहचानो। मैं काञ्चनपुरसे भागकर यहीं चला आया था। उसी समय यहकि राजा अपुत्रक भयस्त्रामेंही मर गये थे, इसलिये पंचदिष्यमे मुण्डेही राजा बनाया। मैं वही तुम्हारा पति शूरपाळ हूँ।” राजाकी यह बात सुन, इसकी बातें विभ्यास करने योग्य समझ, सङ्केत वाक्योंका मनमें विचार कर विस्मित होती हुई उसने अपने स्वामीके सामने देखकर उन्हें पहचान लिया। उस समय शीलमती हृयंसे पैसीही बिल उठी, उसे मेघकी देखकर झूरी इतित हो जाती है। इसके बाद राजाके बुधमसे दामिनीने उसे तंड-इच्छन लगाकर नहला दिया, सब भोगोंपर कुटुम्बका लेण कर दिया, राजाका दिया हुआ रत्नको यत्र पहना दिया और तिलक माद्रि धीरुह प्रकारके गृह्णारोंसे उसके शरीरका गृह्णार-सम्पादन कर दिया। इसके बाद दामिनी शीलमतीको राजाके पास ले आई। इसके बाद राजाने उसे

अपने भांध आसन पर बैठाया । उस समय मन्त्री और सामन्त आदिने उसे प्रणाम किया ।

उस दिन शीलमतीके साथ-साथ ऊँठ लेनेकी शान्तिमती भी राजाके घर आयी हुई थी । जब राजाने कोथने आकर शीलमतीको पैदलानेमें पन्द्र कर देनेकी आज्ञा दी, तब वह भागकर अपनी जगहपर चली आयी और अपने घरके लोगोंसे कहने लगी, - "शीलमतीने राजा की दी हुई जेगिया नहीं ली, इसीलिये राजाने कोथने मारे उसे फेंद-मानेमें डाल दिया है ।" यह सुनते ही सबने कहा, - "जो हुआ, सो ठीक ही हुआ । बहुत कहने पर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी, इस-लिये उसे ऐसी सजा मिलनी ही चाहिये थी ।" यह कह, सब लोग अपने-अपने काममें लग गये ।

इसके बाद एक दिन राजाने महोपालकी बुद्धि सहित निमंत्रित किया । तदनुसार वह अपने परिवारके साथ ठीक समय पर भोजन करनेके लिये राजाके घर आया । राजाने उन सब लोगोंकी स्नान करा, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहना, योग्यतानुसार धष्ट आभूषणोंसे उन्हें अलंकृत कर दिया । यह देख, महोपालने सोचा, - "इस राजाने जो पन्थुकी तरह हमारी इतनी स्वातिरदारी की, उसका क्या कारण है ? अथवा जिससे जो कुछ लेना होता है, वह निर्गुण मनुष्य भी लेही मरता है ।" महोपाल यही सोच रहा था, कि राजा उन सब लोगोंको मनोहर आसनों पर बैठा, उनके सामने बड़े-बड़े धाल रखवाकर आप भी उनके साथ ही उचित आसनपर बैठ गये । इसके बाद राजाके हुक्मसे धष्ट वस्त्र धारण किये हुई सती शीलमती स्वयं ही उन्हें नाना प्रकारके धष्ट भोजन परोसने लगी । तब राजाने उससे कहा, - "प्रिये ! बहुत दिनोंसे मनमें रहा हुआ अपना मनोरथ आज सफल कर ले ।"

इसके बाद सब लोग भोजन करके उठे । राजाने अपने पिताको उत्तम सिंहासन पर तथा भाइयोंको भी उचित आसनों पर बैठा कर, माता और भाभियोंको भी अच्छे-अच्छे आसन दिलवाये । इसके

बाद उन्होंने पिताको प्रणाम कर कहा,—“पिताजी ! उस दिन तुम्हारा जो पुत्र घरसे निकल भागा था, मैं यही शूरपाल हूँ । यह राज्य तुम्हारा ही है । मैं तुम्हारा सेवक हूँ । मैंने तुम्हें पहचान कर भी जानबूझ कर तुम्हें मंज़ूरी करने दी, मेरो यह अविनय क्षमा करना ।” शीलमतीने भी सबको प्रणाम कर कहा,—“मैंने आप लोगोंके बचन नहीं मान कर आप लोगोंको दुखी किया, मेरा यह अपराध आप लोग क्षमा करेंगे । ससुरजी महाराज ! मैंने जो आपके कहनेसे भी अपनी अंगिया नहीं उतारी, वह अपने पतिकी आज्ञा उल्लंघन होनेके ही भयसे, इसका और कोई कारण नहीं है ।”

यह सब बातें सुन, महीपालने अत्यन्त हर्षित हो, अपने पुत्र शूरपालको पहचान कर कहा,—“हे पुत्र ! तुम्हें यह राजलक्ष्मी तुम्हारे ही पुण्यके प्रभावसे प्राप्त हुई है, इसलिये तुम चिरकाल तक इसे भोग करो । तुम्हें देख कर ही मैं अत्यन्त सुखी हो गया ।” यह कह, राजनीतिको जाननेवाले महीपालने स्वयं उठकर अपने हाथों शूरपालको उठाकर सिंहासन पर बैठा दिया और राज्य पर बैठे हुए पुत्रको पिता भी नमस्कार करता है, इसी नीतिके अनुसार महीपालने भी शूरपालको नमस्कार किया । इसके बाद महीपालने मधुर वचनोंसे शीलमतीसे कहा,—“बेटी ! इस संसारमें ही तू ही धन्य है ; क्योंकि तेरे सारे अर्सभय मनोरथ सिद्ध हो गये ; इसलिये तू क्षियोंमें रत्न है । तूने अपने शीलकी सूच रक्षा की और पतिकी आज्ञाका अक्षर-अक्षर पालन किया, इसलिये तेरे समान इस दुनियामें दूसरी कौन छी है ?” जब महीपालने उसकी ऐसी प्रशंसा की, तब उसने कहा,—“पिताजी ! आपलोगोंने जो मेरी उपेक्षा की, वही मेरे लिये हितकारक हो गयी । उस दिन आपने मेरा अपमान नहीं किया होता, तो आपके पुत्र परदेश क्यों जाते ? उन्हें राज्य क्यों कर मिलता ? आपका गौरव कैसे बढ़ता ? मेरे मनोरथ कैसे सिद्ध होते ?” इसके बाद शूरपाल राजाने सब मन्त्रियों और सामन्तोंसे कहा,—“ये मेरे पिता और ये मेरे माई

हैं, यह मेरी माता और ये मेरी माभियाँ हैं । ये लोग मेरे पूज्य हैं, इस-
लिये तुम लोग इन्हें प्रणाम करो ।” यह सुन, आनन्दित होकर सब
सामन्त आदिने उन्हें नमस्कार किया, तब शूरपाल राजाने अपने
भाइयोंको अलग-अलग देश देकर उन्हें माण्डलिक राजा बना दिया ।
कहा है,—

“नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन ।

प्राप्य वत्सानधिकारान् यन्तु नित्रेषु बन्धुवर्गेषु ॥ १ ॥”

अर्थात्—“चंचल राज्यादि अधिकार पाकर जिसने सन्तुष्टोंका
वपकार नहीं किया, मित्रोंका उपकार नहीं किया और बन्धुजोंका
सत्कार नहीं किया, तो क्या किया ? कुछ भी नहीं किया ।”

शूरपाल राजाने अपने माता-पिताको अपने पास ही रखा और
अपनी आत्माको कृतार्थ मानते हुए अपने राज्यका पालन करने लगे ।
एक दिन उस नगरके बाहर वाले उद्यानमें धी ध्रुतसागर नामके सूरिका
समयसरण हुआ । उस समय उनके चरणोंको नमस्कार करनेके लिये
नगरके लोगोंको जाते देखकर शूरपाल राजाने मंत्रीसे पूछा,—“हे मंत्री !
ये लोग कहाँ चले जा रहे हैं ?” इसके उत्तरमें मंत्रीने राजाको सूरिके
आगमनका समाचार कह सुनाया । यह सुन, राजाने कहा,—“जय इस
नगरके लोग ध्यानके सूर्यके समान गुरुको नमस्कार करनेके लिये जा
रहे हैं, तब मुझे भी जाना चाहिये ।” मंत्रीने कहा,—“हे स्वामी ! यह
विचार बहुत ही उचित है ।” यस तुरतही राजा, माता-पिता और
प्रियाके साथ उद्यानमें आ, सूरिको प्रणाम कर, उनके पास ही उचित
स्थानपर बैठ रहे । उस समय सूरिने राजाको संसार-समुद्रके पार
उतारनेमें नौकाके समान धी सर्वज्ञ-भाषित जिनधर्मकी देशना कह
सुनायी । उसे सुन, प्रतियोध प्राप्त कर, राजाने गुरुके सामने ही धावक
धर्म अङ्गीकार किया और उन्हें प्रणाम कर घर चले आये । इसके बाद
राजा शूरपाल प्रतिदिन सूरिको प्रणाम करने आते और धर्म सुन
जाया करते । एक दिन अवसर पाकर राजाने गुरुसे पूछा, “हे

अन्न-शन्न भी बच जाये—पास-पहले भी जो कुछ दाम-दमड़ा था, वह भी उड़ गया । उसने एक वपे तक बिना धेतनके राजाकी सेवा की, पर उसने राजासे कुछ भी लाभ नहीं उठाया । तब उसने बड़े अफ-सोसमें पड़कर सोचा,—“राजाने पहले तो बड़ी उदारता भरी बानें कीं, पर अब तो मालूम होता है, कि वे निरी घोषी बातें थीं । कहा भी है, कि—

असारस्य पदार्थस्य प्रायेणादम्बरो महान् ।

नहि तादृग् ध्वनिः स्वर्गे, यादृगः कांस्य भाजने ॥ १ ॥”

अर्थात्—“अकसर देखा जाता है, कि जिसके भीतर कुछ सार नहीं होता, उसका उपरसे बड़ा भारी आडम्बर होता है, काँसके वर्तनसे ऐसी ध्वनि निकलती है, वैसी सोनेसे नहीं निकलती ।

“क्रितने ही मनुष्य बातें बोलनेमें ही बहादुर होते हैं ; काम करनेमें नहीं । शास्त्रमें कहा है, कि—

“अदातरि समृद्धोऽपि, किं कुर्वन्त्युपजीविनः ।

किमुकं किं शुक्रः कुर्यात्, फलितेऽपि बुभुक्षितः ॥ १ ॥”

अर्थात्—समृद्धिशाली हो; पर दाता न हो, तो उसके सेवक क्या करे ? (सेवकों का दुःख-दारिद्र्य कैसे दूर हो ?) फले हुए किशुकके वृक्षको लेकर भूखा तोता क्या करे ? (उससे तोतेकी मूल योड़ेही मिटनेकी है ?)”

ऐसा विचारकर उसने फिर सोचा,—“इस छपण राजाकी सेवासे तो मेरी खेती ही अच्छी है, कहा भी है, कि—

“लक्ष्मी व्रमति वाणिज्ये, किंचित्किंचिच्च कपण्णे ।

अस्ति नास्ति च मेवायां, भित्तायां न च नैव च ॥ १ ॥”

अर्थात्—“लक्ष्मी व्यापारमें ही रहती है । थोड़ी-थोड़ी खेती बारीमें भी रहती है । मेवासे लक्ष्मी होती है और नहीं भी होती । परन्तु भित्तासे तो हरगिज होही नहीं सकती ।

“इसके अतिरिक्त खेतों करनेमें घरवालोंसे धिनुड़नेका भी डर नहीं रहता। यद्यपि योंही खाली हाथ घर लौटना बड़ी शर्मकी बात है, तथापि व्यर्थ यहाँ रहना किस कामका ?” ऐसा विचार कर वह उस स्थानसे बल निकला और बिना धर्म-पंचके ही रास्ता तै कराना हुआ रातके समय अपने घर आया तथा घरके बाहरवालों भीनसे उड़क कर खड़ा हो रहा। इतनेमें उसने अपनी आँखों, अपने बालकोंको, जो सुंदर पदार्थ खानेको माँग रहे थे, यह जवाब देने हुए सुना, —“पुत्रो ! तुम्हारे पिता राजाकी सेवा कर, बहुतसा धन कमा लायेंगे। तब मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छानुसार भोजन दूँगा। तुम्हारे पिता बड़े अच्छे-अच्छे वस्त्र लायेंगे और मुझे गहने गढ़ा देंगे—सब कुछ अच्छा हो जायेगा ; इसलिये तुम रोओ मत।” यह सुन, ध्यायने सोचा,—“अहा ! मेरी स्त्रियोंके हृदयमें तो बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं ! ऐसी हालतमें जब वह मुझे यों फटे हाल आया हुआ देखेंगे, तो उसको छाती फट जायेगी और वह मर जायेगी। इसलिये चाहे जितने दिन पोत जायें ; पर मुझे धन लेकर ही घर आना चाहिये, नहीं तो नहीं।” ऐसा निश्चय कर वह पाँछे लौटा और बिना किसीको कानोंकान अपने आनेको खबर दिये चला गया। उस समय वह अपने मनमें विचार करने लगा,—

‘निर्मितोऽस्ति नरः किं त्वं, विलीनोऽम्बोदरे न किम् ।

जीव रे निर्धनायत्ना, जाता पत्न्यं दृष्टो तव ॥ १ ॥

नाविता क्लृप्ता नैव, वक्त्रं भर्तव्यं पोषयन् ।

दत्तं च देनं नो दानं, तत्त्वं वन्न निरपेक्षम् ॥ २ ॥”

अर्थात्—“रे जीव ! तू दुर्लभ जड़केको हुआ ! नाके गर्भमें ही नर क्यों न गया, जो तेरी ऐसी दरिद्रावस्था हुई ! जितने धन नहीं कमाया ; बिना पालन-पोषण करना चाहिये, उन्हें नहीं पाला-पोसा ; दान-दुःस्वियोंको दान नहीं दिया, उक्त वन्न व्यर्थ हो गया।

ऐसा विचार कर, वित्तमें दृढ़ता और साहसको धारण कर वह उत्तम रत्नोंकी प्राप्तिके निमित्त रोड्पाचल-पर्वतकी ओर चला गया।

मार्गमें भिक्षाटन करता हुआ वह रास्तेके लोगोंसे रोहणाचलकी राह मालूम करता हुआ क्रमशः उस पर्वतपर पहुँच गया । कहा भी है, कि—

“भोजनिभारः समर्थानां, किं तूरं भयसायितानाम् ?

को विदेशः सुविधानां, कः परा शिष्यादिनाम् ?”

अर्थात्—“समर्थजनोंके लिये कुछ भी भारी नहीं है; उद्योगियोंके लिये कितनी भी दूरी हो ; पर वह जाना कुछ मुश्किल नहीं है । उत्तम शिष्याचार्योंको विदेश कौनसा है । और शिष्य उचन बोलनेवालेका पराया कौन है ?”

इसके बाद व्याघ्र, रोहणगिरिपर चढ़कर कुशलसे वहाँकी भूमि खोद, भट्टे-भट्टे रत्न निकाल, अपने वस्त्रके छोरमें बाँध, भीष माँग-माँग कर पेट पालता हुआ अपने घरकी ओर चला । रास्ता चलते-चलते वह एक दिन विध्रामके लिये एक पेड़के नीचे बैठ गया । इसी समय उसने एक नुकीली दाढ़ीवाले बाघकी मुँह फैलाये अपनी ओर आने देखा । उसे देख, डरके मारे वह जान बचानेके लिये शीघ्रताके साथ उस पेड़ पर चढ़ गया । उस समय रत्नोंकी पोटली, जिससे उसने नीचे रख दिया था, भूमि पर ही पड़ी रह गयी । बाघ, कुछ देरतक उस पेड़के नीचे खड़ा रह कर, अन्तमें निराश हो, जंगलमें चला गया, परन्तु व्याघ्र उसके भयसे वृक्ष पर से नीचे उतरा नहीं । इतनेमें वहाँ एक वन्दर आ पहुँचा और अपने बखल स्वभावके कारण भट्ट-भट्ट उस रत्नोंकी पोटलीकी मुँहमें दबाये हुए उड़्यता कुरता हुआ भाग गया । उसे पोटली लेकर वागता देख, व्याघ्र भट्ट-भट्ट पेड़से नीचे उतरकर उसके पीछे-पीछे दौड़ा, पर वह वन्दर एक वृक्षमें दूबरे वृक्षपर छलांग मारता हुआ बाढ़ी देरमें बही भदुर्य हो गया । उस समय व्याघ्रने बोला,—“हे भोज ! तिमैं निष्काकिन पाप कम करने दे, वही शय्य मुझमें पूर्ण क्रममें बन भाया है, एसीमें निजाने मुझे इस पूर्वशर सेना बना कर मेरा है कि मैं तिमैं काममें हाथ डालता हूँ, वही सिद्ध कर दे । परन्तु वन्दर पुष्करदिन मानिपोंके

सारे उद्यम निष्फल हो जाते हैं, तथापि उन्हें पुरुषार्थका त्याग नहीं करना चाहिये ।”

इस प्रकार अपनी आत्माको आपही धैर्य देकर वह आगे बढ़ा । कमसे वह जङ्गल पारकर एक गाँवमें पहुँचा । उस गाँवके बाहर एक योगीको घेठा देख, व्याघ्रने उसे प्रणाम किया । तब योगीने कहा,—“बेटा ! तेरा दारिद्र्य दूर हो ।” यह आशोर्थात् सुन, व्याघ्रने उसे अपनी पूरी राम कहानी सुनाकर कहा,—“स्वामी ! अब आपको कृपासे मेरी दारिद्र्यता अवश्य ही दूर होगी ।” इसके बाद योगीने उसे रसकूपके कस्यकी बात सुनायी और एक पहाड़की कन्दरामें ले जाकर उसे रसके कूपमें रस लानेके लिये लटकाया । इसी समय सुलसकी तरफ उसे भी रस-कूपमें पहलेसे पड़े हुए किसी आदमीने उसके लिये रसकी तुम्बियाँ भर दीं और उस योगीकी दुष्टता बतला दी । इसके बाद व्याघ्र रससे भरी हुई तुम्बियाँ लिये हुए कूपके किनारे पहुँचा । अब योगीने उससे तुम्बियाँ माँगी, तब उसने नहीं दी । उस समय योगीने सोचा,—“पहले मैं इसे बाहर तो निकालूँ, पीछे किसी-न-किसी उपायसे इसे धोखा देकर तुम्बियाँ हथिया लूँगा ।” यहाँ सोचकर उसने उसे कूपसे बाहर निकाला । इसके बाद वे दोनों पर्वतकी गुफासे बाहर निकलकर गाँवके पास आ पहुँचे । वहाँ आकर योगीने उससे कहा,—“हे भद्र ! हमारा मनोरथ सिद्ध हो गया । इस रसको लोहेके पत्र पर लेपकर आगमें तपाकर मैं सोना बनाऊँगा । अब तुम निश्चिन्त रहो ।” यह कह, पहलेका धोड़ासा सोना, जो योगीके पास था, उसे व्याघ्रके हवालेकर योगीने कहा,—“बेटा ! तू यह सोना बस्तीमें ले जाकर बेच डाल । और उसी दामसे दो बछ तथा उत्तम भाजन ला, तो हमलोग भोजन करें । एक बछ मेरे लिये और एक अपने लिये लाना । धनका यही उपयोग है, कि खाये और दान करें ।” यह सुन, व्याघ्रने सोचा,—“यह योगी अवश्य ही मेरा हितैषी है, नहीं तो अपना सोना मुझे काहेको देता ?” ऐसा विचारकर, रसकी तुम्बियाँ योगीके ही पास छोड़कर वह सरल

चित्तसे वस्तीमें जा, पूरी-मिठाई आदि भच्छी-भच्छी खानेकी चीज़ बनवा, मिट्टीके बर्तनमें भर, और घस्त्र भी खरीद कर गाँवके बाहर हुआ । एयर योगी रसकी तुम्हियारी लिये हुए उसे धोखा देकर चम्पत हो गया । वहाँ पहुँचकर, व्याघ्रने जब उसे नहीं देखा, तब सोचा,—“भोह ! उस दुष्ट योगीने तो मुझे धूँव छकाया ! परन्तु कहा है,—

‘मित्रद्रोही कृतघ्नश्च, स्नेहीविवासघातकः ।

ते नरा नरकं यान्ति, यावच्चन्द्रदिवाक्री ॥ १ ॥’

अर्थात्—“मित्रद्रोही, कृतघ्न और स्नेहीके साथ विरसात-घात करनेवाले मनुष्य तयतकके लिये नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक मूरख और चौद पृथ्वी पर प्रकाश फैलाया करते हैं ।”

यह कह, भोजन और चख पृथ्वीपर फेंक, मूर्च्छित हो जानेंके कारण यह ज़मीनपर पड़ा रहा । कुछ देर बाद होशमें आनेपर उसने आप-ही-आप कहा,—“हा देव ! क्या इस संसारमें तुम्हें मुक्तता भभाग और न कोई न मिला, जो तुम मुझे ही इस तरह सब दुःखोंका भण्डार बनाये हुए हो ? एक तो मुझे निर्धनता सता ही रही थी । दूसरे, मैंने जो सेया की, तो यह भी बेकार होगयी, फिर रत्न हाथमें आकर जाते रहे और भबके सुवर्ण सिद्धिका रसभी मुट्ठीमें आकर निकल गया ! मेरे लिये केवल दुःख परम्परा ही रहती है । इसलिये अब तो मेरा मर जाना ही अच्छा है ।”

यहाँ सोचकर यह एक पेड़पर चढ़ गया और उसकी एक डालमें रस्मी बाँध, उसमें अपना गला फँसाना हो चाहता था, कि इतनेमें वहाँनें भरके उपयासी, ईर्ष्यासमितिके शोधनमें तत्पर और बस्तीकी भोर माहारके लिये जाते हुए एक मुनिको देखकर उसने सोचा,—“मैं वृक्षसे नीचे उतरकर यह गुप्त भोजन और चख इन्हीं मुनीश्वरको दे डालूँ, तो इस दानके प्रभावसे शायद जन्मान्तरमें मुझे सुखकी प्राप्ति होगी ।” यह सोच, वृक्षसे नीचे उतर उसने मुनिको प्रणाम किया और उनके सामने यह भोजन-घस्त्र रख कर कहा,—“हे पूज्य ! कृपा कर आप इस भोजन और घस्त्रको ग्रहण करें ।”

वह सुन, मुनिने उस ब्यालीस बाँधोंसे रहित शुद्ध भोजनको देख, वर्तनसे निकालकर प्रदण किया और वस्त्रको भी फलनोय देखकर उसे भी ले लिया । इमने बाद उसने फिर मुनिको प्रणाम किया । मुनि अपने स्थानको चले गये । व्याघ्रने अपने मनमें सोचा, —“मैं भी धन्य हूँ, जो मुझे ऐसा सुभयस्तर हाथ लगा । दिनो बड़े भाग्यके ऐसा उत्तम भोजन वस्त्र कैसे मिलता और ऐसे स्थानमें ऐसे महामुनिका शुभागमन कैसे होता ? फिर मुझ विवेकहीनके दो मनमें दान देनेको वासना कैसे उदय हो आती ? अतएव आज मेरा जन्म सफल हो गया । वह शुद्ध भावसे यहाँ सब सोच रहा था, कि इतनेमें उस वटवृक्षमें रहने वाली कोई देवी बोल उठी,—“देहा ! तेरे मुनिको दान देनेसे मैं यड़ी सन्तुष्ट हुई हूँ, इसलिये बता, मैं तेरा कौनसा मनोरथ पूरा करूँ ?” यह सुन, व्याघ्रने कहा,—“तुम चाहे कोई देवी क्यों न हो, पर यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो मुझे पारिभद्र नगरका राज दे डालो—साथही बहुतसा द्रव्य भी दो ।” देवीने कहा,—“हे महापुरुष ! तुझे सब कुछ मिलेगा । पहले तू इस बाँकी बचे हुए अन्नको खाकर अपनी जान तो बचा ले ।” देवीके इस आदेशको सुन, हर्षित होकर उसने भोजन किया । वस्त्र पहना और स्वस्थ हुआ । इतनेमें देवीके प्रभावसे वहाँ बन्दर जंगल से आकर रत्नोंकी पोटली उसके पास रख कर फिर जंगलमें चला गया । उसी पुण्यके प्रभावसे वह बाँगी भी रससे भरी हुई तुम्बियाँ लिये हुए आया और रससिद्धि के यागसे डेर-का-डेर सोता बनाकर व्याघ्रको दे गया ।

इधर पारिभद्र-नगरके राजा, किसी कारणसे श्वयोगसे मृत्युको प्राप्त हुए । उनके राज्यकी चलाने वाला एक भी पुत्र नहीं था । इसलिये देवी रत्नों और सुवर्णके साथ व्याघ्रकी लिये हुई उस नगरके पास छोड़ गयी और लोगोंसे कह गयी, —“हे पुरवासिया ! मैं तुम्हारे लिये एक श्वयोग राजा ले आया हूँ और उसे पुरोके बाहर छोड़ आता हूँ । तुम लोग उसका बड़ी धूम-धामके साथ नगरमें प्रवेश कराओ ” देवीका

यह भावेश सुन, मन्त्री, सामन्त आदि पुरवासी बड़े सन्तुष्ट हुए और नगरके बाहर आये ।

यहाँ उन्होंने अपने ही नगरके रहनेवाले व्याघ्रको देखा । इसके बाद बड़ी धूम-धामके साथ उसे हाथी पर बैठाकर मन्त्री-सामन्त आदिने उसे पुर-प्रवेश कराया । उस समय तक इस नगरमें पहलेसे क्या-क्या हो चुका था वह भी सुनो—

व्याघ्रकी स्त्री उसी बनियेकी दुकानसे बराबर भाटा-धावल लेती रहती थी, इसलिये धीरे-धीरे उस पर बनियेका बहुतसा लहना हो गया, इस कारण भीर बहुत दिनोंसे व्याघ्रका कोई समाचार नहीं मिलता था, इसलिये भी—उस बनियेने व्याघ्रकी स्त्रीको बालकों सहित पकड़कर उस नगरके कोतवालेके घर बन्धक रख दिया था । यह समाचार सुन कर व्याघ्रने उस बनियेका लहना कोड़ी-कोड़ी चुका दिया और वस्त्रों सहित अपना स्त्रीको छुड़वाकर राजमहलमें बुला लिया । इसके बाद व्याघ्र भी राजमन्दिरमें आया । मन्त्री, सामन्त आदि सब लोगोंने उसे प्रणाम किया । इसके बाद व्याघ्र राजाने सबके सामनेही अपनी महा आश्चर्यदायिनी कथा कह सुनायी । इसके बाद राजाने अपनी स्त्री और बच्चोंको अच्छे-अच्छे वस्त्रालङ्कार देकर भूषणुष किया । इस प्रकार सत्याग्रहों दान देनेका प्रयत्न और तत्कालिक फल देखकर राजा निरन्तर सुवात्रोंका दान देने लगे । कहा भी है, कि—

“अथ तेनै सखे गुह्यं, पात्र दाने मनागमि ।

राज माध स्वयं दान्ति, विष्णारम्भनुगमिताः ॥ १ ॥”

अर्थात्—“अथमे तेन, सत्रमे गुन बात, पात्रमे दान, युद्धिमानने माध—इतनी मनुष्य अपनी गतिके अनुसार आपने आप विष्णारम्भे दान दोती है ।

अब अपने दुर्भाग्यको वाद कर, व्याघ्रराजा सब प्राणियोंपर भेदाभाव रखने लगे और छत्र पूरक त्रिसका अर्द्धतक उपकार कर दण्ड, अर्द्धतक उपकार करने लगे ।

ज़िक्र आया है, वह पन्नेलेझ्यावाला था । वह निरन्तर पराये धनका हरणकर अपनी जीविका निर्वाह करता था । एक दिन घेरसिंहके सैनिकोंने उसे बलपूर्वक मार डाला । वही मरकर कितने ही भवोंमें तिर्यङ्ग गतिमें भ्रमण करता हुआ इस भवमें तुम्हारे रूपमें प्रकट हुआ है । पूर्वभयमें तुमने पराया धन हरण किया था । इसीलिये तुम्हें इस भवमें धनकी प्राप्ति नहीं हुई । कहा भी है—

“अदत्तभाषादि भवेद्विद्वां, दरिद्रभाषाच्च क्वांति पावम् ।

पापं हि कृत्वा नरकं प्रयाति, पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी ॥१॥”

अर्थात्—“दान नहीं करनेसे मनुष्य दरिद्र होता है, दरिद्र होनेके कारण वह पाप करता है और पाप करते नरकको जाता है । वहाँसे निकलकर फिर दरिद्री और पापीही होता है ।

“बीच-बीचमें तुम्हें धन मिलता रहा, पर वह भी नष्ट होता गया,— तुम्हारे पास नहीं रहने पाया । उसके सुपात्रको दान देनेके प्रभावसे ही, हे राजन् ! तुम्हारी गयी हुई लक्ष्मी और यह राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है । कहा भी है, कि—

“उपाप्रदानेन भवेद्विद्वान्, धनप्रयोगेण क्वांति पुरयम् ।

पुण्यप्रभारेण ज्येष्ठ स्वर्गं, स्वर्गे ह्यस्मानि प्रगुर्वा भवन्ति ॥१॥”

अर्थात्—“सुपात्रदानके प्रभावसे मनुष्य धनवान् होता है । धन पाकर वह पुण्य करता है । पुण्यके प्रभावसे वह स्वर्ग जाता है और स्वर्गमें उसे बहुतेरा सुख मिलता है ।

इस प्रकार गुरुके मुँहसे अपने पूरे भयको बान मुन, प्रतिषेध प्राप्त कर, सूरिको प्रणाम कर, घर जा, अपने पुत्रको रात्रि पर बेठा; व्याघ्र राजाने उन्हीं गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर ली । इसके बाद चरित्रकी धाराधना कर, समाधि मरण द्वारा मृत्युको प्राप्त हो, यह देवलोचको चले गये । वहाँसे आकर यह मनुष्य-जन्म प्राप्त कर, मांझको प्राप्त होने ।

मत्स्यप्रदान-वृत्तान्तिनी व्यास-कथा समाप्त ।

इस प्रकारकी कथा सुनाकर स्वामी धीशान्तिनाथने चक्रायुध राजासे कहा,—हे राजन् ! पहले कहे हुए चारहोंमें गृहस्थोंके लिये बतलाये गये हैं । चिवेकी मनुष्योंको उन प्रतीका पालन कर, अन्तमें संलेखना करनी चाहिये । गृहस्थ-धर्मका आराधन कर, बुद्धिमानोंको अन्तमें सर्व-विरति ग्रहण करनी चाहिये । ऐसी शुद्ध संलेखना सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें बतलायी गयी है, अथवा धायककी दर्शन (समकित) आदि ग्यारह प्रतिमाएँ बहन करनेको भी शुद्ध संलेखना कहते हैं । इन प्रतिमाओंका बहन न करे, तो अन्तमें सन्धारामें रह कर भी दीक्षा ग्रहण कर लेना चाहिये । इसके बाद अन्त समयमें वृद्धि पाते हुए शुभपरिणामके साथ गुरुके निकट त्रिविध अनशन ग्रहण कर, गुरुके मुँहसे आराधना ग्रन्थोंको सुनना चाहिये ।

“भय जाँचोंको चाहिये, कि अपने मनमें निर्मल संवेग-रङ्ग लाकर शुद्ध मनसे इस प्रकार संलेखना करें और उसके पाँचों अतिचारोंका वजन करें । उन अतिचारोंके नाम और अर्थ इस प्रकार हैं,—पहला—इहलोकाशंसा-प्रयोग अर्थात् ‘यदि मैं मनुष्य-भव प्राप्त करूँ, तो अच्छा है, ऐसा मनमें विचार करना, पहला अतिचार है । दूसरा—परलोकाशंसा-प्रयोग अर्थात् ‘परभवमें मुझे उत्कृष्ट देवत्व प्राप्त हो, तो ठीक है’ ऐसा विचार करना दूसरा अतिचार है । तीसरा—जीविताशंसा-प्रयोग अर्थात् पुण्याधीन जन जो अपनी महिमा बखानते हों, उसे देखकर अधिक दिन जीनेकी जो इच्छा होती है, वही तीसरा अतिचार है । चौथा—मरणाशंसा-प्रयोग अर्थात् अनशन ग्रहण करने बाद क्षुधा आदि पाड़ासे जल्दी मर जानेकी जो अभिलाषा होती है, वही चौथा अतिचार है । पाँचवाँ—कामनागाशंसा-प्रयोग अर्थात् उत्तम शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धकी जो इच्छा होती है, वही पाँचवाँ अतिचार है । पहले सुलसफो कथामें जो जिनशेखरका वृत्तान्त कहा गया है, उसे ही संलेखनाके विषयमें दृष्टान्त समझना ।” इस प्रकार संलेखनाके सन्बन्ध में धीशान्तिनाथ जितेश्वरके कहे हुए धर्मोंको सुनकर, सारी सभाको ऐसा आनन्द हुआ, मानों तब पर अमृत बरस गया ।

इसी समय चक्रायुध राजाने खड़े होकर प्रभुकी चन्दना कर, दोनों हाथ जोड़े हुए विनती की,—“हे समस्त संशय-रूपी बन्धकारको नाश करनेमें उत्तम सूर्यके समान और तीनों लोकोंसे चन्दना किये जाते हुए श्रीशान्तिनाथ प्रभु ! तुम्हें नमस्कार है। हे प्रभु ! मेरी दुष्कर्म क्ली बेड़ियोंको काट कर तथा राग-द्वेष रूपी शत्रुका नाश कर, मुझे इस संसार-रूपी कारागृहसे मुक्त करो । हे जिनेश ! निरन्तर जन्म, जरा और मृत्युकी भागमें जलते हुए इस भयरूपी गृहसे दीक्षा-रूपी करव-लम्बन देकर मुझे बाहर निकाल लो ।” इस प्रकार श्रीशान्तिनाथसे विनती कर, अत्यन्त वैराग्य प्राप्त हो, चक्रायुध राजाने पैंतीस राजाओं-के साथ प्रभुसे दीक्षा प्रदण कर ली ।

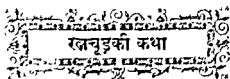
इसके बाद उन्होंने प्रभुसे पूछा,—“हे स्वामिन् ! तत्त्व क्या है ?” प्रभुने कहा,—“उत्पत्ति—यह पहला तत्त्व है ।” तब बुद्धिमान् राजाने एकान्तमें जाकर विचार किया,—“ठीक है । समय-समय पर नरक तिर्यच, मनुष्य और देवगतिमें जीव उत्पन्न हुआ करते हैं । पर यदि इसी तरह समय-समय पर उत्पन्न हुआ ही करें, तो वे तीनों भुवनमें न समायें, इसलिये उनकी कोई-न-कोई और गति भवश्यक होगी ।” ऐसा विचार कर उन्होंने फिर भगवान्से पूछा,—“हे भगवन् ! तत्त्व क्या है ?” प्रभुने दूसरा तत्त्व “विगम” बतलाया । यह सुन, उन्होंने फिर सोचा,—“विगमका अर्थ नाश है । हमका मतलब यही है, कि समय-समय पर जीवोंका नाश हुआ करता है । पर यदि योंही बिनाश हुआ करे, तो जगत् ही सूना हो जाये ।” ऐसा विचार कर, उन्होंने फिर पूछा,—“हे भगवन् ! तत्त्व क्या है ?” तब भगवान्ने तीसरा तत्त्व “स्थिति” बतलाया । इससे समस्त जगत्का भौतिक-स्वका ज्ञान, चक्रायुध राजर्षिने इन तीनों पदोंके अनुसार द्वादशाङ्गीकी रचना की । इसी तरह अन्य पैंतीसों मुनियोंने भी भगवान्के मुँहसे त्रिपदी सुन कर द्वादशाङ्गीकी रचना की । इसके बाद वे सब त्रिनेत्रके पाम गये । उन्हें इस प्रकार बुद्धि-वेगमें सम्यक् ज्ञान,

भगवान् आसनसे उठकर पड़े हो गये । इधर इन्द्र सुगन्धित वस्तुओं-से (वासक्षेपसे) भरा हुआ धाल लिये जिनेन्द्रके पास आ पड़े हुए । इसके बाद भगवान्ने धीसंघको उसमेंसे वासक्षेप लेकर दिया । उत्ती-सों मुनियोने तीन बार भगवान्को प्रदक्षिणा की । इसके बाद उनके मस्तक पर धीसंघ तथा भगवान्ने वासक्षेप डाला । प्रभुने गणधरके पद पर स्थापित किया । इसके बाद भगवान्ने यमुतेरे पुरुषों और स्त्रियों को दीक्षा दी, जिससे स्वामोको साधु-साध्वियोंका बहुत बड़ा परि-वार प्राप्त हो गया । जो लोग नतिधर्मका पालन करनेमें असमर्थ थे, उन धावक-धाविकाओने जिनेन्द्रके निकट धावकोंके वारह व्रत ग्रहण किये । इस प्रकार पहले समवसरणमें चार प्रकारके संघ उत्पन्न हुए ।

पहलो पोरशी पूर्ण होने पर धीजिनेश्वर उठ खड़े हुए और दूसरे प्राकारमें बने हुए देवच्छन्दमें विधाम करने गये । उस समय धी जिनेन्द्रके पादपीठ पर बैठकर प्रथम गणधर चक्रायुधने दूसरी पोरशीमें सभाके समस्त व्याख्यान दिया । उस व्याख्यानमें उन्होंने जिन धर्ममें स्थिरताके निमित्त धीसंघको पापका नाश करनेवाली अन्तरङ्ग-कथा इस प्रकार कह सुनायी,—

“हे भव्यजोवो ! यह मनुष्यलोक नामका क्षेत्र है । इसमें शरीर नामका नगर है । इसमें मोह नामक राजा स्वेच्छा-पूर्वक विलास करता है । इस राजाकी पत्नीका नाम माया है । इनके पुत्रका नाम अनङ्ग है । इस राजाके प्रधान मन्त्रीका नाम लोभ है । सब चीयोंमें शिरोमणि क्रोध नामका महायोधा उस मोह राजाके पासमें रहता है । राग और द्वेष नामके दो अतिरथी योद्धा हैं । मिष्यात्व नामका माण्ड लीक राजा है । मान नामका बड़ा भारी हाथी इस मोहराजाकी सवारी-में रहता है । इस राजाके इन्द्रिय-रूपी अश्वों पर चढ़नेवाले विषय नामके सेवक हैं । इसी प्रकार उस राजाके बहुत बड़ी फौज है । उस नगरमें कर्म नामका किस्तान रहता है । प्राण नामका एक बहुत बड़ा व्यापारी है । मानस नामका तलारक्षक (कीतवाल) है ।

एक बार धर्म नामक राजाने मानस नामक नगर-कोतवालको गुप्त-पदेश-करी द्रव्य देकर अपनी ओर मिला लिया और सेना सहित उस नगरमें प्रवेश किया । इस धर्म राजाके अश्रुता नामकी रानी, सस्तोष नामका प्रधान मन्त्री, सम्यक्त्व नामका माण्डलिक राजा, महावत-करी सामन्त, अणुवत-करी पैतल सिपाही, मार्दव नामका गजेन्द्र, उप-राम भादि योद्धा और सञ्चारित्र नामक रथपर भाकड़ धृत नामका सेनापति है । ऐसे धर्मराजाने मोहराजको जीतकर उस नगरसे निकाल बाहर कर दिया । इसके बाद धर्मराजाने अपने सब सैनिकोंको भाषा की,—“इस नगरमें कोई मोहराजाको ज़रा सी भी जगह न मिलने दे ।” धर्मराजाकी ऐसी भाषा पत्तमान होते हुए भी यदि कदाचित् कोई मोहके पया हो जाये, तो उसे कर्म-परिणति फिरसे-रास्तेपर ले आती है । जैसे कि अनीतिपुरमें गये हुए रत्नचूड़ नामक बनियेको यमघण्टा नामको वेश्याने बुद्धि देकर गिरादसे बचाया था ।” यह सुन, धीसङ्गने प्रथम गणधरसे पूछा,—“यह रत्नचूड़ कौन था ? उसकी कथा कह सुनाइये ।” तब गणधरने नीचे लिखी कथा कह सुनायी —



इसी मरत-क्षेत्रमें समुद्रके किनारे घनाढ्य मनुष्योंसे पूर्णताप्रतिष्ठि नामकी नगरी है । उस नगरीमें रत्नाकर नामका एक सदाचारी, स्वर्मी-कन् और मर्यादा-गुण सेत रहता था । उसकी पत्नीका नाम सरस्वती था । यह व्याप्य पुण्य, लावण्य, नंगुण्य और शक्तिव्यादि गुणोंसे विभू-जित था । एक दिन सरस्वतीने रानके पिछले पहर स्नानमें मग्न होकर और नदीमें उडान्य करने वाला एक रत्न अपने हाथमें आया हुआ देखा । सोकर उत्तमर इनने यह बात अपने पतिसे कही । स्त्रीको यह बात सुन, पतिने कहा — “अपि ! इस पत्थरके पत्थरमें मूर्धे पुराणका

प्राप्ति हागी ।" यह सुन, सेठानी बड़ी दर्पित हुई । कमसे गर्भका समय पूरा होनेपर सेठानोके एक शुभलक्षण-युक्त पुत्र हुआ । स्वप्नके अनुसार ही उसका नाम रत्नचूड़ रखा गया । जब वह लड़का पाँच वर्षका हुआ, तब सेठने उसे विद्या-शालामें कलाभ्यास करनेके लिये भेज दिया । कमसे पुत्र युवा हुआ । अब तो वह विचित्र शृङ्गार कर उद्बुध भेष धारण किये, अपने समान वयसवाले मित्रोंके साथ नगरके उद्यान आदिमें मन-माने तौरसे क्रीड़ा-विलास करने लगा । एक दिन वह चौकपरसे घूमघूमकर धीरे-धीरे चला आ रहा था, इसी समय सामनेसे चली आती हुई राजाकी प्यारी वेश्या सीमाप्यमधुरीके कन्धेसे वह टकरा गया । इतनेमें उस वेश्याने उसका वस्त्र पकड़, क्रोधसे मिली हुई हँसीके साथ कहा; —“बाहजी सेठके बेटे ! विद्वानोंने ठोक ही कहा है; कि धन होनेपर लोग आँखें रहते भी अन्धे, बहरे और गूँगे हो जाते हैं । इसीसे तो तुमने इस नयी जवानोमें, दिन-दहाड़े चौड़े रास्तेपर सामनेसे आती हुई मुझको नहीं देखा ! अरे भाई ! तुम्हें धनका इतना घमण्ड करना ठीक नहीं ; क्योंकि नीतिके जाननेवाले विद्वानोंने कहा है, कि बापकी कमाईपर कौन नहीं मौज करता ? पर तारीफ़ तो उसकी है, जो अपनी बाजू-कूबतकी कमाई पर मौज करता फिरता हो । नीतिशास्त्रमें कहा है—

“मातुः स्तन्यं पितुर्वित्तं, परेभ्यः क्रीडनाप्यनन ।

पातुं भोक्तुं च सातुं च, बाल्य एवोचितं यतः ॥१॥”

अर्थात्—‘माताका स्तन पान करना, पिताकी सम्पत्तिका उपयोग करना और दूसरोंने क्रीडाकी वस्तुएँ भोगना—ये सब काम लड़कोंको ही सोहते हैं ।’ और भी कहा है, कि-

“मोलसवारिनो पुत्तो, लच्छिदं भुञ्जेज्जो पिय जसस्स ।

सो रसस्सो पुत्तो, पुत्तो सो वपरस्संण ॥ १ ॥

अर्थात्—“जो पुत्र सोलह वर्षकी उमर हो जानेपर भी पिताकी ही उपार्जित लक्ष्मीका उपयोग करना है, उसे झुग्गी ग बगी ही समझना चाहिये ।”

इस प्रकारकी बातें सुनाकर यह वेदया अपने घर चली गयी। उसकी बातें सुनकर सेठके लड़केने सोचा,—“भहा ! इस वेदयाने बहुत ही ठीक कहा । मुझे इसकी बातोंपर भ्रमल करना चाहिये, क्योंकि कहा है, कि—

‘बालादपि हितं वाच्यं—ममेष्यादपि काश्चनम् ।

नाचादप्युत्तमो विधां, स्त्रीर्यदुत्तमादपि ॥ १ ॥’

अर्थात्—‘यदि बालक भी कोई हितशी बात कह दे, तो उस मान लेना चाहिये । विष्टामें भी यदि सोना पड़ा हो तो उठा लेना चाहिये । नीचके पासभी यदि उत्तम मिया हो, तो उससे ले लेनी चाहिये और नीच कुलमें भी यदि स्त्री-रत्न मिले, तो उसे ग्रहण कर लेना उचित है ।’

इस प्रकार नौतिकी बातें मनमें सोचते हुए वह मुँह मलिन किये हुए घर आया । उसे उदास देख, उसके पिताने पूछा,—“पुत्र ! मात्र तुम्हारा यह सूझा हुआ चेहरा मुझे साफ़ बतला रहा है, कि तुम्हें किसी बातका सोच पैदा हुआ है । इसलिये तुम बतलाओ, कि तुम्हें किस चीज़को जरूरत है ? तुम्हें जो कुछ चाहिये, वह बतला दो, मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा, क्योंकि तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हो ।” यह सुन, तनिक मुस्कुराकर रत्नचूड़ने पितासे कहा,—“हे पिता ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं द्रव्य उपार्जन करनेके लिये विदेश जानेकी इच्छा करता हूँ । इसलिये आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये ।” यह सुन, सेठ रत्नाकरने कहा,—“वेटा ! अपने घरमें धनकी क्या कमी है ? तुम इसीसे अपने सारे मनोरथ पूरे कर सकते हो । और यह भी जान रखो, कि परदेशका हंश बड़ा ही कठिन होता है । बड़े ही कठोर मनुष्योंका काम परदेश संवत करना है । तुम्हारा शरीर बड़ा ही कोमल है, इसलिये तुम भला कैसे परदेश जा सकोगे ? साथही जो पुण्य इन्द्रियोंका वशमें रख सके, स्त्रियोंको देखकर मोहित न हो सके, भिन्न-भिन्न तरहके लोगोंसे ठीक-ठिकानेके साथ बातें कर सके, वही परदेश जा

सकता है। इसलिये घेटा ! तुम परदेश जाकर क्या करोगे ? यह मैंने जितनी सन्पत्ति उपार्जन कर रखी है, वह सब तुम्हारी ही है।" ऐसा कहनेपर भी उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। नव पिताने उसे जानेकी आज्ञा दे दी। जिस कामको करनेके लिये आदमी निश्चय कर लेता है, वह मला कैसे नहीं होगा ?

इसके बाद रत्नचूड़ने अपने पितासे लाख रुपया अपने खाते नाम लिखवाकर लिया और उसीसे किरानामाल खरीद, एक भाड़ेके उद्यानमें भरकर आप उसीपर सवार होने चला। उसी समय सेठने आकर उसे इस प्रकार शिक्षा दी "घेटा ! देखना, अनोतिपुर नामक नगरमें भूले भी न जाना, क्योंकि वहाँके राजा अन्यायी है, जिनके अधिकार नामक मन्त्री, सर्वप्रथम नामक कोतवाल और अशान्ति नामक पुरोहित हैं। वहाँ गृहीतमक्षक नामक सेठ, मूलनाश नामका उसका पुत्र, रणघण्टा नामकी वेश्या और यमघण्टा नामकी कुटनी है। उस नगरमें चोर, जुधारी और परस्त्रीप्राप्त लोग बहुत रहते हैं। उस नगरके लोग सदा ऊँचे-ऊँचे मकानोंमें रहते हैं। यदि कोई अनजान आदमी वहाँ व्यापार करनेके लिये पहुंच जाता है, तो वहाँके लोग, जो लोगोंकी धानेमें बड़े उस्नाद हैं, उसका नवन्त्र हरण कर लेते हैं। इसलिये तुम सिर्फ़ उसी अनोतिपुर नगरको छोड़कर और उहाँ चाहो, वहाँ व्यापार करनेके लिये जा सकते हो। देखो, मेरी यह शिक्षा कभी न भूलना।" इस प्रकार पिताकी शिक्षा मिर-आंखोंपर चढ़ा मांगलिक उपचार कर, वह सेठ-मुत शुभ-मुहूर्तमें घरसे बाहर निकला, उसके स्वजन उसे पहुंचाने चले और शुभ शकुनोंमें उन्मार्हित होता हुआ वह समुद्रके किनारे आया। कहा है कि—

गोदाम्बरीनदी ८ मील दूर मिरापुर १३६६ मिरापुर

मिरापुर का विस्तार १३६६ मिरापुर १३६६ मिरापुर

उत्तरांचल १३६६ मिरापुर १३६६ मिरापुर

मिरापुर का नाम १३६६ मिरापुर १३६६ मिरापुर

अर्थात्—‘गौ, कन्या, गल, बाजा, दही, फल, फूल, धधकती हुई अग्नि, बाहन, बालाण-युगल, अर, हस्ती, रूपम, पूर्णकुम्भ, ध्वज, मोदी हुई पृथ्वी, जलचर-युगल सिद्ध अन्न, शव, बेरया, स्त्री, मांसका पिण्ड तथा प्रिय और हितकारक वचन—ये सब चीजें यात्रा करने-वालोंको जाने समय मिलें, तो मंगलकी सूचना देती हैं ।’

इसके बाद रत्नचूड़ जहाज़पर चढ़ा । उसके आत्मीय-स्वजन उसे बिदा करके पीछे लौटे । इसके बाद वाल नानकर माँझियोंने जहाज़ चलाता शुरू किया । कूपस्लभ पर बैठे हुआ आदमी मार्गका ध्यान रखते हुए नाविकोंकी सूचना दिया करता और ये लोग भी उसकी सूझाके अनुसार चाञ्छित ठीपकी ओर जहाज़को लिये जाते थे । परन्तु जहाँ पहुँचना था, वहाँ न पहुँचकर यह जहाज़ होनहारके घर यही रेतपर चढ़ गया जहाँ अनीतिपुर नामका नगर था । उस जहाज़को आने देखकर उस नगरके लोग बड़े हर्षित हुए और ऊँचेप्रदेश पर चढ़कर उसकी ओर देखने लगे । उस ठीपका देखकर रत्नचूड़ तथा नाविकोंने किस्सासे पूछा— ‘यह ठीप कौनसा है और इस नगरका क्या नाम है ?’ उसने उत्तर दिया— ‘यह कूट-ठीप कहलाता है और इस नगरका नाम अनीतिपुर है ।’ यह सुन, उस संटकें पुराने अपने मनमें सोचा,— ‘जिस नगरमें आनेका पिताने मना किया था, द्वेषयोगसे यही नगर प्राप्त हो गया’ यह प्रच्छा नहीं हुआ । पर अब क्या करूँ ? शत्रु तो प्रच्छा हुए थे तथा भी शत्रुत्तक । और मेरे चिलमें उच्छाह भी मरण हुआ है । स्वर्णिय प्राप्त तो यही शत्रुता होना है कि मुझे यहाँ मनमाना नाम होगा ।’

इसके बाद वह रत्नचूड़ भेड़ जहाज़में नीचे उतरा और सामान्य चालसे किनारपर हो रहने पर्यन्त स्थान देख यहाँ आने नीकरोंसे सब बातें पूछीं । उसने इस प्रकार बताया— ‘यहाँ नीकरोंका इतने कर भी दे दिया ।’ इससे वह शत्रुत्तक वाक्य कृपण प्रभृति बाद रत्नचूड़से

कहा,—“हे धेष्टोपुत्र ! तुमने कहीं और न जाकर यहीं उतरकर बड़ा अच्छा काम किया । हम लोग तुम्हारे भस्मे ही हैं । हम लोग तुम्हारा सब माल ले लेंगे, तुम्हें बँचनेके लिये तरबूद मर्हो करना पड़ेगा । यहाँ इन लोगों यह सब खरीद लेंगे और जब तुम घर जाने लगोगे, तब उसी माल बहोगे, वही माल तुम्हारे जहाज़में भर दिये ।” यह सुन, धेष्टोपुत्रने उनको धात मान ली । उन कपट-बुद्धि पनियोने उसका सारा माल ले, भायसमें बाँट लिया और अपने-अपने घर चले गये । इसके बाद रत्नचूड़ अच्छे-मले कपड़े पहन, सुन्दर मल्लहार धारणकर, अपने गौकरोंके साथ नगरको और अन्यायी राजासे मिलने चला । रास्तेमें एक मोर्चने सोने-चाँदीके लैस टँके हुए दो जोड़े जूते उसकी नेंद किये । उन्हें लेकर उसने कहा,—“भाई ! इनके दाम क्या हैं ?” यह सुन, उसने बड़े दाम माँगे । तब रत्नचूड़ने सोचा,—“यह तो बड़े अन्यायकी बात कहता है ।” इसके बाद उसने उसे पान देकर कहा,—“हे कारांगर ! जब मैं जाने लूँगा, तब तुम्हें छुश कर दूँगा ।” यह कह, उसे विदा कर, सेठ भागे पड़ा, इतनेमें उसे सामने ही कोई काना जुझारी मिला । उसने सेठसे कहा,—“सेठजी ! मैंने अपनी एक ग्राँथ तुम्हारे पिताके पास हज़ार रुपये लेकर बन्धक रखी थी, इसलिये अपने रुपये लेकर मेरी भाँख वापिस कर दो ।” यह कह, उसने सेठको हज़ार रुपये दे दिये । यह सुन रत्नचूड़ने सोचा,—“यह तो एकदम अनहोती बात कह रहा है । तो भी जब यह धन दे रहा है, तब इसे ले हो लेना चाहिये ; फिर जो उचित मालूम होगा, वह करूँगा । यही सोचकर उसने हज़ार रुपये लेकर उससे कहा,—“जब मैं यहाँसे लौटने लूँगा, तब तुम मेरे पास आना ।” यह कह, वह भागे पड़ा ।

रत्नचूड़को देखकर, चार धूर्त्त भायसमें बातें करने लगे । एकने कहा,—“समुद्रके जलका प्रनाप और गंगाकी रेतकी कपिकाओंको गिनती नले ही कोई बुद्धिमान कर ले ; पर वह भी खोके हृदयकी तह तक नहीं पहुँच सकता ।” यह सुन, दूसरेने कहा,—“वह तो किसीने

ठीक ही कहा है, कि स्त्रीके हृदयको कोई नहीं जान सकता, पर समुद्र-
के पानी और गंगाकी रेतका प्रमाण भी कोई नहीं कर सकता ।” यह
सुन, तीसरेने कहा,—“यह तो पूर्वसूरिका सुभाषित बिलकुलही असत्य
मालूम होता है । तो भी धृहस्पति और शुकाचार्य जैसे लोग कदापि
जान भी सकते हैं ।” इसके बाद चौथेने कहा,—‘भरे ! गंगानदी तो
बूर है । पर तुम इस समुद्रके जलकी चाह तो इससे लगयाओ ।” इस
प्रकार उन धूर्तोंने धर्मका बियाव कर अपनी धूर्त बियासे उस भेड़ी-
पुत्रको इस मामलेमें पेसा उठगाह दिलाया, कि यह इस कामको
करनेके लिये राजी हो गया । इसके बाद उन्होंने फिर उससे कहा,—
“सेठजी ! अगर तुम यह काम कर जाओगे, तो हम अपना सारा धन तुम्हें
दे देंगे और यदि नहीं कर सकोगे, तो तुम्हारा सब धन हमलोग ले
लेंगे ।” यह कह, उन लोगोंने सेठके साथ बाज़ी लगानेके लिये उसके
हाथपर हाथ मारा । रत्नचूड़ने भी उसके हाथपर हाथ मारा और
भागो बहा । इसके बाद यह मानने लगा, “भरे पिताने जैसा कहा
था, इस नगरके लोग ठाक घेरे ही हैं । फिर इन सब कामोंका निष्-
टारा कैसे होगा ? अच्छा रहा, पहले मैं गणघंटा नामकी घेद्याके घर
चलता हूँ । क्योंकि यह यदुनोंका दिल खुश करती और तरह-तरहके
कन्ध करेब जानती है, इसलिए यह मुझ कुछ अच्छा ज़रूर मिललायेगी ।”

यहाँ मानकर वह घेद्याके घर गया । उसने उठकर उसका स्वा-
गत किया और वह भावोंके साथ उसे बठनेके लिये आसन दिया ।
इसके बाद रत्नचूड़ने कान धूर्तका दिया हुआ धन उसके इवाले कर
दिया । इससे वह घेद्या बड़ी प्रसन्न हुई और मर्हता, उत्सर्जन, ध्यान
और जो इन भावोंसे इमन इसे बहुत सम्मानित किया । इतनेमें सन्ध्या
हो गयी । इस समय सेठ इनका मुद्रायम सेठपर देठा और वह घेद्या
भट्टीपर स्वयं नरक प्रवेश और विचक्षण पुरुषोंके योग्य, बातचीत
करने लगी । बात ही बातमें सेठने इमन अपना सारी सम्पत्ति
मुनकर कहा । “हैं प्रवेश नरकवाला । तुम इस नगरकी रहनेवाली

हो, इसलिये यहाँ का हाल तुम्हें बखूबी मालूम है, इसलिये तुम्हों बत-
लाओ, कि मैं इन भगड़ोंका फ़ैसला किस तरहसे करूँ ? इन मान-
लोंका निपटारा हो जानेपर भी मैं तुम्हारे साथ रंगरसकी बातें कर
सकता हूँ । अभी तो मैं बड़ी चिन्तामें हूँ ।" यह सुन, वह चनुर
पतुरिया बोली,—“हे सुन्दर ! सुनो, यदि कोई व्यापारी दैवयोगसे यहाँ
आ पहुँचता है, तो वहकि लोग, जो ठग विद्यामें पूरे उस्ताद हैं, उसे
एकपासा लूट लेते हैं । इसके बाद वे अपनी लूटके धनका एक भाग
राजाको, दूसरा भाग मन्त्रीको, तीसरा भाग नगरसेठको, चौथा भाग
कोतवालको, पाँचवाँ भाग पुरोहितको और छठा भाग मेरी माता यम-
पंटाको दे जाया करते हैं । सब लोग उससे भाकर अपना झरिपार
हाल सुना जाया करते हैं । मेरी माता बड़ी बुद्धिमान् है—सवाल-
जवाब करनेमें बड़ी होशियार है । सब लोगोंको वहाँ कपट-विद्या
सिखलाया करती है । इसलिये मैं तुम्हें उताँके पास ले चलती हूँ ।
यहाँ तुम भी उसकी बातें सुनलेना ।” यह कह, रातके समय, उसकी
उदारतासे प्रसन्न बनो हुई वह बेश्या, उसे खोकी पोशाक पहनाकर,
अपनी माँके पास ले गयी । वह प्रणाम कर माँके पास बैठ रही । माँने
पूछा—“देटी ! आज यह तेरे साथ कौन आया है ?” उन्ने कहा —
“माता ! यह धौदत सेठकी पुत्री रूपवती और मेरी प्रापप्रिय सखी है ।
यह मुझे एक दिन नगरमें मिली थी । उस समय मैंने इससे अपने घर
आनेकी कहा था । इसलिये यह कुछ बहाना करके घरसे बाहर हो,
यहाँ मुझसे मिलने आयी है । मैं इसे तुम्हारे पान लेना आयी हूँ ।”
यह कह, वह वहाँ बैठ रही । इनने वे चारों बनिचे जिन्होंने रत्न-
चूड़का सारा माल ले लिया था, बुद्धिमान् पान आये और उचित स्थान
पर बैठ रहे । बुद्धिमान् कहा —“व्यापारियों ! मैंने सुना है कि आज
यहाँ कोई उहाड़ आया है । वे बोलें, ‘हाँ तन्मन्’ एक एक वचिक
पुत्र यहाँ आया है ।” उन्ने फिर कहा —“उनके आनेसे तुम्हें कुछ
लाभ हुआ या नहीं ?” यह सुन उन्ने उससे उनका नाम माल ले

इसके बाद सेठके उस पुत्रने विधिपूर्वक अन्य स्त्रियोंके साथ भी व्याह किया । तथा अपनी भुजाओंके प्रतापसे उपाजिन की हुई लक्ष्मीको सफल करनेके निमित्त उस नगरमें बड़ा भारी जिनचेत्य बनवाया । घिरकाल तक सुखभोग करनेके अनन्तर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ । तब उसने सद्गुहसे धर्म ध्वज कर, प्रतिबोध प्राप्तकर, वैराग्यके साथ संयम ग्रहण किया । और इसका त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक पालनकर, भक्तमें समाधिमरण द्वारा मृत्युको प्राप्तकर, स्वर्गको गया । वही विधि प्रकारके सुख भोगते हुए पुनः वहाँसे निकलकर वह क्रमसे मोक्षको प्राप्त होगा ।

इस कथाका उपनय इस प्रकार करना—मनुष्य जन्मको सुकूल मानो, पणिक-पुत्र को मध्यप्राणियों मानना, उसके पिताके स्थानमें धर्मका बोध करानेवाले दितकारक गुहको समझना, वेश्याके घक्ककी जगह धन्दादि द्वारा उत्पन्न उरसाहको समझना, क्योंकि धन्दा भी पुण्य लक्ष्मीकी वृद्धि करनेमें मदद पहुँचाती है, मूलद्रव्यके स्थानमें गुहका दिया हुआ धारित्र मानना, अनीतिपुरमें जानेका जो निषेध किया गया था, उसे गुहकी 'सारणा-धारणा' (विधि-निषेध) समझना संयमरूपी जहाज़ पर चढ़कर मयसागर पार किया जाता है, ऐसा समझना, नाविकोंके स्थानमें साधर्मिकों और मुनियोंको समझना, मणिक-ध्वजाके नियोगके समान प्रसादको जानना, अनीतिपुरके समान दुष्कृतिका प्रवृत्त होना समझना, अन्यायी राजाके स्थान पर मोहराजाको जानना, सौदागरी माल बरोदनेवाले घातों भूत बनिवोंके स्थानमें चार प्रकारके कपायोंको जानना— ये ही विषेककपी धनको हड़प कर लेते हैं, वेश्या विषयकी पिशाचाको समझना । अम्मा (कुठनी) कर्मधारिणि है—वही पूर्व मयमें अय्यु कर्म करनेवालोंको सुवर्ण देती है । उसके प्रभावसे प्राणी समस्त भगुओंका नाश कर फिर अन्नभूमिके समान धर्ममार्ग पर आ जाता है ।

इसी प्रकार इस कथाका उपनय द्विज प्रकार पर्यटन हो सके,

वैसा, पण्डितगण धर्मको पुष्टि करानेके लिये विस्तार-पूर्वक घटित-
कर लेते हैं।

रत्नवृद्ध-कथा समाप्त ।

इस प्रकार प्रथम गणधरने धोसंधको धर्मदेखना सुना, अपनी धिरे-
वित द्वादशाङ्गी प्रकट की तथा ध्रुवज्ञानकी धारण करनेवाले उक्त गण-
धरने इस प्रकारकी साधुसमाचारों कह सुनायो और साधुके सारे-
वृत्त्य प्रकाश किये ।

इसके बाद भगवान् धोशान्तिनाथने वहाँसे अन्यत्र विहार किया।
सूर्यकी तरह स्वामी निरन्तर भव्यजीव-रूपी कमल वनको विकसित
करने लगे। कितनोंनेही प्रभुके पास आकर दीक्षा ले ली, कितनोंने शुभ-
वासनासे प्रेरित हो, धावकधर्म अङ्गीकार किया, कितनोंने सनक्ति
लान किया और कितने ही जीव भगवान्को देखना सुन, भद्रिक भाषो
हो गये—केवल अमज्य जीव बाकी रह गये, कहा भी है, कि—

सर्वंत्वापि तनोनष्ट-मुदिते जिनभास्करे ।

कौयिस नानिवान्धत्वनमन्यमानानुबतत् ॥ १ ॥

बन्धिनाशपि न तिष्ठन्ति, यथा कन्दुकाः कृपाः ।

तथा तिरिखनन्मानां विनेनाशपि न जायते ॥ २ ॥

यद्येषत्तु तौ धान्यं, न स्मादृष्ट्येर्षय नारते ।

दीपो न स्मादनन्मानां, जिनंदगमया तथा ॥ ३ ॥

अर्थात्—“विनेश्वर-स्त्री सूर्यके उदय होनेसे सबके अज्ञान-
स्त्री अन्धकारका नाश हो गया ; परन्तु उल्लुखोर्षी तरह अनन्तोक्ष
अन्धारन व्योक्त स्त्री बना रहा । जैसे कंदुकके दाने बागने
पकने पर भी बड़ी पकते, वैसे ही विनेश्वर द्वारा भी अनन्तोक्ष
तिरिख नहीं मिलती । जैसे दानी भरतने पर भी उठाने बाँध हुआ
धान नहीं उगता, वैसे ही विनेश्वरकी देखनासे भी अनन्तोक्षकी दोष
नहीं होता ।”

जित्त-जित्त देखने धो शान्तिनाथ प्रभु विहार करने थे, परां-परां

लोगोंके सब उपद्रव शांत हो जाते थे । प्रभु जिस भूमिमें विहार करते, वहाँसे सौ योजन पर्यन्तके लोगोंकी मकाल या महापारो भादिके उपद्रवोंसे उद्विग्न होनेकी भी बात नहीं आती थी, तथा पचीस योजन तक सब तरहके वृक्षोंमें फल-फूल भर जाते थे । लोग सबसे निर्मग्न होकर पृथ्वीमें विहार करते रहते थे । श्रीजिनेश्वरका प्रभाव दिग्भेदके लिये विस्मयकारक होता है, वैसे जिनेश्वरका वर्णन मेरे जैसा मध्य बुद्धिवाला मनुष्य कहाँतक कर सकता है ? जिसके पल्योपमका आयुष्य हो और हजार जिह्वाएँ हों वही शायद उनके गुणोंका वर्णन कर सके । कहा भी है कि—

“विजानाति जिनेन्द्राद्या, कोनिधेय गुणोत्कर्म ।

स एव हि विजानन्ति, दिव्यज्ञानेन तं पुनः ॥ १ ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,

छरतस्वरपासा सेखनी पत्र गुर्वी ॥

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकासे ।

तदपि त्वं गुह्यानामीष पारं न याति ॥ २ ॥”

अर्थात्—“जिनेन्द्रोंके सब गुणोंको कौन जानता है ? वे ही दिव्यज्ञानके द्वारा अपने गुण समूहोंको जानते हैं । अंजन-गिरिके परावर कज्जल सिन्धु-पात्रमें घोल कर, कल्पवृक्षकी शाखाकी कठम बना, पृथ्वीरूपी बड़ेसे कागज पर स्वयं शारदा चिरकाल तक लिखती रहे, तो भी हेईस ! वह तुम्हारे गुणोंके पार नहीं पहुँच सके ।”

इसी प्रकार भगवान् श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर समस्त भव्य जीवोंके उपकारके लिये पृथ्वीपर विहार कर रहे थे, चक्रायुध गणधर स्वयं जानते हुए भी भव्य जीवोंके प्रतिबोधके निमित्त भगवान्से अनेक प्रकारके प्रश्न किया करते थे और स्वामी उन सबके यथोचित उत्तर दिया करते थे ।

इस प्रकार पृथ्वीपर विहार करते हुए श्रीशान्तिनाथ भगवान्ने पासठ हजार मुनियोंको दीक्षा दी और एकसठ हजार छः सौ शीलवती आध्वर्या बनायीं । श्रीसम्यक्त्व सहित धावकधर्मको धारण करते

वाले ; जाँवाजोव आदि तत्वोंके जाननेवाले; पक्ष, पक्ष और देवादि दाय भी धर्मसे न टलनेवाले ; अस्थि तथा मज्जा पर्यन्त जिन धर्मसे वास्तित ; जिन वचनोंको ही तत्त्वज्ञान माननेवाले; चारों पर्वों पौष्य-व्रतको ग्रहण करनेवाले और तदा निरवयव आहारादि देकर मुनिपोंका सम्मान करने वाले धर्मशान्तिनाथसे प्रतिबोध पाये हुए दो लाख नब्बे हजार ध्यायक तथा विरहित गुणोंको धारण करनेवालोंतोन लाख तिरानवे हजार ध्यायिकारं हुईं । जिन नदों होते हुए भी जिनको नांति अतीत अवगत और वर्तमान स्वरूपको जाननेवाले आठ हजार चौदह पूर्वो हुए । अस्तव्य मनुष्य-मनुष्य तकके स्वरूपानु-दृष्टोंको प्रत्यक्ष देखनेवाले तीन हजार अवधिहानों हुए । दार् द्वोगोने रहनेवाले संज्ञा-वान् जाँवोंके ननके पर्यायोंको जाननेवाले चार हजार मनुष्यवहानों हुए । ॐ हजार वैश्विय लब्धिवाले मुनि हुए तथा दो हजार चारसौ चाइ लब्धिवाले हुए । प्रभु शान्तिनाथका इतना बड़ा परिवार बंध गया ।

धर्मशान्तिनाथके छलनने भगवान्का वेषावृत्य करनेवाला और धांसंधके सनम विप्रोंके समूहका नारा करनेवाला 'गलड़' नानका पक्ष हुआ तथा मलजनोंको लहायता करनेवाली निर्वाणों नानको छलनदेवी हुईं । चक्रायुध राजाका पुत्र शोभाकृत नामक राजा भगवान्का सेवक हुआ । भगवान्का शरीर चालीस धनुषको ऊँचाईका था; उनके लुगका लाञ्छन था और पैसों लांवेकी लो कमकी हुईं वस्त्रों कान्ति थी, जिनको उरमा तंगो उगत्मे नहीं हो सकता । भगवान्का जन्मसे ही चारों अतिरम्य उत्पन्न हुए थे, जो न्यारह कमके रूपसे उत्पन्न हुए थे । साथ ही उद्योत अतिरम्य देवोंके किये हुए उत्पन्न हुए थे । इस प्रकार सिद्धान्तमे कई हुए वीरान्त अतिरम्य सब जिन्हेधरोंके होते हैं तथा तंगो उगत्का प्रभुता प्रकट करनेवाले उग्ररूप अंगक-वृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य भी होते हैं ।

धर्मशान्तिनाथ जिन्हेधर पचहत्तर हजार वर्ष गृहवास्तने रहे, एक वर्ष उग्ररूप अवस्थामे रहे और एक वर्ष कम पचांस हजार वर्ष वैश्व-रूपमें-

का पालन करते रहे। सब मिलकर भगवान् की एक लाख वर्षकी आयु हुई। अन्तमें जगद्गुरु, अपना निर्वाणकाल समीप आया जान, समेद-शिखर-पर्यंतके ऊपर आरुढ़ हुए। इसी समय स्वामीके निर्वाणका समय समीप जान, 'सब देवेन्द्र भी वहाँ आये और उन्होंने मनोहर समयसरणकी रचना की। उसी समयसरणमें बैठकर जिनेश्वरने अन्तिम देशना दी। उसमें उन्होंने सब पदार्थोंकी अनित्यता प्रमाणित की। भगवान् ने मध्य प्राणियोंको लक्ष्यकर कहा,—'हे मध्य-जीवों! इस मनुष्य भवमें ऐसा काय करना चाहिये, जिससे इस असार संसारको छोड़कर मुक्तिपद प्राप्त किया जा सके।' इसी समय श्री जिनेश्वरके चरणोंमें प्रणाम कर, प्रथम गणधरते पूछा,—'हे स्वामिन्! सिद्धिस्थान किस प्रकारका होता है, यह कहिये।' प्रभुने कहा,—

'सिद्ध-भूमि (सिद्धशिला) मोतीके हार, जलकी बूँद और चन्द्रमाकी किरणोंकी तरह उज्ज्वल, पैतालीस लाख योजनके विस्तारवाली (लम्बी, चौड़ी और गोल) श्वेतरंगकी है और उसका संस्मान झुले हुए छत्रकी तरह है। यह समग्र लोकोंके अग्रभागमें रहती है, मध्यभागमें भाठ योजन मोटी है, अनुक्रमसे पतली होती हुई प्रान्तभागमें सबकी गिरनी तरह पतली हो गयी है। उसके ऊपर एक योजन लोकान्त है। उस अन्तिम योजनके अन्तिम कोशके छठे भागमें अनन्त सुखोंसे युक्त सिद्ध रहते हैं। वहाँ रहनेवाले जीवोंको जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक आदि उपद्रव तथा कषाय, धुपा और तुषा आदि नहीं व्यापते। वहाँ जो सुख मिलता है, उसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। तो भी मुग्धजनोंके समझनेके लिये उपमा दी जा सकती है। यह इस प्रकार है—

धी साकेतपुर नामक नगरमें शत्रुमर्दन नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने एक त्रिज विपरीत शिक्षावाले अश्वपर सवारी की, जो उन्हें एक बड़े मयङ्गूर घनमें ले गया। वहाँ धके और प्यासे होनेके कारण राजा, मूर्च्छा आ जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े यासके ही पर्वत पर

भीलोंकी बत्ती थी । ये कन्य-मूलकें खानेवाले थे और कुशोंको छालके
 पत्र पढ़ते थे । राजातलकों ही थे अपना भाग्य और शय्या समझते
 थे । इस प्रकार हाते हुए ये भील अपनेको भरपन्त मुष्ठी मानते थे
 और बड़ा करते थे, कि—“लोग जो भीलोंको रहन-सहनको अच्छा
 कहलाते हैं, यह कुछ असत्य नहीं है, क्योंकि उन्हें भरनेका पानी आ-
 सानीसे मिल जाता है, पानेके लिये कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता
 और सदा अपनी प्रियाके पास ही रहना होता है ।” इन्हीं भीलोंमेंसे
 कोई एक भील भूमता-किरता राजाके पास आ पहुँचा । भलद्वारोंसे
 यह पदभान कर, कि यह कोई राजा है, उसने अपने मनमें
 सोचा,—“अवश्यही यह कोई राजा मालूम पड़ता है और व्याससे व्या-
 कुल होकर गिर पड़ा है । यह अवश्यही पानोंके बिना मर जायेगा ।
 इसके मरनेसे सारी पृथ्वी स्थामो-शून्य हो जायेगी, इसलिये इसे पानी
 पिला कर जिला देना ही उचित है ।” ऐसा विचारकर उसने पत्तोंका
 दोना बनाकर उसीमें जलाशयसे पानी भरकर राजाको ला पिलाया,
 जिससे ये स्वस्थ हो गये । इसके बाद होशमें आये हुए राजा मन-ही-
 मन उसका बड़ा उपकार मानते हुए उसके साथ पाते करने लगे । इसी
 समय उनके पीछे-पीछे जाते हुए सैनिक भी वहाँ आ पहुँचे । सैनिकोंने
 राजाके आगे सुन्दर लट्टू और शीतल जल रख दिया । राजाने उसमेंसे
 मोदक आदि निफाल कर पहले उस भीलको खानेके लिये दिया, इसके
 बाद सुपासनपर बैठ अपने उपकारी भीलके साथ-साथ राजा अपने
 नगरमें आये । वहाँ पहुँच, उस भीलको खान करा, मनोहर वस्त्र पहना,
 भलद्वारोंसे सुसज्जितकर, चन्दनादिका घिलेपन कर, दाल और भात
 आदि उत्तम भोजन खिलाकर राजाने उसे तेरह गुणोंवाला ताम्बूल उसे
 खानेको दिया । इसके बाद यह राजाकी आज्ञासे सुन्दर महलमें मनोहर
 शय्यापर सोया, प्रसन्न राजाने उसकी सारी वस्त्रिता दूर की । इस
 प्रकार उस भीलको बड़ा सुख मिला, तो भी वह अपने जङ्गलको नहीं
 भूला । कहा भी है, कि—

ऐसी क्योंकर हो गयी है ?” इसके उत्तरमें उस भीलने अपना सारा हाल उनसे कह सुनाया और भोजन, वस्त्राभूषणका तथा शय्या आदिका जैसा सुख उसने अनुभव किया था, वह भी उन्हें बतलाया । भीलोंने उससे कहा,—“तुमने वहाँ जैसा सुख अनुभव किया था, वह दृष्टान्त सहित हमें बतलाओ ।” यह सुन, उसने उनकी जानी हुई चीज़ोंके साथ उपमा देते हुए कहा,—“स्वादिए कन्द और फलोंके समान लड्डू में खाया करता था । जैसे यहाँ हम लोग नीवार खाते हैं, वैसे वहाँ दाल-मात आदि खाया करता था । गुन्दीके पत्तोंकी तरह नागरवेल-पान मुझे खानेको मिलते थे । शाल्मलीवृक्षके चूर्णके समान सुपारीके चूर्णको मैं खाता था । चल्कलके समान मनोहर वस्त्र पहनता था । पुष्पोंकी मालाके समान गहने पहनता था । छिद्र-रहित गुफाके समान मन्दिरमें रहता था और झिल्लातलके समान विशाल शय्यापर सोया करता था ।” इस प्रकार उस भीलने उत्तमोत्तम पदार्थोंकी अन्य वस्तुओंके साथ उपमा देते हुए उन्हें अपने पेशो आरामका हाल कह सुनाया । इसी तरह मैं भी संसारमें रहने वाले जीवोंको सिद्धि-सुखका वर्णन इस लोकमें मिलने वाली वस्तुओंके साथ तुलना करके कह सुनाता हूँ । जो सुख काम-भोगसे उत्पन्न होता है और जो सुख महान् देवलोकमें होता है, उससे अनन्तगुण अधिक सुख सिद्धोंको होता है और वह शाश्वत (अक्षय) होता है । भेद केवल इतना ही है, कि संसारका सुख पौंड्रगलिक और विनाशी है तथा सिद्धोंका सुख अपौंड्रगलिक (आत्मिक) अविनाशी (शाश्वत) है ।”

इतनी बातें कह, धी शान्तिनाथ भगवान् उस स्थानसे उठकर उसी पर्वतके एक ध्येष्ठ शिखरपर चढ़ गये । वहाँ नौ सौ केवलियोंके साथ स्वामीने महोत्सव मनाना किया । उसी समय सभी सुरेन्द्र परिवार सहित, अत्यन्त प्रीति और भक्तिके साथ, जगन्नाथकी सेवा करने लगे । अन्तमें ज्येष्ठ मासकी कृष्ण चतुर्दशीके दिन, जब चन्द्रमा भरणी-नक्षत्रमें था, तब शुकृध्यानके बाँधे पदका ध्यान करते हुए स्वामीने मोक्ष-पद

प्राप्त किया। तब सभी सुरेन्द्र, अपने-अपने परिवारके साथ, श्रीशान्ति-
नाथ महाप्रभुके निर्याणका वृत्तान्त-जान, शोकसे अभुपात करने लगे
और प्रभुके गुणोंका स्मरण करते हुए उत्तर-धैर्यके रूपमें पृथ्वीपर
भाये तथा विलाप करने लगे,—“हा नाथ ! हे सत्येश-रूपी मन्त्रकारको
नष्ट करनेमें सूर्यके समान शान्तिनाथ भगवान् ! हमें स्थायी-रहित करके
तुम कहाँ चले गये ? हे नाथ ! अब तुम्हारे बिना हमें अपनी-अपनी
भाषामें सबकी समझमें आने योग्य और सब जन्तुओंको हर्ष देनेवाली
देवता कौन सुनायेगा ? लोकको पीड़ा देनेवाले दुर्मिक्ष, बाढ़ और महा-
मारी भाङ्गि-उपद्रवोंकी अब किसके प्रभावसे शान्ति होगी ? तथा हे
स्वामी ! अथवा देव-भय-सम्बन्धी कार्य छोड़, पृथ्वी-तल पर आकर अब
हम किसकी सेवा करेंगे ?” इस प्रकार विलाप कर सब इन्द्रोंने क्षीरसा-
गरके ऊपरसे स्वामीके शरीर-स्नान कर, नम्र-यत्नसे मंगाये हुए हरि-
चन्दनके सुगन्धित काष्ठोंके प्रसक्त उसका भगवान् के शरीरपर प्रकि-
र्यक लेटकर, प्रभुके मुँहमें कर्पूरका धूर्ण डाल्य और देव-दूष्य बलसे
उन्के शरीरको ढँक दिया। इसके बाद कृष्णागादकी सुगन्धसे सब
दिशामेंको वासित कर, मन्दार और पारिजात भाङ्गिके पुष्पोंसे प्रभुकी
पूजा कर, रत्नोंजड़ी भेठ शिथिकामें उनके शरीरको ढराया। इसके बाद
नेत्रस्थ-काष्णमें कन्दन काष्ठकी चिता बना, वे उस शिथिकाको उसके
पास ले आये और वस्त्र उठाकर चितामें डाल दिया। अन्य वैमानिक
देवोंने अन्य मुनीश्वरोंका संस्कार-कार्य भी उसी प्रकार किया। इसके
बाद अग्निदेवोंने प्रभुकी ओर मुँह किये हुए उस चितामें अग्नि डाली
और वायुदेवोंने हवा फैला कर अग्नि प्रज्वलित कर दी। इसके
बाद जब भगवान् के शरीरके शिर-मांस क्षय हो गये, तब वायुदेव
देवोंने सुगन्धित और शीतल ऊलकी कपाँ कर, उस चिताके शीतल
कर दिया। इसके बाद भगवान् की मर्त्यसे प्रेरित होकर उनकी उमर-
की शक्ति काढ़ सुवर्णरूपे रत्न, मोचकी दाढ़ियों काढ़ कमण्डलुमें रत्न,
आरका बाँधी काढ़ ऐश्वर्यरूपे भी और लोचकी बाँधी काढ़ कमण्डलुमें

ले ली । बाकीके भट्टाईस दाँत अन्य भट्टाईस इन्द्रोंके लिये । अन्य देवोंने भगवान्‌के शरीरकी हड्डियाँ ले लीं और विद्याधरों तथा मनुष्योंने सब उप-द्रव्योंको शान्तिके लिये भगवान्‌की चिता-भस्म ले ली । इस प्रकार देवेन्द्रोंने जिनेश्वरके शरीरका संस्कार कर, उसी स्थानपर सुवर्ण-रत्नमय श्रेष्ठ स्तम्भ बना, उसी पर प्रभुकी सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित की और भक्तिके साथ उसकी पूजा की । इसके बाद नन्दीश्वर-द्वीपमें जा, वहाँकी यात्राकर, सभी सुर-असुर धीशान्तिनाथ परमात्माका हृदयमें ध्यान करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये ।

• भगवान् चक्रायुध भी अनेक साधुओंके साथ भव्य जीवोंके प्रति-योध देते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे । उन्होंने भी कुछ काल व्यतीत होनेपर घाती-कर्मोंका क्षय कर, केवल ज्ञान प्राप्त किया । तदनन्तर देवेन्द्रोंसे पूजित होते हुए वे भी भव्य जीवोंके अनेक संशयोंको दूर करने लगे ।

इस भरत क्षेत्रके मध्य ऋण्डमें देवोंसे पूजित और जगत्‌में विख्यात कोटिशिला नामका एक उत्तम तीर्थ है । वहाँ बहुतरे केवलियोंके साथ पुण्यवान् धीचक्रायुध गणधर पधारे और वहाँ अनशन कर मोक्षको प्राप्त हुए । उस शिलाको पहले धीचक्रायुध गणधरने ही पवित्र किया । उनके बाद उस शिलापर कालक्रमसे करोड़ों मुनियोंने सिद्धि-पद प्राप्त किया । उसके विषयमें कहा जाता है, कि—

“कोटिशिला तीर्थमें धीशान्तिनाथके प्रथम गणधरके सिद्ध होनेके बाद करोड़ों साधु सिद्ध हुए हैं । कुंधुनाथके तीर्थमें भी पापको नाश करनेवाले करोड़ों साधु उस शिलातलपर सिद्ध हुए हैं । धीमल्लिनाथके तीर्थमें, मत्तोंसे शोभित होनेवाले छः करोड़ केवलो वहाँ निर्वाणको प्राप्त हुए हैं । धीमुनिसुवन स्वामीके प्रसिद्ध तीर्थमें तीन करोड़ साधुओंने वहाँ ब्रह्मपद प्राप्त किया है । नमिजिनके तीर्थमें विरुद्ध क्रियावाले एक करोड़ साधु-महात्मा सिद्ध हुए हैं । इसी प्रकार समय समयपर वहाँ बहुतसे साधु सिद्ध हुए हैं ।” कर्त्ता कहते हैं, कि वह

आदिनाथ-चरित्र

इस पुस्तकमें पहले तीर्थङ्कर श्रीआदिनाथ स्वामीका आदर्श एवं शिक्षाप्रद जीवन-चरित्र दिया गया है। पुस्तकके भीतर नाना भावोंके सतरह चित्र दिये गये हैं। जिनसे भगवानका वह आदर्श जावन अपनी आंखोंके सामने दीख आता है। भाषा बड़ीही सरल एवं रोचक है। कथानुयोगका विषय भरा हुआ है; इसलिये पढ़ना आरंभ करने के बाद पुस्तक को छोड़ते नहीं बनती। इसकी एक-एक कथा बड़ीही शिक्षाप्रद एवं रोचक है। इसके चित्र अत्यन्त दर्शनीय हैं। मूल्य सुनहरी रेशमी जिल्द ५) अजिल्द ४)।

मिलनेका पता—

पंडित काशीनाथ जैन

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता

२०३ हरिन्दन रोड, कच्छला।

सय मैंने इस ग्रन्थमें नहीं लिखा । जिन तीर्थद्वारके तीर्थमें कमसे कम पूरे एक करोड़ साधु सिद्ध हुए हैं, उन्हींका हाल यहां लिखा है । इसीसे इसे कोटिशिला कहते हैं । इस कोटिशिला तीर्थकी निरन्तर अनेक चारण-मुनि, सिद्ध, यक्ष, सुर और असुरादि भक्ति-पूर्वक चन्दना करते हैं ।

इस ग्रन्थमें मैंने श्रीशान्तिनाथ प्रभुके बारहों भावोंका हाल लिखा है, ध्रावकोंके बारहों व्रतोंकी बात कथा सहित बतलायी है और प्रथम गणधार चक्रायुधका दिया हुआ व्याख्यान भी लिख दिया है । इस प्रकार श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वरका समग्र चरित्र मैंने वर्णन कर दिया ।

“यस्योपसर्गाः स्मरणेन यान्ति, विरे वदीयाश्च गुणा न यान्ति ।

मृगांश्चतुर्मा कनकस्य कान्तिः, मेघस्य यान्ति स करोतु यान्तिः ॥१॥”

अर्थात्—‘जिनके स्मरणसे सारे उपसर्ग नष्ट होते हैं, जिनके गुण सारे विश्वमें भी नहीं समाते, जिनके मृगका लाम्ब्यन है, और जिनके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान है, वे श्री शान्तिनाथ परमात्मा श्री संप्रके उपद्रवोंकी शान्ति करें । तथास्तु ।

ACCARCHAND BHAIRODAS SETHIA
JAIN LIBRARY:
BIKANER, RAJPUTANA.



हमारी हिन्दी जैन साहित्यकी उत्तमोत्तम सचित्र पुस्तकें ।

			साजिले	अजिले ।
आदिनाथ-चरित्र	५)	४
शान्तिनाथ-चरित्र	५)	४)
शुक्रराजकुमार	१)
नलदमयन्ती	✓	III)
रतिसार कुमार		III)
छदशंन सेठ	II)
सती चन्दनबाला	II)
कयवन्ता सेठ		II)
सती छर-चन्दरी	II)
अध्यात्म अनुमः वागप्रकाश अचित्र		.	४।)	१७)
द्रव्यानुभव रत्नाकर	२४)
स्वाध्याय अनुभव रत्नाकर	२४)
चंपक सेठ	सचित्र	छप रहा है ।		
वत्समकुमार चरित्र	"	"		
परुषण पर्व माहात्म्य	"	"		
रत्नसार चरित्र	"	"		

मिलनेका पता—परिचित काशीनाथ जैन

मुद्रक, प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता

२०१ हरिमन रोड, कलकत्ता ।

